दौलत राय की दृष्टि में

साहिबे कमाल

गुरु गोबिन्द सिंघ जी

गुरमति साहित्य चैरीटेबल ट्रस्ट

रजि: आफ़िस : बाज़ार माई सेवां, अमृतसर

प्रथम संस्करण	सितम्बर १९८३
द्वितीय संस्करण	मई १९८६
तृतीय संस्करण	जनवरी १९८८
चतुर्थ संस्करण	अगस्त १९८९
पांचवां संस्करण	नवम्बर १९९१
छठा संस्करण	नवम्बर १९९२
सातवां संस्करण	मार्च १९९३

मूल्य १४-००

प्रकाशक

गुरमति साहित्य चैरीटेबल ट्रस्ट, बाज़ार माई सेवां, अमृतसर

मुद्रक

हमदर्द प्रिंटिंग प्रैस, माई हीरां गेट, जालंधर

क्रम

विनय

१९७१ में साहिबे कमाल गुरु गोबिन्द सिंघ का पंजाबी-अनुवाद कुछ प्रेमियों के उद्यम से प्रकाशित हुआ था। इस के बाद इस पुस्तक के तीन और संस्करण छप कर समाप्त हो चुके हैं। इस पुस्तक का इतने अल्प-काल में भारी गिनती में बार बार छप कर खत्म हो जाना, अपने आप में ही इस पुस्तक की लोक-प्रियता का सूचक है। सिक्ख-संगत ने जिस उत्साह के साथ इस पुस्तक को अपनाया है, उस से सेवकों को और प्रेरणा मिली है। इस लिये इस पुस्तक के प्रकाशन कार्य के आशय को ले कर, गुरसिक्ख प्रेमियों के सहयोग से "गुरमित साहित्य चैरीटेबल ट्रस्ट" की स्थापना की गई है।

ट्रस्ट की ओर से निश्चित आशयों में, इस पुस्तक का हिन्दुस्तान की सब भाषाओं में अनुवाद करवा के प्रकाशित करने और लागत-मूल्य पर पाठकों तक पहुंचाने का मंत्वय भी शामिल है। इसी मंत्वय की पूर्ति हेतु यह हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने की खुशी ले रहे हैं। आशा है कि हिन्दी-भाषी जगत् द्वारा इस पुस्तक का स्वागत किया जाएगा। इस के बाद इस पुस्तक का अंग्रेजी और फिर दूसरी भाषाओं में अनुवाद करवा कर विश्व के लोगों को कलगीधर पिता के मानवता पर किये उपकारों से परिचित करवाने का उद्यम किया जायेगा। सत्गुरु मेहर करें !

इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रिंसीपल सुजान सिंघ जी ने बहुत लग्न और श्रद्धा से किया है, हम उन के इस सहयोग के लिए आभारी हैं। पुस्तक की शुद्ध छपाई में श्री हरी देव जी बावा और सरदार जीत सिंघ (जसपाल प्रेस) ने योगदान दिया है, हम उन के भी कृतज्ञ हैं।

कनवीनर

२८-९-८३ गुरमति साहित्य चैरीटेबल ट्रस्ट

आरम्भिक शब्द

मान साहिब, स्पीकर पंजाब विधान सभा एक बार पारली-मेंटरी डेलीगेशन में जब अमेरिका गये तो वापसी के समय लंडन में रुके। उन्होंने अपने साथ घटी एक घटना बड़े रोचक ढंग से सुनाई।

मैं एक दिन अकेले ही एकांत में बाहर सैर कर रहा था तो मेरे पास से अचानक तीन अमरीकन व्यक्ति गुज़रे। उन में से एक का पहरावा पादरियों जैसा था और दूसरे दोनों का मिला जुला सा। उन्होंने पास से निकलते हुए, मेरे ऊपर प्रश्नों के तीन ऐसे बाण छोड़े कि उन्होंने मेरे आन्तरिक स्वाभिमान को दग्ध कर दिया और मैं लज्जित हुआ बहुत देर तक सोच-समुद्र में गोते खाता और उनके प्रश्नों के उत्तर ढूंडता रहा।

पहला प्रश्न था : क्या आप भारती हैं ?
उत्तर : जी हां।
दूसरा प्रश्न था : क्या आप हिन्दू हैं ?
उत्तर : जी नहीं।
तीसरा प्रश्न था : फिर आप क्या हैं ?
उत्तर : जी सिक्ख।

मैंने बड़े स्वाभिमान और गौरव से कहा कि मैं सिक्ख हूं। परन्तु उन्होंने मेरा अन्तिम उत्तर सुनते ही कहा, "नहीं आप फूल (fool) हैं।" यह मेरे स्वाभिमान का घोर अपमान था जिस को न सहारते हुये मैंने उन से पूछने का साहस किया कि उन्होंने किन

तथ्यों के आधार पर इन अयोग्य शब्दों का प्रयोग किया और यह निष्कर्ष निकाला। उत्तर बहुत आश्चर्यजनक था। उनका मुखिया कहने लगा कि हमारा एक व्यक्ति सूली पर लटका है और उसे सारा संसार जानता है, आप के पास अनेकों शहीद हैं, परन्तु उनको कोई नहीं जानता। फिर क्या आप फूल (मूर्ख) नहीं ?

यह प्रश्न मान जी पर एक अमरीकन ने किया और मूर्ख और कृतघ्न कह कर सारी मानवता का रोष प्रकट किया। उस मानवता का रोष, जो उन शहीदों और मानवता के रत्नों के दर्शन करना चाहती है, परन्तु खेद है कि वे रत्न उस कृतघ्न कौम की खान में, जो परस्पर फूट और कुर्सी की कामना के कारण माया-जाल में फसी गहरी निंद्रा में सो रही है। जो कौम अभी तक स्वयं भी अपने शहीदों की पूर्ण भांति कदर नहीं कर सकी, वह उन शहीदों के अगाध दर्शन दूसरों को कैसे करवा पायेगी।

मान साहिब पर अमरीका में हुआ प्रश्न एक संकेत है, *"आकले रा इशारा काफी अस्त।" वास्तव में योरुप तथा सारे संसार में, जहां भी कोई †"सावत सूरति दसतार सिरा" स्वरूप किसी आस्तिक के दृष्टिगोचर होता है तो यह प्रश्न अपने आप ही फूट निकलता है, इस की गूंज गूंजती है और उस के अस्तित्व से इस प्रश्न के उत्तर की मांग होती है। परन्तु और कितनी देर यह समूची कौम मान साहिब वाली चुप्पी साधे रहेगी ?

इस चुप्पी को तोड़ने के लिये और ऐसे रत्नों को खानों से निकाल कर संसार के आगे पेश करने के लिये ही दौलत राय जैसे

---

*बुद्धिमानों के लिये संकेत ही बहुत होता है।

†दाढ़ी-मूछ और सिर पर पगड़ी बांधने वाला अथवा पूर्ण रूप से सिक्ख।

बलवान लेखनी वाले सुपूतों की आवश्यकता है, जो अपने साहस, निस्पक्षता और प्रवीणता द्वारा रत्नों में शिरोमणि रत्न, मानवता के कोहिनूर, श्री गुरु गोविन्द सिंघ जी की जीवनी को अपनी लेखनी के स्पर्श से समूचे भारत-दर्शन के तट पर उजागर कर सकें, जो कौम की बेकदरी और हिन्दू-समाज की निर्लज्जता पर विलाप के आंसू गिरा सकें और उन से सूखी बंजर भूमि जैसे हृदयों को रसमय कर सकें।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश में सिक्ख गुरु साहिबान के प्रति कुछ अनुचित शब्द किसी बेसमझी के कारण लिखे हैं, जिस पर सिक्ख जगत ने रोष प्रकट किया और जिस के विरुद्ध जी भर प्रचार किया। उस का प्रायश्चित अथवा सुहृद-कीर्ति, श्री गुरु गोविन्द सिंघ जी की जीवनी के रूप में इस स्वामी दयानन्द जी के अनुयायी, आर्य-समाजी लाला दौलत राय जी ने की है। इस पुस्तक में लाला दौलत राय इस बात का रोना रोते हैं कि सिक्ख कौम ने गुरु गोविन्द सिंघ जी को पहचाना नहीं और भारतवासी हिन्दू-समाज ने उन की बिल्कुल कदर नहीं की। खालसा कौम आज कल भी वही कुछ कर रही है जिस को गुरु गोविन्द सिंघ जी ने अपने सारे परिवार का बलिदान कर के रोका था। आज से ७८ वर्ष पूर्व लिखे लाला दौलत राय के शब्दों में कितनी निष्पक्षता, साहस और सत्य है।

सिक्ख कौम के काया-कल्प के लिये यह अत्यावश्यक प्रतीत होता है कि गुरु जी की शुद्ध विचारधारा तथा प्राप्ति के साधनों को दौलत राय के शब्दों और लेखनी की जादूगरी के रूप में आज फिर कौम के नवयुवकों के सम्मुख पेश किया जाये। नई उगती सिक्ख पौद उर्दू से अनभिज्ञ है। इस लिये उन के लाभ-हित लाला दौलत राय की पुस्तक को, कुछ अनावश्यक भाग

अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि वे उसी क्रांति और हुंकार को योरुप में हुंकारते और बल देते रहे। उन्होंने जन-साधारण को शताब्दियों के बोझ, वहमों और भ्रमपाश से मुक्त करने के प्रयत्न किये। मनुष्य का सृजन तो स्वतन्त्र था, परन्तु मनुष्य के स्वार्थ और पक्षपात ने इसे संगलों से जकड़ लिया। जिस क्रांति को गुरु जी ने जन्म दिया और सम्पूर्णता की शिखर पर पहुंचा कर, बलवान और शक्तिशाली साम्राज्य की ताकत का बखिया उधेड़ने के योग्य बनाया, कार्ल मार्कस और लेनिन उसी को योरुप में चलाने के लिये प्रयत्न करते दीख पड़ते हैं। परन्तु उन के साधन विशाल थे और मनुष्य समाज उस समय कुछ पड़ाव आगे बढ़ चुका था।

सरदार गुरचरन सिंघ जी जब कभी साहिबे कमाल गुरु गोबिन्द सिंघ जी की बात करते थे तो दौलत राय का नाम बड़े गौरव से लिया करते थे। उन का मैं अत्यन्त धन्यवाद करता हूं कि उन्होंने अपनी लेखनी से इस पुस्तक का परिचय करवाया है।

अंत में पाठकों से बिनती है कि वे इस पुस्तक के सम्बन्ध में अपने बहुमूल्य सुझाव दें और अशुद्धियां बताने की कृपा करें, जिस से हुई भूलों-चूकों को अगली छाप में शुद्ध किया जा सके।

दासनुदास—बउरा

निकाल कर, हिन्दी रूप दिया गया है।

यदि कोई सिक्ख लेखक गुरु जी की तुलना हिन्दू अवतार के साथ कर के उन को ऊंचा सिद्ध करता तो हिन्दू-समाज इस को पक्षपात समझता और इस बात को स्वीकार करने के स्थान पर कई प्रकार के ढकोंसले घड़ता। परन्तु जिस तर्क और साहस के साथ लाला दौलत राय ने श्री गुरु गोविन्द सिंघ जी को उच्च से उच्च और मानवता का अवतार, लोक-तन्त्र का सर्वोत्तम ज्ञाता और मानवता का कल्याणकारी प्रदर्शित किया है, वह केवल दौलत राय की लेखनी की ही करामात है।

१६९९ में गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने भारत में क्रांति का उपयोग किया और उसका मानव समाज की समानता की चिनाई के आधार के रूप में प्रयोग करके नवीन समाज का विस्तार किया, उस से मानवता का कल्याण न केवल भारत में ही हुआ प्रत्युत उस ने भविष्य के योरुप की सब क्रांतियों का पथप्रदर्शन किया। वास्तव में गुरु जी का नारा "मानस की जात सबै एकै पहिचानबो" एक ऐसा सिद्धांत था और इस के वक्ष-स्थल में ऐसी ज्वाला थी जो न केवल मानवता के भ्रम-जाल और ऊच-नीच के भेद-भाव को ही भस्म करती थी, अपितु उस की लपटों से औरंगज़ेब की मज़हबी पक्षपात वाली मुगल हकूमत, जो उस समय संसार भर में सब से शक्तिशाली साम्राज्य था, मुट्ठी भर फकीरों और संत-सैनिकों के हाथों भस्म हो गई।

तुलनात्मक ढंग से अध्ययन किया जाये तो फ्रांस और रूस की क्रांतियां मूल रूप में अपने सिद्धान्त तथा बल भी इस १६९९ की क्रांति से ही ग्रहण करती हैं, क्योंकि इस में ही उन की जड़ें हैं। रूसो, वालटेयर और लीओ टालस्टाय की रचनाओं के

परिचय

साहिबे-कमाल गुरु गोबिन्द सिंघ जी के जीवन के सम्बन्ध में अनगिनित पुस्तकें लिखी गई हैं और लिखी जा रही हैं। सिक्ख लेखकों ने अपने प्रियतम गुरु के जीवन को श्रद्धा, प्रेम, तथा सत्कार से लेखनी-बद्ध किया है। अन्य मतों के प्रशंसकों ने उनका कितने ही भिन्न-भिन्न रूपों में वर्णन किया है। अंग्रेज इतिहास-कारों ने आपको एक महान धार्मिक नेता, उच्च कोटि के प्रबन्धक सिरमौर योद्धा और क्रांतिकारी सुधारक प्रकट किया है। पक्षपाती मुसलमान लेखकों ने आप की कीर्तियों को इस्लाम विरोधी बताने का यत्न किया है।

गुरु गोबिन्द सिंघ जी के बहुपक्षीय जीवन को समझने में बहुत लोग असमर्थ रहे हैं। वे उनके चमत्कारी और क्रांतिकारी जीवन-उद्देश्यों को सही दृष्टिकोण से नहीं विचार सके। यहां तक कि जिस हिन्दू राष्ट्र के धर्म और सभ्यता के लिये गुरु जी ने अपने पिता जी का बलिदान किया, अपना सर्वस्व यहां तक कि, अपना सारा परिवार कुर्बान कर दिया, उस राष्ट्र के नेता (महात्मा) गांधी को वे भटके देश भक्त नजर आये। हिन्दू इतिहासकार सर जादू नाथ सरकार को वे राजनीतिक जंगबाज प्रतीत हुये। आज भी दशमेश पिता के महान बलिदान कृत्य और कीर्तियां तथा उपदेश और आदेश गलतफहमियों का कारण बने हुए हैं।

परन्तु जिस दृष्टिकोण से प्रसिद्ध आर्य समाजी लेखक लाला

दौलत राय ने गुरु गोबिन्द सिंघ जी के जीवन को पाठकों के सम्मुख आज से ७८ वर्ष पहले रखा उसमें असाधारण विशेषता है। यह ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और साहित्यिक पक्ष से अद्वितीय हैं।

आज से आठ दशक पूर्व, जब सिक्खों द्वारा अपने सतगुरुओं का इतिहास लिखने का प्रयत्न आरम्भ नहीं हुआ था और उस समय तक पंजाबी के अतिरिक्त किसी और भाषा में गुरु-इतिहास नहीं लिखा गया था और सिक्ख-इतर इतिहासकारों ने विशेषतः मुसलमान तथा अंग्रेज़ इतिहासकारों ने अपने अपने दृष्टिकोणों से लिखा था, वे गुरु गोबिन्द सिंघ जी के जीवन की सत्य और शुद्ध कल्पना करने में पूर्णतः असफल रहे थे।

ऐसे समय में लाला दौलत राय ने शहीद पिता के सुपुत्र और शहीद सुपुत्रों के पिता महाबली गुरु गोबिन्द सिंघ जी का जीवन आवेषपूर्ण शब्दों में लेखनी बद्ध किया। निःसन्देह उन्होंने गुरु जी के जीवन को एक ऐसे भारती हिन्दू के दृष्टिकोण से देखा, जिसकी आंखों के समक्ष बीते ७०० वर्षों का पतन प्रत्यक्ष दृष्टमान था, जिसकी दृष्टि के समक्ष गज़नवियों, गौरियों, गुलामों, खिलजियों,तुगलकों, सय्यदों, पठानों,तुरकों और मुगलों द्वारा किये गये धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक अत्याचारों की घटनाएं इस प्रकार गुज़र रही थीं जैसे वे उनके जीवन काल में घटी हों। उन्होंने गुरु गोबिन्द सिंघ जी के जीवन को एक आवेषपूर्ण पुस्तक के रूप में लिखा। यद्यपि वे आप कट्टर आर्य समाजी थे, परन्तु आप के जीवन पर कलगीधर पिता (गुरु गोबिन्द सिंघ जी) के जीवन और उपदेशों की गहरी छाप थी। उन के चमत्कारी जीवन से वे बहुत प्रभावित थे।

लाला दौलत राय की लेखनी भाव-भरपूर, श्रद्धा और

सत्कार भरपूर है। उन्हों ने ऐसे ऐतिहासिक सत्यों और तथ्यों को उर्दू पढ़े-लिखे पाठकों के सम्मुख रखा जिन्हें उन से पहले इतिहासकार नहीं रख सके। उन्हों ने निर्भय तथा बेपरवाह हो कर गुरु गोविन्द सिंघ जी की स्तुति की और उनके महान बलिदानों का उल्लेख किया।

क्योंकि वे एक श्रद्धावान हिन्दू थे, इस लिए उनकी दृष्टि में गुरु गोविन्द सिंघ जी हिन्दू राष्ट्र के रक्षक, हिन्दू धर्म और संस्कृति के पुनर्जन्म-दाता महान आत्मा थे। उन्हों ने खालसा के रूप में पूर्ण और शुद्ध आर्य वैदिक धर्म का प्रकाश देखा। लाला जी ने हिन्दुओं की शताब्दियों से पराधीनता का कारण उन गलत सामाजिक प्रथाओं, रीतियों, गलत धार्मिक परम्पराओं, छूत-छात, ऊच-नीच और भिन्न-भिन्न सम्प्रदाओं में बंट जाने में देखा। जब हिन्दू अपने पुरातन गौरव को भूल चुके थे, उन में से देश-भक्ति राष्ट्र-पूजा का भाव पर लगा कर उड़ चुका था, विदेशी आक्रमणकारियों के सम्मुख डटने का साहस समाप्त हो चुका था, अपने धर्म और धर्म-स्थानों की रक्षा करने का बल जाता रहा था, अपनी बेटियों और बहनों की रक्षा करने की हिम्मत मिट चुकी थी, वे अपनी संस्कृति और सभ्यता को भूल चुके थे, उस समय गुरु गोविन्द सिंघ जी के रूप में एक महान ज्योति का प्रकाश हुआ। लाला दौलत राय के शब्दों में उन्हों ने पुरातन हिन्दू सभ्यता का पुनर्जन्म किया और मृत राष्ट्र की धमनियों में नये रक्त का संचार किया। गुरु जी ने राष्ट्र की उदासीनता, निर्बलता, तुच्छता, निर्लज्जता और पतन-भाव को दूर करके नया साहस और बल प्रदान किया, जिसके फल-स्वरूप. शताब्दियों से आतताईयों के सम्मुख झुकते चले आये लोग तलवारें हाथों में ले कर, गरदनें उठा कर और छातियां तान कर उन के सामने

डट गये। यह कोई करामात से कम नहीं था कि कथित नीची जातियों के और अछूत कहे जाने वालों, दुकानों पर तराजू तोलने वालों, खेतों में हल चलाने वालों के हाथों में माला के साथ भाला पकड़ा कर उन्हें एक निर्भय कौम के रूप में बदल दिया। गुरु गोबिन्द सिंघ के महान व्यक्तित्व और प्राण-संचारक उपदेशों ने निर्बल और अशक्त मानवता में नया बल उत्पन्न कर दिया, उन्होंने भक्ति के साथ शक्ति प्रदान की, बाणी के साथ बाणा दिया, माला के साथ भाला दिया, नवीन रूप और स्वरूप दिया। जिस समाज में कायरता, घृणा, ऊंच-नीच, छूत-छात, पक्षपात और पृथक-पृथक धार्मिक सम्प्रदायों के अनगिनत गन्दे कृमि रींग रहे थे उनको साफ करके खालसा पंथ का सृजन किया और सब को एक ज्योति का उपासक बनाया।

पठानों, अफगानों और मुगलों के आगे, जिन के सामने क्षत्रिय और राजपूत खड़े होने से घबराते थे, खालसा छाती तान कर डट गया और संसार ने देखा कि उन लोगों का, जो सात शताब्दियों से खैबर के रास्ते भारत की इज्जत और आबरू लूटते आये थे, न केवल इस राह से आना ही बन्द कर दिया, अपितु खैबर के पर्वतों की चोटियों पर गुरु गोबिन्द सिंघ जी का वसंती झंडा फहरा कर उलटी गंगा बहा दी।

लाला दौलत राय जी ने गुरु गोबिन्द सिंघ के जीवन के भिन्न-भिन्न पक्षों को बड़े परिश्रम से चित्रित किया। उन की इस ओज पूर्ण रचना को पढ़ कर नया साहस और उत्साह मिलता है। लाला जी ने गुरु जी के जीवन की कतिपय घटनाओं और उन के उपदेशों को इस निर्भयता से लिखा है कि उन को पढ़ कर श्रद्धावान सिक्ख का सिर सत्कार से झुक जाता है। गुरु जी के समय हिन्दू समाज की जो दयनीय दशा थी, उस का उल्लेख करते हुये आप बताते हैं—

"वह छोटे छोटे सम्प्रदायों और उन से आगे और छोटे टोलों में बंट गये, जिस से उनका राष्ट्रीय बल सब का सब नष्ट हो गया और एकता की लड़ी ऐसी बिखरी कि उनका अस्तित्व ही टिमटिमाते दिये की लौ का रूप धारण कर गया।

"औरंगज़ेब की अत्याचारी तलवार के तूफान से सम्भव था कि ऐसा टिमटिमाता दीप सदा के लिये बुझ जाता, परन्तु गुरु गोविन्द सिंघ जी ने अपना हाथ उस पर रख कर उस को बुझ जाने से सदा के लिये बचा लिया।" (पृष्ठ ८४

गुरु गोविन्द सिंघ जी के जीवन प्रदान करने वाले उपदेशों का वर्णन करते हुये लिखते हैं–

"गुरु जी ने उन हिन्दुओं की काया पलट दी, जिन्हों ने सात सौ साल तक इस्लाम की गुलामी के नीचे असंख्य दुःख और अपमान सहे थे। वे इतने लम्बे समय में अपने सारे वीरता-करतब इस हद तक भूल चुके थे कि वे अपनी स्त्रियों, बहु-बेटियों और बहनों को टके टके में बिकतीं देख कर भी चुप्पी साधे बैठे थे। वे अपने इलाकों और जायदादों से सदा के लिये हाथ धो बैठे थे। उन के पवित्र मन्दिरों, पूज्य देवियों और देवताओं को उनके अपने पवित्र पशुओं के रक्त से लीपा और नहलाया जाता था, परन्तु उनके कानों पर जूं तक नहीं रींगती थी। उनका धर्म और मान-मर्यादा मुस्लमानों के जूतों में रुलता था और उनकी दया का आकांक्षी था। वे बनियों की तरह घरों में घुस बैठे थे और चूहों की भान्ति पहाड़ों की बिलों में जा छुपे थे। उन के बुझे साहस, मुरझाए हुए चेहरों और मुरदा दिलों में गुरु साहिब ने ऐसी रूह फूंकी, वह गर्मी उत्पन्न की और वह जोश भरा कि एक एक सिक्ख सैंकड़ों मुस्लमानों की

ताकत को तुच्छ समझने लगा। देश और कौम पर शहीद होने और धर्म की रक्षा के लिये शहीदी का जाम पीने को सिक्ख अपना सौभाग्य समझने लगे। गुरु गोविन्द सिंघ ने बिल्लियों को बाघ बनाया और नामर्दों को मर्दे-मैदान।'

(पृष्ठ १३२

प्रायः यह भ्रम डाला जाता है कि गुरु गोविन्द सिंघ जी इस्लाम के विरोधी थे, मुस्लमानों के शत्रु थे। लाला जी ने इस बात का बहुत सुन्दर शब्दों में समाधान किया। वे लिखते हैं–

"वे इस्लाम के वैरी नहीं थे और न ही उन्हें ऐसी शत्रुता से कोई विशेष लाभ हो सकता था, परन्तु वे उन मुस्लमानों के विरोधी अवश्य थे जो मज़हब की आड़ में अत्याचार कर रहे थे, जो स्वयं इस्लाम के नाम को कलंकित कर रहे थे और नाम मात्र के ही मुसलमान थे, अपितु अत्याचारी, लुटेरे, असभ्य और कठोर थे। वे इस्लाम के प्रचार के बहाने सब प्रकार के कत्ल करते और प्रत्येक धर्म का अपमान करते थे। किसी आदमी को भी मारना और लूटना वे पवित्र कार्य समझते थे।" (पृष्ठ ७१-७२

इस पुस्तक को किसी व्यापारिक दृष्टिकोण से नहीं मुद्रित किया जा रहा, ट्रस्ट का विचार और उद्देश्य इस पुस्तक को अधिक से अधिक हाथों तक पहुंचाना है, जिस से अधिक से अधिक हिन्दी पढ़ी-लिखी पीढ़ी इस पुस्तक से लाभ प्राप्त कर सके।

आशा है कि सिक्खों और इतर धर्मावलंबियों द्वारा इस पुस्तक का अधिकाधिक स्वागत किया जायेगा।

गुरु पंथ का दास–
गुरचरन सिंघ 'खालसा' (पत्रकार)
४८-ए ऐवीन्यू, क्रैनफोर्ड, मिडल सैक्स,
(यू० के०)

भूमिका

[लाला दौलत राय द्वारा]

यद्यपि मुझे अपने असामर्थ्य का ज्ञान था, परन्तु फिर भी दो बातों ने मुझे यह पुस्तक लिखने के लिये तैयार कर लिया; पहली यह कि कोई ऐसी विस्तार सहित लिखी हुई पुस्तक नहीं थी जिस में गुरु गोविंद सिंघ जी जैसे देशभक्त तथा महान् योद्धा के उद्देश्य स्पष्ट भांति लिखे गये हों। कई प्रकार की प्राचीन जन्म-साखियें और कुछ श्रद्धालुओं द्वारा लिखी हुई प्रवीचीन-साखियां प्राप्त हैं, परन्तु उनकी कई बातों को सत्य मानने में शंका होती है। इस प्रकार उनके जीवन के बहुत से सच्चे समाचारों को कृत्रिम समाचारों से पृथक् करना कठिन हो जाता है और इस प्रकार जिस व्यक्ति की जीवनी लिखी जाती है उस के साथ भारी अन्याय हो जाता है, क्योंकि घटा बढ़ा कर बताने से उन के विचार और समाचार असली रंग में दृष्टिगोचर नहीं करवाये जा सकते। गुरु गोबिंद सिंघ जी के संबंध में लिखी जन्म-साखियां इस दोष से रहित नहीं थीं, अपितु उन में कई समाचार ऐसे थे कि यदि उन पर विश्वास किया जाये तो गुरु जी का महान् उत्तम कार्य भी केवल मामूली सा और यूं ही सा प्रतीत होने लगता है। इस लिये मैंने अनुभव किया कि इस भावना से पुस्तक लिखी जाये जिस से उस महाबली के महान् कार्यों का और उसके उच्च विचारों का अच्छी तरह से पता चल सके।

इस पुस्तक के लिखने का दूसरा कारण यह था कि जन-

साधारण में कई व्यक्ति तो इस महावली के समाचारों को बहुत ही कम जानते थे, जिस के फल-स्वरूप कतिपय स्वार्थी लोग गुरु जी के विचारों और जीवन-घटनाओं के सम्बन्ध में बहुत सी असत्य और व्यर्थ बातें बता कर अपने स्वार्थ पूरे कर रहे थे। मेरा आश्चर्य एक पुस्तक को देख कर और भी बढ़ गया, जिस में उसके लेखक ने अनभिज्ञता-वश अथवा अपने विचारों का रंग देने के लिये महावली गुरु गोबिंद सिंघ जी के समाचारों और विचारों को गलत वर्णन करके उन के महान् पवित्र उद्देश्य को गंदला बना कर बताने का यत्न किया। और मेरा आश्चर्य उससे भी अधिक बढ़ गया जब उस समय के खालसा सिक्खों से कतिपय समस्याओं के सम्बन्ध में जानकारी लेने की आवश्यकता हुई। उन में बहुत से ऐसे थे जिन्हें कुछ भी पता नहीं था और वे यह भी नहीं जानते थे कि गुरु गोबिंद सिंघ जी के प्रामाणिक विचार क्या थे। कई व्यक्ति ऐसे भी मिले जो गलत विचार बनाये बैठे थे, और फिर उन के विचार परस्पर मिलते भी नहीं थे।

इन कारणों से मैंने इस महावली के जीवन-चरित्र को उन की वाणी की दिशा में विचारना आरम्भ किया। जैसे जैसे मुझे उनकी वाणी को विचारना पड़ा तैसे तैसे मेरे दिल में इस महावली का सत्कार बढ़ता गया। साथ ही मुझे इस बात पर खेद होने लगा कि अभी तक उनके पवित्र विचारों को बहुत हद तक तो बताया ही नहीं गया था और जो कुछ बताया भी गया था और जो कुछ बताया जा रहा है वह बहुत गलत ढंग से सम्मुख लाया जा रहा है। यहां तक कि कुछ विद्वानों के साथ गुरु जी के जीवन-चरित्र और विशेषतः उन के उद्देश्य के सम्बन्ध में विचारों का आदान-प्रदान करने से पता चला कि न केवल वे उस महाबली के उद्देश्य से ही अनभिज्ञ थे, अपितु बहुत हद तक गलत विचार बनाये बैठे थे। कतिपय लोगों में तो ऐसे गलत

विचार घुसड़े हुए थे कि यदि मुझे गुरु गोबिंद सिंघ जी की वाणी पढ़ने-विचारने का अवसर ना मिला होता तो इस महाबली के कार्यों की महत्ता को मेरा दिल प्रतीत ही न कर पाता।

कुछ समय मेरा भी यही विचार रहा कि गुरु जी केवल मामूली सुधारक से अधिक और कुछ न थे, परन्तु उन के विचारों तथा उनके समाचारों का मैंने गम्भीर अध्ययन किया तो मेरी कितनी रायें, मेरे कितने विचार, मेरे कितने अनुसंधान गलत सिद्ध हुए। प्रत्युत इस के उलट उस महाबली का सनमान और प्रेम मेरे दिल में इतना गहरा प्रभाव छोड़ गया कि मैंने प्रतीत किया कि इस महावली के विचारों को लोगों के पास पहुंचाने के लिये उनको पुस्तक के रूप में मुद्रित कर के पेश कर दिया जाये।

भारतवर्ष के कतिपय और महापुरुषों और सूरवीरों के समाचारों से परिचित हो कर जो सनमान और प्रेम उन के लिये मेरे दिल में उत्पन्न हुआ था, उस कारण मैंने संकल्प लिया था कि उन के जीवन-चरित्र अपने दृष्टिकोण से लिख कर आम जनता के सामने पेश करूं और इस कार्य के लिये मैंने कुछ सामग्री इकट्ठी कर ली, परन्तु महावली गुरु गोबिंद सिंह जी के समाचारों को जान कर इतना प्रभावित हुआ कि मैंने इरादा बना लिया कि और महापुरुषों के जीवन-चरित्र लिखने से पूर्व इस पवित्र आत्मा महावली गुरु गोबिंद सिंघ जी का जीवन-चरित्र लिखा जाय। यह निर्णय लेने से डेढ़ वर्ष तक मैं प्रतीक्षा करता रहा कि कदाचित कोई और खालसा इस कार्य को सम्पन्न करे जिस को गुरु साहिब की जीवन-घटनाओं का अधिकतर ज्ञान हो। परन्तु इस कार्य के लिये किसी ने उद्यम न किया। अन्त में मेरा दिल उछला और मैंने पाठकों को भेंट करने के लिये कुछ पृष्ठ लिख दिये। यह सब कार्य सम्पन्न करना मेरे लिये कठिन था, परन्तु

मेरे सत्कार योग्य मित्र लाला ज्वाला दास मास्टर हाई स्कूल डेरा गाजी खां ने मेरा हाथ बटाया जिस के लिये मैं उनका दिल से धन्यवाद करता हूं।

मुझे स्वयं ज्ञान है कि इस पुस्तक में मैंने जो कुछ लिखा है, वह पूर्ण नहीं है। परन्तु यह कुछ केवल इस आशा से लिखा है कि कदाचित् कोई इस अधूरे काम को सम्पूर्ण कर दे। पाठकों से मैं आशा रखता हूं कि मेरी त्रुटियों को यदि वे आलोचना करेंगे तो इस महाबली की वाणी को समक्ष रख कर ही कोई निर्णय देंगे। मेरे से जो बन पड़ा है, वह मैं पाठकों को भेंट कर रहा हूं।

दौलत राय

२३ जनवरी, १६०१

प्रस्तावना

हिन्दुओं की उस दशा का वर्णन जिस ने श्री गुरु गोबिन्द सिंघ जी को जन्म दिया

उन परिस्थितियों के सम्बन्ध में लिखने से पहले, जो गुरु गोबिंद सिंघ जी के खालसा धर्म का शिलान्यास करने और हिन्दुओं की राष्ट्रीय, धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन में क्रांति लाने का कारण बनी, किसी सीमा तक हिन्दुओं के जीवन के आंतरिक और बाह्य चित्र पर थोड़ा दृष्टिपात करना आवश्यक प्रतीत होता है। गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने हिन्दू-धर्म में सुधार किया और हिन्दुओं की दशा को पलटा दिया; न कोई नया धर्म चलाया और न किसी नये सम्प्रदाय की नींव डाली।* इस कारण जिन परिस्थितियों ने गुरु गोबिन्द सिंघ जी को जन्म दिया, उन का संक्षेप सा विवरण आवश्यक है। इस लिये सब से पहले हमें यह बताना आवश्यक प्रतीत होता है कि सिक्ख-धर्म के आरम्भिक अस्तित्व की स्थापना कैसे हुई।

सिक्ख-धर्म की नींव श्री गुरु नानक देव जी ने बाबर के समय में डाली। बाबर का राज्य समत विक्रमी के अनुसार १५१६ ईसवी में आरम्भ हुआ, परन्तु इस से ३५० वर्ष पूर्व ही लगभग सारा भारतवर्ष इस्लामी हकूमत के आधीन चला आता था।

---

*यह लेखक का व्यक्तिगत विचार है।

मुसलमानों को किन बातों ने भारत में आने के लिये प्रेरित किया उन का संक्षेप वर्णन इस पुस्तक की प्रस्तावना के ढंग से प्रस्तुत करना आवश्यक प्रतीत होता है और लाभदायक भी। मनु और महाभारत-काल के उपरांत हिन्दू-धर्म में भारी परिवर्तन हुआ। हिन्दू समाज में एकता न रही। उन के राष्ट्रीय ताने-बाने की धज्जियां उड़ गयीं। राष्ट्रीय माला के मणके बिखर गये। जाति भेद और दुराव इतना बढ़ा कि हर एक सम्प्रदाय न केवल एक दूसरे से अलग हो कर अढ़ाई चावलों की खिचड़ी पृथक पकाने लगा अपितु ये सम्प्रदाय एक दूसरे के विरोधी बन कर परस्पर लड़ने और एक दूसरे को उजाड़ने लगे। यद्यपि कई कारणों ने, जैसे देश के जलवायु, राजनीतिक परिस्थितियों और सामाजिक अधोगति ने जाति और वर्ण-भेद के बढ़ने में पर्याप्त हिस्सा डाला, परन्तु धार्मिक आचरण और रीतियों के भेदों, जैसे देव-पूजा, मनुष्य-पूजा, मूर्ति-पूजा और अंत में पशु-पूजा ने भी हिन्दुओं के इस वर्ण-भेद और सम्प्रदाय-भेद को बढ़ाने में कोई कम प्रभाव नहीं डाला। प्रत्युत हिन्दुओं की इस फूट और घृणा का कारण उनका धार्मिक भेद-भाव था। इस धार्मिक भेद-भाव और विरोध का जन्म ब्राह्मण धर्म के उत्थान के शिखर के समय हुआ, जब ब्राह्मणों ने अपनी शक्ति और प्रभाव को दृढ़ करने के लिये चार वर्णों की हद-बंदी और लपेट इतनी पक्की कर ली कि शूद्रों के ऊपर उठने की आशा सदा के लिये मिट गई और उन सब को विद्या से अलग रख कर अविद्या के रसातल में धकेल दिया गया। इसका फल यह हुआ कि वैदिक-धर्म ब्राह्मण-धर्म के रूप में केवल एक उज्जड और अत्याचारी धर्म दिखाई देने लग गया। धर्म जो सदा शांति, संतोष, सज्जनता और शुभ आचरण का प्रतीक माना जाता रहा है, अब हिन्दुओं के अपने

मानसिक संतोष और शांति का साधन भी न रहा। इस का असर यह हुआ कि अन्य अवैदिक धर्मों ने हिन्दुओं को लताड़ना और नष्ट करना आरम्भ कर दिया।

पहला आक्रमण बुद्ध-मत का था। उस में जाति-भेद नहीं था और नीचे को ऊंचा होने का अवसर धर्म-परिवर्तन के साथ ही मिल जाता था और यह सादा और सरल धर्म था। अगामी उन्नति केवल अपने ही कर्मों पर निर्भर थी, इस कारण यह मत शीघ्र ही फैल गया। उस के बढ़ने-फूलने का क्षेत्र हिन्दू ही थे। उस के अतिरिक्त उस समय भारत में और कोई धर्म था ही नहीं। इस कारण हिन्दुओं का एक पर्याप्त बड़ा भाग, जिन को हम शूद्र कहते हैं, बुद्ध-धर्म में प्रवेश करके सदा के लिये हिन्दुओं से बिछड़ कर अलग हो गया।

बुद्ध-मत ने हिन्दुओं की जड़ें हिला दीं और अंत में ऐसी उन्नति की और ऐसे शिखरों पर पहुंचा कि सारे भारत में बौद्धों का राज्य स्थापित हो गया। बौद्ध राजों ने सूर्य-वंशी और चन्द्र-वंशी कुलों के राज्यों का निशान मिटा दिया और रामचन्द्र और कृष्ण की राजधानियों के नाम संसार के इतिहास से लोप कर दिये। काफी समय ब्राह्मणों ने बुद्ध-मत के विरोध में हाथ पांव मारे, परन्तु क्योंकि क्षत्री निर्बल हो चुके थे और उन में परस्पर फूट थी इस कारण सदा हार और हार का मुंह देखते रहे।

अंत में अग्निकुल के क्षत्रियों ने क्षत्रि-धर्म को पुनर्जीवित करने के संकल्प से बल धारण किया। शंकराचार्य ने बौद्धिक प्रयत्न आरम्भ किये। धर्म का समयानुसार नवीन रूप पेश कर के क्षत्रियों ने बाहुबल की सहायता से बुद्ध-धर्म का बोरिआ-बिस्तर भारत से गोल करने में सफलता प्राप्त की। परन्तु ब्राह्मण क्षत्रियों

की सहायता के बिना कभी इस योग्य न हुए कि ज़ोर पकड़ सकें। फिर भी एक राष्ट्र बनाने और हिन्दुओं को बलवान और बड़े संगठित राष्ट्र का रूप देने में वे बिल्कुल ही सफल न हो सके। वे फिरका-प्रस्ती, फूट और परस्पर विरोध में ही लगातार लगे रहे। भूत के इतिहास से भी उन्होंने कोई शिक्षा प्राप्त न की। अग्निकुल के क्षत्रियों की संतान ने शाखाएं और हिस्से बना कर, परस्पर शत्रुता करके एक दूसरे को निर्बल करने में ही अपनी शक्ति लगा दी।

दूसरी ओर शंकराचार्य के चेले, जो ब्राह्मण ही थे, अपना पुरातन वैभव प्राप्त करने के लिये, वर्ण-भेद का चक्कर चलाने के लिये और आम हिन्दुओं को विद्या-रहित रखने के लिये पहले की भांति अपनी शक्ति लगाते रहे। उन्होंने सब ब्राह्मणों की अत्याधिक प्रशंसा कर के उन्हें अहंकार से भर दिया। ऐसी दशा में एकता न होनी थी और न हुई। प्रत्येक अपने ही रंग में रंगा और मदमाता प्रतीत होता था। शंकराचार्य ने ब्राह्मणों की प्राचीन श्रेष्ठता को प्रस्थापित करने के लिये कोई कसर न छोड़ी। परन्तु मूर्ति-पूजा को हटाने के लिये शंकराचार्य ने अपनी पूरी शक्ति लगाई। अविद्या, अधर्म, नास्तिकता, चार्वाक और पदार्थवाद के मुकाबले में बुद्ध-मत की मूर्ति-पूजा की शिक्षा और रीतियों को भी शंकराचार्य के लिये स्वीकार करना अथवा स्थापित रहने देना कठिन ही नहीं, अपितु उस के उद्देश्य तथा धर्म के रास्ते में एक बड़ी रुकावट थी। उस ने 'सब ब्रह्म ही है' के दर्शन का न केवल आप ही प्रचार किया, अपितु अपने चेलों की प्रणाली स्थापित करके इस प्रचार को कई गुणा बढ़ाया। फिर भी न तो एकता आयी न ही अशांति से छुटकारा मिला या तृप्ति प्राप्त हो सकी। यह नुसखा हिन्दुओं के वास्तविक रोग के

अनुकूल नहीं था। शंकराचार्य के लिये सब ही ब्रह्म थे, परन्तु फिर भी शूद्र तो शूद्र ही रहे। जाति-पाति की भिन्नता और वर्ण-भेद को शंकराचार्य का प्रबल दर्शन भी न मिटा सका। शंकराचार्य के दर्शन ने दिन की भांति अशांति के ताप को हरने का कुछ प्रयास तो किया, परन्तु हिन्दुओं की शारीरिक तथा आत्मिक तृष्णा की भड़कन न बुझी और तृप्त होने की जगह बढ़ती गई। शंकराचार्य के शिष्यों के प्रचार और मनोरंजक वाद-विवाद ने हिन्दुओं के विरोधी बुद्ध-धर्म को भारतवर्ष से निकालने में जो अद्भुत सफलता प्राप्त की उस सारी की सारी को शंकराचार्य के नाम के साथ जोड़ना न केवल गलत ही है, प्रत्युत कई प्रकार का अन्याय और अत्याचार भी। शंकराचार्य और उसके शिष्य कदाचित ऐसी सफलता प्राप्त ही नहीं कर सकते थे यदि कहीं अग्निकुल फिरकों के क्षत्री राजपूत योद्धियों की राजनीतिक शक्ति को कुचलने में सफल न होते। इस सफलता का श्रेय विशेषतः राजपूतों को ही प्राप्त है। उस समय का मुख्य राजपूत राजा ही शंकराचार्य का पहला सहायक था।

शंकराचार्य का इष्टदेव शिव था। यह सब कुछ तो हुआ, परन्तु शंकराचार्य की शिक्षा न तो बंटे हुये हिन्दुओं को इकट्ठा ही कर सकी और न ही किसी विषय पर सहमत ही कर सकी। जो धार्मिक मत-भेद और फूट चली आ रही थी, जो धार्मिक भिन्नताएं हो चुकी थीं उन पर उसका कोई प्रभाव न हुआ और न ही देश की सदाचारक अथवा राजनीतिक दशा पर कुछ प्रभाव पड़ा। वे किसी बात पर एक न हो सके और उन के धार्मिक और राजनीतिक अधिकार वैसे के वैसे ही प्रचलित रहे। शंकराचार्य के चेलों ने एक नये फिरके का रूप धारण कर लिया और इस प्रकार खराबी और मतभेद में और बढ़ौती हो गई।

वास्तव में रोग घटने के स्थान पर तेज़ी से बढ़ने लगा। उस के शिष्य रामानुज ने हिन्दू धर्म के इतिहास का एक और पृष्ठ पलटा! विष्णु को अपना आराध्य-देव मान कर नई शिक्षा और विद्या चला दी। हिन्दुओं के प्रसिद्ध सम्प्रदाय श्री विष्णु माधवी, विष्णु स्वामी, वल्लभाचारी आदि का वह ही जन्मदाता है। उस के भिन्न-२ शिष्यों ने, जिनमें रामानन्द जी सब से प्रसिद्ध हैं, विष्णु के कतिपय अवतारों की पूजा प्रचलित की। लोक-शान्ति और तृप्ति प्राप्त करने के लिये उन के स्रोतों की ओर भागे। वे स्रोत ऊपर से साफ, शुद्ध और भरपूर दीख पड़ते थे, परन्तु वास्तव में उन का तल कई प्रकार के मल, दुर्गन्ध और सड़न से भरा हुआ था। इस से रोग भयानक रूप धारण कर गया। कौम निर्बल थी, बंटी हुई थी, बिखरी पड़ी थी, एक दूसरे के विरुद्ध थी और परमात्मा से कहीं दूर थी। इन सम्प्रदायों के लोगों ने सब प्रकार के सुख और भोग-विलास के भिन्न भिन्न साधनों को ही समाज के रोग की दवा बताया। परन्तु समाज का रोग घटने की जगह बढ़ता गया। भोग-विलास, सुख की कामना, शरीर के पालने-पोसने और शरीर के शृंगार ने इस रोग को और भी बढ़ाया। कृष्ण के उपासकों ने वह उत्पात मचाया कि कौम का बाकी बचा नैतिक रक्त भी सुखा दिया। देखने के लिये बाकी कौम का मानो शव ही रह गया। यह दुबला-पतला पुतला अति दुर्बल और फूट के रोग से ग्रसित था, जिसका कोई न कोई अंग किसी न किसी रोग से नाकारा हो कर टूटता ही गया। परन्तु वैष्णव सम्प्रदाय ने तो सीमा का उल्लंघन करके इस रोग को घातक रूप दे दिया। लोग भोग-विलास की ओर ऐसे आकर्षित हो गये कि आरामप्रस्ती ने राष्ट्र की शक्ति को पूर्णतः नष्ट कर दिया। तन, मन, धन सब कुछ गुरु (ब्राह्मण देवता) को अर्पण करके समाज केवल लंगोटी में रंग रलियां मनाने लगा। इन

सम्प्रदाओं ने रीति-रिवाजों, मूर्ति-पूजा को बहुत स्थान दिया। गुरुडम की नींवों को इन्होने ऐसा उसारा और दृढ़ किया कि आज तक वे हिल नहीं सकीं।

मनुष्य के जीवन का उद्देश्य मुक्ति है। उसकी प्राप्ति का साधन केवल गुरुओं पर विश्वास लाना ही रखा गया है। सेवकों के तन, मन और धन को अपना करने के लिए माया मिथ्या और शेष सब कुछ ब्रह्म होने का ऐसा चक्कर चलाया कि कौम पूर्णतः नाकारा हो गई। वर्तमान समय के विद्वान जज राणाडे बम्बई ने अपने एक भाषण में कहा है कि वैष्णव धर्म द्वारा हिन्दुओं को अपनी दशा सुधारने का बड़ा भारी अवसर प्राप्त हुआ है, परन्तु हमें आश्चर्य इस बात का है कि उन्होंने परिणाम कैसा निकाला है, जो स्पष्ट भांति घट रहे समाचारों से पूर्णतः उलट है। प्रकट रूप में इस धार्मिक सम्प्रदाय से किसी प्रकार की उन्नति, धार्मिक उन्नति, राजनीतिक अथवा सामाजिक पक्ष से किसी प्रकार का भी कोई लाभ नहीं हुआ, प्रत्युत सुख-लिप्सा, कायरता, स्वार्थ, खान-पान में घृणा बढ़ती ही गई है। हां, यदि उनका यही उद्देश्य हो कि इस धर्म की उन्नति से मांस और मद के प्रयोग में कमी आई और उसके कारण जानवरों पर अत्याचार घटा और दया बढ़ी तो उसका श्रेय जैनियों को अधिक मिलना चाहिये। वे उन से कहीं आगे बढ़े हुए थे। वैष्णव सम्प्रदाय तो वास्तव में हिन्दुओं के जातीय आचरण को उसारने अथवा स्थिर रखने और सामाजिक, राजनीतिक अथवा धार्मिक उन्नति के रास्ते में रुकावट ही रहा है। उस से लाभ कोई नहीं हुआ। वास्तव में उनके कारण शारीरिक बल के साथ साथ जातीय विश्वास का भी पूर्णतः पतन हो गया। आवश्यकता तो इस बात की थी कि सारे लोग एक दूसरे के सहायक होते और समीप होते, प्रत्युत अन्तर और भी

बढ़ गया और वे एक दूसरे से और भी दूर हो गये। हिन्दु तो बहुत देर से बौद्धिक रूप से गुलाम ही थे, बाकी कमी इन वैष्णव गुरुओं ने पूरी कर दी। हिन्दू पूर्णतः गुलाम हो गया। अपनी बुद्धि और मस्तिष्क से काम लेना उन्होंने बिल्कुल छोड़ दिया और जिनके सहारे उन्होंने मस्तिष्क का प्रयोग करना छोड़ा, उन को इस कहावत पर पूरे उतरते देखा कि "जब मैंने देखा आखिर तू निकला भेड़िया।"

ऐसी दुर्बलता की दशा में दूसरी ओर शाक्त सम्प्रदाय वाले निर्दयता, दुराचार और अपवित्रता फैलाने में रत थे। शैव अपने आराध्य देव के सत्कारार्थ चरस, गांजा, भांग और मदिरा में लिप्त थे। और अनेकों सम्प्रदाय भी थे। इसी कारण आपस में विरोध और फूट थी। ऐसी अधोगति की दशा थी कि हिन्दू जाति के हृदय और मस्तिष्क भी अपने नहीं थे। ये परस्पर वाद-विवाद करने और लड़ने-भिड़ने में ही प्रवृत्त थे। परमात्मा को छोड़ कर लोग पशुओं और प्रकृति की पूजा में ग्रसित थे। दीन और दुनिया दोनों से ही भटके हुए थे और बाह्य कर्मों, भ्रमों, संशयों के जाल में जकड़े हुए थे। परस्पर भलाई का उन में रत्ती भर संकल्प अथवा विचार नहीं था। ऐसी दशा में उनका धार्मिक तथा सामाजिक दुरावों से ऊपर उठ कर परस्पर सहयोग का स्वप्न लेना भी असम्भव था। ऐसी पतन-ग्रस्त जाति भला एक खुदा-प्रस्त और जबर-जंग कौम के आक्रमणों से कैसे बच सकती थी? हिन्दुओं के पतन की तो कोई सीमा ही नहीं रही थी। अंततः हिन्दुओं के लिए ऐसा समय आ गया जबकि वे भिन्न-२ जातों में बंटे हुए थे, वे एक प्रभु की आराधना सो कोसों दूर थे, भिन्न-२ देवताओं अवतारों और मनुष्यों की पूजा के आडंबर का शिकार थे और विद्या से बिल्कुल कोरे थे। ब्राह्मण जोंकों की भांति जाति का खून चूस रहे थे। जाति अंधकार में डूबी हुई थी। न तो अपने

विश्वास में और न ही धर्म कारण उन में कोई एकता थी, न समाज में, न किसी रीति-रिवाज में, न खाने पीने में और न ही रहन-सहन में। राजकाज में भी कोई एक जैसे विचार न थे। संक्षेप में किसी पक्ष में भी सांझेदारी नहीं थी, प्रेम नहीं था। परस्पर मेल-मिलाप नहीं था, एकता की कोई भावना नहीं थी। भाव यह कि हिन्दू कौम को हर ओर से ढाह लगी हुई थी, हर तरह से यह दुर्बल और डूबी हुई थी। सम्मुख आने वाली इतनी बड़ी टक्कर के यह बिल्कुल समर्थ न थी।

स्पष्ट है कि दुर्बल और दीन, सर्वदा जबरजंग और शक्तिवान का गुलाम ही होता है। इसी कारण मुसलमान विजेताओं ने अपना रुख भारत की ओर किया और परिणाम वही हुआ जिसकी ऐसी परिस्थितियों में आशंका होती है। इस्लामी तलवार ने आखिर हिन्दुओं को गुलाम बना लिया। उन्होंने हिन्दुओं की रही-सही शक्ति को भी बिखेर दिया। जितना भी हो सका मुसलमानों ने उनको अपमानित और तिरस्कृत किया, उनकी लज्जा और प्रतिष्ठा को बरबाद किया। उन्होंने उनकी इज्जत और दौलत लूटी और अपने अधिकार में कर ली। उनके गले में गुलामी का पट्टा ऐसा डाला जिसको वे फिर कभी अपने गले से न उतार सकें। मुसलमान विजेता हिन्दुस्तान के कर्ता-धर्ता और ऐसे स्वामी बने कि जैसे मनुष्य पशुओं के होते हैं। इस्लाम के अत्याचारों के बाढ़ और तूफान के आगे भारत-वासियों का वश न चला और उनकी चेतना ही जाती रही। समाज का पर्याप्त भाग उन से टूट गया। उन अदूरदर्शियों ने इस बात में प्रसन्नता समझी कि शरीर का एक नाकारा अंग कट गया तो अच्छा हुआ। वे बुद्धि के अन्धे यह बिल्कुल नहीं समझते थे कि जिस को वे शरीर का निकम्मा भाग कह रहे थे वह धर्म के वातावरण

परिवर्तन से शूरवीर बन जाता है और कायर हिन्दुओं के धन-सामग्री का भी मालिक बन जाता है। इस्लाम ने पहली विजयों में ही हिन्दुओं पर कठोर अत्याचार किये और हिन्दुओं की मूर्तिपूजा इस्लाम के लिए हिन्दुओं पर अत्याचार करने के लिये बहुत बड़ा बहाना रही। इसी मूर्तिपूजा के कारण ही हिन्दू सारे के सारे उनकी दृष्टि में काफिर थे। इसी कारण वे उनसे न केवल घृणा करते थे, वरन् उनको प्रत्येक प्रकार की यातनाएं और यंत्रनाएं देकर अत्याचार करते और लूट, अपमान और तिरस्कार का निशाना बनाते रहे।

इस्लाम के प्रारम्भिक विजेताओं ने मज़हबी जोश में आकर बहुत अत्याचार किये और हिन्दुओं पर बहुत निर्लज्ज और असभ्य अत्याचार किये। हिन्दुओं के धार्मिक स्थानों और मन्दिरों की न केवल पवित्रता ही भंग की, अपितु उनको लूटा, मूर्तियें तोड़ीं और उनका चिन्ह तक मिटा दिया और उनके स्थान पर मसजिदें बना दीं। उन्होंने हिन्दुओं के केवल धन, सामग्री, वस्त्र-आभूषण ही नहीं लूटे, किन्तु उनके घर और मुहल्ले भी जला कर राख कर दिये। न केवल हिन्दू स्त्रियों की इज्जत लूटी, अपितु हज़ारों लाखों का वध करके सदा की नींद सुला दिया। असंख्य नर-नारी, बच्चे, युवा और बूढ़े कत्ल किए। अनेकों स्त्रियों को गुलाम बनाया और गज़नी के बाज़ारों में ले जा कर दो-दो दीनार में नीलाम किया और बेचा। हिन्दुओं से न केवल घृणा की और उन पर अत्याचार किये बल्कि उनको बलात् मुसलमान बनाया। हिन्दुओं की स्त्रियों को छीन कर, उनके साथ निकाह पढ़ा कर (मुसलमानी ढंग से विवाह करके) अपने महलों की शोभा बढ़ाई।

मुसलमानों का जो भी फिर्का अथवा वंश एक दूसरे के पीछे भारत में आया, सब ने ही हिन्दुओं से ऐसा ही भेद-भाव और

अत्याचार पूर्ण वर्ताव जारी रखा। ऐसी परिस्थितियों में यह स्वाभाविक बात थी कि विजेताओं और पराजितों में घृणा बढ़े। परिणाम-स्वरूप दोनों में अत्यन्त घृणा और शत्रुता उत्पन्न हुई और चलती रही। दोनों ही एक दूसरे को अत्यधिक नीचा और घृणित समझते थे। उनका परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं था। इस्लाम वाले अपनी विजय और शक्ति के नशे में आये दिन नये अत्याचार करते थे। हिन्दू कभी कभी अवश्य आंखें लाल पीली करते, परन्तु निर्बल और बेवस होने के कारण हौसला हार जाते और लज्जित भी होते। मुसलमानों की कठोरता और अत्याचारों का कोई अन्त न था। उनका सम्पूर्ण वर्णन इस पुस्तक के आकार से कहीं अधिक है और इसमें समा नहीं सकता। मुसलमानों की अपनी पुस्तकों में इनका करुणाजनक वर्णन अंकित है।

यद्यपि पुरानी कब्रों को इस समय उखाड़ना शोभा नहीं देता परन्तु फिर भी जो अत्याचार मज़हबी जोश और ताकत के नशे में मुसलमानों ने हिन्दुओं के ऊपर खुदाई आज्ञा और शरह का आदेश जान कर किये, उनको पुण्य कर्म समझ कर वे खुश होते थे। उन में से कुछ एक का संक्षेप वर्णन उदाहरणार्थ ही किया जाता है। ऐसा करना किसी शिकायत के लिये नहीं, प्रत्युत सच्चाई को उघाड़ने के लिये अत्यावश्यक प्रतीत होता है, जिस से पाठक स्वयं ही अनुमान लगा सकें कि वे लोग जो गुरु गोबिन्द सिंघ जी पर भी भ्रम-वश रक्त बहाने का दोष लगाते हैं, स्वयं ही निर्णय कर लें कि उस समय कैसा तूफान आया हुआ था और उसका इलाज क्या था।

'तारीख खालसा' पहले भाग से :—

महमूद ने हिन्दुओं के मन्दिरों को लूटा, उनके देवताओं का

अपमान किया, मूर्तियों को तोड़ा और हिन्दुओं को दिल खोल कर लूटा। हज़ारों खानदानों का धन लूट कर उन्हें सोना-चांदी रहित कर दिया। घास और चारे के लिए सारे देश को उजाड़ा। उन के मन्दिरों के द्वारों के चौखटे और बहुमूल्य सामान उतार कर अपनी मसजिदें बनाईं और सजाईं। मूर्तियों के टुकड़े टुकड़े करके मसजिदों के पायदान बनाए, जहां मुसलमान अपने जूते उतार कर मसजिदों के अन्दर जाते थे। लाखों स्त्रियों और पुरुषों की हत्या की। लाखों को कैद कर के, दासियां और गुलाम बना कर दो दो दीनार (जो २५ से ६० पैसे तक का होता है) ले कर गज़नी के बाज़ारों में बेचा। मथुरा नगर को पूरे बीस दिन लूटा, मन्दिरों में हिन्दुओं के दिल दुखाने वाले काम किये गये। वहां के राजाओं ने अपनी सारी सन्तान का वध कर के आत्म हत्या कर ली।

इस से पूर्व मुहम्मद बिन कासिम ने हिन्दुओं को पूर्णतः बरबाद कर के सिन्ध के राजा दाहर की दो पुत्रियों तथा अन्य अनेक स्त्रियों को कैद करके बगदाद में (जहां का वह नागरिक था) वहां के खलीफे के महलों में दाखिल किया।

कुतुबद्दीन ऐबक ने मेरठ के सारे मन्दिरों और मूर्तियों को तोड़ा और उन के स्थान पर मसजिदें बनवाईं। जिसने भी इस्लाम कबूल करने से इनकार किया उसे मौत का जाम पिलाया गया। केवल एक कलंजर नगर में ही ११३ हिन्दू मन्दिरों को गिरा कर मसजिदें बनवा दीं। हजारों हिन्दु वध किये गये और गुलाम बनाये गये।

तिबकाति नासरी के पृष्ठ ६ पर अंकित है कि बिहार की विजय के समय, इसी कुतुबद्दीन ने एक लाख के लगभग तो केवल

ब्राह्मणों की ही हत्या की और हिन्दुओं का प्रसिद्ध पुरातन पुस्तकालय जला दिया।

अमीर खुसरो की तारीख के पृष्ठ नौ के उल्लेख अनुसार फीरोज शाह ने दक्षिण की विजय के समय अनगिणित मूर्तियां वहां से लाकर अपने किले के मुख्य द्वार के आगे फेंकवा दीं और बहुत समय तक उन मूर्तियों को एक हज़ार हिन्दुओं के रक्त से नहलाता रहा। उसने दो बार मालवा देश को इस प्रकार लूटा कि वहां का जन समूह रोटी के लिए भी तरसने लगा।

दूसरी ओर अमीर अबदुल्ला खां के तज़करे और अलमसम्मद के तज़करे के संदर्भ अनुसार अलाउद्दीन खिलजी ने कमबात के चारों ओर के इलाके में इतने हिन्दुओं की हत्या की कि रक्त की नहरें बहा दीं। अनेकों बच्चों और बीस हज़ार सुन्दरियों को गुलाम बना कर अपने देश में भेजा। अलाउद्दीन खिलजी ने आदेश जारी किया कि हिन्दुओं को पहनने वाले आवश्यक वस्त्र आदि छः मास की आवश्यकता से अधिक खान-पान की सामग्री रखने की आज्ञा नहीं। इस से अधिक सब कुछ मुसलमानों के हवाले कर दिया जाये। हिन्दू तो काफिर हैं उनकी सब धन-सामग्री पर इस्लाम का अधिकार है। इस बादशाह के सम्बन्ध में यह भी प्रसिद्ध है कि उसने विद्रोह के सन्देह से अपने भाई और भानजी की जीते-जी खाल उतरवा दी थी और उन के मांस का पुलाव पकवा कर उनके पुत्रों और पुत्रियों को खिलाया था (जो अपने सम्बन्धियों और स्वधर्मियों के साथ ऐसा बर्ताव कर सकता था, उस के हिन्दुओं के साथ किये अत्याचारों का अनुमान लगाना कठिन नहीं होना चाहिये।

नगर दौलताबाद को तो उसने ऐसा तहस-नहस किया कि वहां कोई कुत्ता अथवा बिल्ला तक भी जीते न बचा। अन्धों को

उसने घोड़ों के पीछे बंधवा कर मरवाया।

(अमीर खुसरो की तारीख, पृष्ठ ९-१०)

हिन्दुस्तान की तारीख अनुसार, पृष्ठ १३४ :—

पटना नगर को उस ने मट्टी में मिला दिया और कमला देवी को वरवस अपने मज़हव में दाखिल किया।

अमीर खुसरो के अनुसार जलालुद्दीन खिलजी ने सारे मालवा और गुजरात के क्षेत्र को यहां तक लूटा कि वहां के हिन्दुओं के पास नग्नता को ढांपने वाले वस्त्रों और मिट्टी के वने वरतनों के अतिरिक्त कुछ भी न रहा। वीस सहस्र बच्चे, पुरुष और सुन्दरियां उसने लोगों को पारितोषिकार्थ बांटे। चौदह सहस्र हिन्दू ऋषियों के सिर काट कर किले की दीवारों पर रखवाये और हर एक के ऊपर दीया जला कर रौशनी की और पीछे यमुना नदी में फैंकवा दिये। (पृष्ठ ११)

फरिशता की तारीख अनुसार फीरोज़शाह ने जव नगर कोट कांगड़ा विजय किया तो सव हिन्दुओं को लूट कर मूर्तियों को तोड़ दिया और उन मूर्तियों के टुकड़ों को गाय के मांस में मढ़ कर ब्राह्मणों के गलों में हार पहनाये। तेरह सहस्र हिन्दू मूर्ति-पूजकों को कैद कर के मुंह में गौ-मांस ठूंस कर कत्ल किया गया। (पृष्ठ १२)

गयासुद्दीन ने राणा मल्ल भट्टी की पुत्री को वरवस मुसलमान वनाया और उस के साथ नकाह करके अपने हरम (अन्तःपुर) में शामिल किया। उसकी कोख से ही फीरोज़शाह पैदा हुआ।

इसी वादशाह के अत्याचार से बचने के लिये जैसलमेर में आठ सहस्र और भठिंडा में चौवीस हज़ार स्त्रियां अपने सतीत्व की रक्षार्थ जीती ही जल मरी थीं। (पृष्ठ १३)

तैमूर ने दयालपुर के पांच सहस्र, अयोध्या के चौदह सहस्र

और बनारस के बीस सहस्र मूर्ति-पूजक ब्राह्मणों तथा हिन्दुओं की हत्या की। उनके बच्चों और स्त्रियों को गुलाम बना कर अपने सैनिकों में बांट दिया गया। उसने पटना नगर के उनतीस हज़ार हिन्दुओं को एक स्थान पर इकट्ठा कर के जीते ही आग में जला दिया और आग से निकल कर भागते दस सहस्र हिन्दुओं को कत्ल कर दिया। डेढ़लाख तुर्की सैनिकों को उस ने लूट मार और बरबादी के लिए लगाया। दिल्ली में वह गर्व से कहता था, यद्यपि उसने लाखों हिन्दू वध किये फिर भी उसको संतोष नहीं होता। "मैं तो हिन्दुस्तान में सर्वनाश करने के लिये आया हूं। ऐश करने तो नहीं आया" (पृष्ठ १४)

तुज़कि बाबरी में स्पष्ट लिखा है कि "जो भी हिन्दू लड़ाई में पकड़े जाते थे, बादशाह के सम्मुख ला कर वध कर दिये जाते थे। (पृष्ठ १५)

शहाबुद्दीन और महमूद ने कन्नौज जैसे नगर को, जिस में केवल पानवालों की ही बीस हज़ार दुकानें थीं, लूटपाट करके पूर्णत: नष्ट कर दिया।

अमीर खुसरो के हवाले से बहलसा का मन्दिर जो १०५ गज़ ऊंचा और लगभग ५२ गज़ लम्बा-चौड़ा था, शम्मसुद्दीन ने गिरा कर भूमि से मिला दिया। इस की रक्षा के लिये सहस्रों हिन्दुओं ने प्राण न्यौछावर किये। अन्त में उस स्थान पर एक मस्जिद बना दी गई।

तारीख मीर मासूम के उल्लेख अनुसार इस्लामी विजेताओं ने पहले से ही यह आदेश जारी कर दिया था कि कोई हिन्दू अच्छा कपड़ा न पहने, अच्छा भोजन न खाये, घोड़े की सवारी न करे, दो मन्ज़िला मकान न बनाये, सुन्दर बेटा-बेटी न रखे, यदि हो तो मुसलमानों को दिये जाएं। टट्टियों का दरवाज़ा भी

पश्चिम की ओर न रखें।

तारीखच-नामा के अनुसार खलीफे की आज्ञा थी कि हिन्दू काफिरों को बिल्कुल चैन न लेने दो। जैसे भी बन पड़े, उनको इस्लाम में सम्मिलित कर लो, अन्यथा कत्ल कर दो। (पृष्ठ ६)

तैमूर शाह ने अपने 'तज़करे' में लिखा है कि वह भारत में केवल दो उद्देश्य ही ले कर आया। हिन्दू काफिरों को दीन इस्लाम में प्रवेश कराना, अन्यथा वध करना और काफिरों की धन-सामग्री लूट कर मुसलमानों को लाभ पहुंचाना।

(तमरनासक पृष्ठ ५८)

अन्य अंग्रेजी इतिहासों से प्रसंग सहित :—

एर्लफिंस्टन के इतिहास के उर्दू अनुवाद के पृष्ठ ४६१ पर लिखा है कि 'समुद्र के रास्ते अरब वाले सिंध पर काफी पहले समय से अर्थात खलीफा उमर के समय से ही आने शुरू हो गये थे। ऐसे जान पड़ता है कि इन लुटेरों ने सिंध की युवतियों के लिये ही यह संकल्प किया होगा, क्योंकि अरब वालों के दिल में इस देश की सुन्दरियों के लिये बहुत आकर्षण था।'

उपर्युक्त इतिहास के पृष्ठ ४६३ पर लिखा है: देवल के स्थान पर जब मुहम्मद बिन कासिम ने पहला मन्दिर और किला जीता तो सब से पहले उसने यह इच्छा प्रकट की कि ब्राह्मणों की सुन्नत की जाय। जब उनकी ओर से इनकार हुआ तो मुहम्मद ने आदेश जारी कर दिया कि सत्रह साल की आयु से ऊपर वालों सब की हत्या कर दी जाये और शेष को गुलाम और दास बना कर बगदाद भेजा जाये।

इसी इतिहास के पृष्ठ ४६५, टाड साहब के इतिहास की

जिल्द नम्बर १ पृष्ठ ३२७ और तारीख फरिश्ता के लेखक बरगज साहब की जिल्द ४, पृष्ठ ४०६ अनुसार राजा दाहर की विधवा ने मुहम्मद का सामना किया। कुछ देर नगर घेरे में रहा, परन्तु खाद्य-सामग्री समाप्त हो जाने पर स्त्रियां और बच्चे जीते जी आग में जल गये। पुरुषों ने नगर का द्वार खोल दिया और सामना किया परन्तु परास्त हुए और सारे के सारे मारे गये। जब मुसलमानों ने नगर में प्रवेश किया तो उन्होंने शेष बचे हुओं को भी कत्ल कर दिया और उनके बाल-बच्चों को गुलाम बना लिया।

इसी इतिहास के पृष्ठ ४६७ पर अंकित है: जो व्यवहार इस्लाम वाले दूसरों के साथ करते थे, उस से उनकी जीतें भी अत्याचार के रूप में ही प्रकट होती थीं। जब भी किसी बस्ती पर आक्रमण करते तो कहा जाता, "या तो इस्लाम कबूल करो नहीं तो जज़ीआ भरो।" यदि आगे से हील-हुज्जत होती तो सारी बस्ती पर हमला किया जाता। सशस्त्र पुरुष वध कर दिये जाते और उनकी सन्तान और स्त्रियां गुलामों की भान्ति बेच दिये जाते।

इसी इतिहास के पृष्ठ ५३० अनुसार नगर कोट के एक मन्दिर से ही सात लाख स्वर्ण मोहरें, नौ सौ मन सोना, दो हज़ार मन चांदी और बीस मन जवाहरात लूट से प्राप्त हुए और पृष्ठ ५३५ पर लिखा है कि महमूद मथुरा के मन्दिरों को बीस दिन तक गिरवाता, मूर्तियां तुड़वाता और नगर को लूटता रहा।

पृष्ठ ५३६ अनुसार महमूद ने महावन के राजा को सन्धि का वचन देकर उसे फिर धोखा दिया। अनेक हिन्दू कत्ल किये गये। सहस्रों दरया में डूब मरे। राजा ने अपने परिवार और रानी का वध करके स्वयं आत्म हत्या कर ली। मेखु के नागरिकों

ने किले की दीवारों से कूद कर आत्म हत्या कर ली या अपने परिवारों सहित अग्निभेंट हो गये और कोई जीता न बचा।

पन्ना ५४० पर लिखा है : महमूद ने अजमेर का क्षेत्र सारे का सारा उजाड़ दिया और कोई दिया जलता न छोड़ा। राजधानी को लूट और दाह कर नष्ट कर दिया।

फिर पृष्ठ ५४३ पर ऐसा वर्णन है : सोमनाथ की मूर्ति के दो टुकड़े मदीने और दो गज़नी भेजे। इसके अतिरिक्त एक टुकड़ा अपने दीवाने-आम में रखा और एक जामा मस्जिद में चढ़ा दिया।

पन्ना ५५७ के अनुसार महमूद के सारे जहाद और मज़हवी पागलपन की बहुत दुःखदायक बात वह है जो एक मुस्लिम लेखक ने लिखी है और प्राईस साहब ने अपने इतिहास में उसका वर्णन भी किया है कि हिन्दुस्तान से जो बन्दी पकड़े गये वे इतने अधिक थे कि कोई उनका मूल्य दो दो रुपये भी देने को तैयार नहीं था।

टाड द्वारा लिखित इतिहास के पन्ना २६३ पर लिखा है : मह ूद के इन कुकर्मों को देख कर आकाश भी विलाप करने से न रह सका। एलफिंसटन के इतिहास के पृष्ठ ५८२ अनुसार सुलतान महमूद से शहाबुद्दीन कहीं अधिक अत्याचारी और क्रूर था। उसने इस युद्ध के थोड़े दिन पीछे अजमेर को विजय किया। वहां के सामना करने वाले हज़ारों लोगों को कत्ल कर दिया। जो बच गये, उनको गुलाम बनाने के लिये जीवित रखा।

इसी इतिहास के पृष्ठ ५६७ पर लिखा है कि पंजाब के गक्खड़ों को गज़नी के पूर्व के हिन्दुओं को शहाबुद्दीन ने बलात् मुसलमान बनाया।

टाड का इतिहास पन्ना २७१ : जब कन्नौज जीत लिया गया तो राष्ट्र-घाती और जाति-विरोधी नमक हराम जय चन्द गंगा नदी में डूब मरा तो चौहान के सिंहासन के लिये शहाबुद्दीन के मुकाबले में अब कोई भी हिन्दुस्तान में बाकी न रहा। कत्ले आम लूटपाट और बरबादी का दौर आरम्भ हुआ, जो सैंकड़ों वर्ष जारी रहा। इस समय में अत्याचारी शत्रुओं ने विद्या, कला और धार्मिक स्थानों के चिन्ह बड़ी क्रूरता और निर्दयता से मिटा दिये। शीलवान् राजपूतों ने बड़े उत्साह और वीरता से हर अवसर पर अपने विरोधियों का डट कर सामना किया और उन के सब खानदानों को क्षति पहुंचाई, परन्तु भावी के आगे उनका कोई बस न चला। राजस्थान के गांव गांव की धरती विजेताओं और विजितों के रक्त से सींची गई; परन्तु सब व्यर्थ। विजेताओं के लिये नये नये सामान और रसद पहुंचती थी। एक के बाद दूसरा खानदान उत्तराधिकारी बन जाता था और सारे ही एक जैसे निर्दय, अत्याचारी और क्रूर थे जिनको कत्ल, विनाश, अत्याचार, लूटपाट और इस्लामी शरह लागू कर के पुण्य कमाने की प्रकृति उत्तराधिकार में मिली हुई थी। उन निराशा के युद्धों में राजपूतों के अनेकों कबीलों के नाम-निशान पूर्णतः अलोप हो गये और केवल इतिहास में उन के नाम वर्णन मात्र ही रह गये। एलफिंसटन के इतिहास के पन्ना ६१६ पर अंकित है कि केवल मेवात में ही उसने एक लाख व्यक्तियों का वध करवाया था।

इसी इतिहास के पृष्ठ ६३९ पर वर्णित है कि अलाउद्दीन खिलजी ने देवगढ़ को लूटा और धन इकट्ठा करने के लिये प्रजा को कई प्रकार के कष्ट दिये। रत्न वहुर एक साल के घिराव के पीछे जीता गया और घिरे हुए सारे के सारे अपने परिवारों

समेत कत्ल किये गये। अलाउदीन ने देवल देवी की प्राप्ति के लिये राजपूतों पर कितने ही हमले किये और चित्तौड़ के राजे की रानी को वरबस प्राप्त करने के लिये वहुत वरबादी और भयानक अत्याचार किये।

आगे इसी इतिहास के पन्ना ६५२ पर ज़िक्र है: मुबारक शाह खिलजी ने देवगढ़ के राजा हरपाल देवल की जीते जी ही खाल उतरवाई थी।

६६० पृष्ठ पर उल्लेख है: बहुत दुःखी और तंग होकर किसान अपने खेत छोड़ कर जंगलों में जा छिपे और बहुत से लोग वस्तियों से भी भाग गये। बादशाह मुहम्मद तुग़लक चाहे उनके ऐसा करने का स्वयं उत्तरदायी था, पर फिर भी वह बड़ा क्रोधित हुआ और ऐसे बुरे ढंग से उन विचारों से बदला लिया कि जिसने सारे ही पिछले अत्याचार मात कर दिये। उसने अपनी सेना को (मनुष्यों का) शिकार करने की तैयारी करके भेज दिया जिसने हिन्दुस्तान के काफी बड़े क्षेत्र को घेर लिया और आज्ञा दी कि जिसको भी इस घेरे में पाओ उसका शिकार करके पार बुलाओ। ऐसा शिकार उसने बहुत बार खेला। अन्तिम शिकार में उसने कन्नौज वासिओं का कतलेआम किया।

पृष्ठ ६७६ पर उल्लेख है कि तैमूर ने तुलम्बा के सारे निवासियों को कत्ल करवा दिया। इस के पीछे तैमूर भटनेर पर हमला करने गया और वहां के सब नागरिकों को कत्ल कर दिया गया। नगर को आग लगा दी गई। उसके बाद उसने समाणा की ओर रुख किया और वह जहां जहां से निकला प्रजा का वध करता गया।

इसी इतिहास के पन्ना ६७७ पर यह विवरण है कि तैमूर

ने दिल्ली में पंद्रह वर्ष से अधिक आयु वाले सब बन्दियों की हत्या करवा दी जिनकी संख्या एक लाख से अधिक थी।

तैमूर ने जब दिल्ली को जीत लिया तो उसकी सेना ने ऐसा सर्व-संहार किया कि शवों के ढेर लग गये और गलिओं और मुहल्लों में शवों के ढेरों के कारण आना जाना भी रुक गया। पांच दिन तक शहर की लूटमार और अग्नि की लपटों के दृश्य वह अपनी आंखों से देखता रहा। उसने ऐसी कतलेआम की, जिसका वर्णन करना कठिन है, उसको केवल अनुभव ही किया जा सकता है।

आगे पृष्ठ ६७८ पर लिखा है कि वह स्वयं उन दिनों रंगरलियां और जशन मनाता रहा। उपरांत फीरोज़ तुग़लक की मस्जिद में खुदा का शुक्र किया। फिर सब प्रकार पुरुषों और स्त्रियों को गुलाम और लौंडियां बनाया।

और आगे इसी इतिहास के पन्ना ६८२ पर अंकित है: सिकन्दर लोदी हिन्दुओं के जो नगर अथवा किले जीतता था, उन के मंदिरों को ढाह-ढेरी कर देता था। उसके राज्य में तीर्थ यात्रा और गंगा स्नान की आज्ञा नहीं थी।

फिर पन्ना ६८५ पर ऐसे लिखा है: बाबर की सेना ने लाहौर को जला कर राख कर दिया। उपरान्त दीपालपुर पर चढ़ाई की और सब सामना करने वालों को घेर कर कत्ल कर दिया।

इस प्रकार पृष्ठ ७०८ पर भी उल्लेख किया है: बाबर ने मेवाड़ पर बड़ी सेना के साथ चढ़ाई की और हज़ारों लोगों को कत्ल किया। चंदेरी के घिराव के अवसर पर सहस्रों घिरे हुओं ने अपनी पत्नियों को मार कर शत्रुओं का सामना किया।

फिर पन्ना ८१३ पर वर्णित है कि कुतव की लाठ के पास, दिल्ली में जो मस्जिद है पहले एक मन्दिर था, जिसको कुतबउद्दीन ऐवक ने मस्जिद का रूप दिया।

पृष्ठ ८४२ पर जिक्र है कि अकवर ने वहारा मल्ल जयपुर की बेटी के साथ नकाह किया। उसने चित्तौड़ को नष्ट किया, जहां सहस्रों राजपूतों ने अपने वाल-बच्चों को भस्म करके सामना किया परन्तु फिर भी मारे गये।

इस से अगले पृष्ठ पर उल्लेख है कि अकवर हिन्दू राजाओं के साथ सम्बन्ध जोड़ने का अत्यन्त इच्छुक था और इसके लिये यत्न भी करता था। उसके उत्तराधिकारियों ने भी इस नीति को चालू रखा। जयपुर और मारवाड़ के वंशों की दो बेटियां अकवर की बेगमें थीं और उसके वड़े पुत्र जहांगीर का नकाह जयपुर की दूसरी कुमारी के साथ हुआ। धर्म परिवर्तन करने से घृणा करने के स्थान पर उनके अन्दर वादशाह को दामाद वनाने का शौक तेजी से वढ़ा और उसकी वे दिल से इच्छा करने लगे।

आगे चल कर पृष्ठ ८७९ पर लिखा है कि अकवर ने नरसिंह देव, उसकी पत्नी और वच्चों को वन्दी वनाने के लिये और उस के घर-द्वार लूटने और नष्ट करने के लिये सेना भेजी, जिसको ऐसी क्रूरता करने के आदेश दिये जो पहले कभी भूल से भी नहीं दिये गये थे।

पृष्ठ ९२६ पर लिखा है कि जहांगीर वड़ा अहंकारी, अत्याचारी, निर्दई और अन्याई था। परन्तु वाद में वह पहले जैसा निर्दई और अत्याचारी न रहा।

इसी इतिहास के पृष्ठ ७०१ पर वर्णित है: वावर ने जव आगरा जीता तो पहला काम उसने यह किया कि लूट का सारा माल अपने साथियों में ही वांट दिया। अपने पुत्र हुमायूँ को

एक ऐसा हीरा दिया जो संसार भर में अपने जैसा केवल आप ही था। एक एक शाहरुखी, जिसका मूल्य आधा रुपया था, कावुल के प्रत्येक आज़ाद और गुलाम, बड़े और छोटे तथा मर्द और औरत को तोहफे के तौर पर भेजी। उसके दाता होने के कारण उसका नाम कलंदर पड़ गया। ऐसा होता भी क्यों न, पराये माल पर तो प्रत्येक व्यक्ति दानी बन सकता है।

इस प्रकार के और भी कई उदाहरण दिये जा सकते हैं, परन्तु थोड़े से नमूने से ही सारी असलियत का पता चल जाता है। यह बात प्रकट करने के लिये इतना पर्याप्त है कि गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने कौम को दुःखों में घिरी हुई और बेवस देखा और उसको कष्टों से मुक्ति दिलाने के लिये सोचा। हिन्दुस्तान के मुसलिम काल के इतिहास का कोई भी पृष्ठ उलट कर देखें तो इस्लाम के कठोर अत्याचारों के उदाहरण ही दीख पड़ते हैं। प्रत्येक बादशाह ने जितना भी उसका बस चला, भर-पेट हिन्दुओं पर अत्याचार किये। संक्षेप में इस्लाम का दौर हिन्दुओं के कत्ल तबाही और बरबादी का ही कांड है। नित्य नये सूरज हज़ारों हत्याएं की जातीं और रक्त की नहरें बहतीं। मुसलमान लाखों पुरुषों और स्त्रियों को गुलाम और लौंडियां बना कर और उन का माल-धन लूट कर स्वयं मालिक बन बैठे। हालत यहां तक पहुंच गई थी कि हिन्दू कोई भी अच्छी वस्तु अपने पास नहीं रख सकते थे। यहां तक कि सुन्दर नखशिख वाली और रूपवान सन्तान को भी उन अत्याचारियों को भेंट कर देने का आदेश था। घोड़े की सवारी करने की उन्हें आज्ञा न थी और पगड़ी बांधने की उन्हें मनाही थी, विशेषतः सफेद और यदि कहीं बांधनी भी हो तो फिर केवल लाल रंग की ही। यदि किसी हिन्दू का बढ़िया मकान, बाग अथवा बढ़िया

सामान मुसलमानों को पसन्द आ जाता तो वे छीन लेते और अपने कब्ज़े में ले लेते। यदि किसी की पत्नी अथवा पुत्री सुन्दर होती थी तो उस पर सेना चढ़ा कर बलात छीन कर उस से शादी कर लेते थे। यदि हिन्दुओं की किसी उत्तम पुस्तक का पता चलता तो उसे नष्ट कर दिया जाता। मन्दिर और शिवाला गिरा कर मस्जिद बनाई जाती। प्रत्येक हिन्दू के लिए दो दण्ड होते थे: इस्लाम स्वीकार करना अथवा कत्ल होना। वह दोनों में से जिसे चाहे चुन ले। वे यहां तक ज़्यादती करते थे कि यदि कोई हिन्दू योग्य, बुद्धिमान और कलाकुशल सुनते तो तुरन्त आज्ञा दे दी जाती थी कि उसे इस्लाम में दाखिल किया जाये। वह काफिरों के श्रेय का कारण नहीं होना चाहिये।

एक ब्राह्मण शतरंज अच्छी खेलता था। एक नवाब ने उसे बुलवा कर उसके साथ शतरंज खेली। नवाब शतरंज की बाज़ी हार गया। तुरन्त आज्ञा दी कि उसे मुस्लमान बना लिया जाये। काफिरों में जीतने की सूझ पूर्णतः समाप्त करनी चाहिये। पश्चिम की ओर घर के द्वार अथवा पखाने का मुंह रखने की आज्ञा न थी, क्योंकि काबे की ओर पीठ करने से अपमान होगा। यदि किसी हिन्दू पहलवान ने मुस्लमान पहलवान को चित्त कर दिया तो आज्ञा हो गई कि उसे तुरंत इस्लाम में दाखिल करो, उसने मुस्लमान को क्यों पछाड़ा है। हिन्दू अपने मन्दिरों में न शंख और न घड़ियाल बजा सकते थे। केवल हिन्दू रहने के लिये हिन्दुओं को प्रति वर्ष जज़ीआ (एक प्रकार का कर) देना पड़ता था और लाखों हिन्दू जो जज़ीआ चुकता नहीं कर सकते थे, इस्लाम में दाखिल कर लिये जाते थे। धीरे धीरे सब हिन्दू राजे हार गये। देश में अंधकार छा गया। राजपूतों की तो यह दशा हो गयी कि वे अपनी बेटियों के डोले देने पर ही गर्व करने लगे।

जो हिन्दू उन से घृणा करता उसके साथ हिन्दू राजपूत ही बुरा बरताव करने लगते थे। धार्मिक भेद-भाव तो पहले ही बहुत था। विजेता मुस्लमान हिन्दुओं को नीचा समझते ही थे, परन्तु अब सामाजिक मामलों में उन को नीचा समझने लगे। जो कुछ भी हिन्दू करते थे, मुस्लमान उसके उलट करते थे। हिन्दू पोशाक का गला खुलने का रास्ता दायीं ओर रखते थे तो मुस्लमान बायीं ओर रखने लगे, हिन्दू अपने चोगे के घुंडियां दायीं ओर लगाते थे तो मुस्लमानों ने बायीं तरफ लगानी आरम्भ कर दीं। हिन्दू नीले रंग से घृणा करने लगे थे, मुस्लमानों ने उसको पवित्र रंग बना लिया। हिन्दू केसरी रंग को पवित्र समझते थे; मुस्लमान उस से घृणा करने लगे। इन बातों से विचारयोग्य तीन निष्कर्ष निकलते हैं :—

(१) मुस्लमान विजेता, पत्थर-दिल थे, और उन्हें अपनी प्रजा को निष्ठुरता और निर्दयता से कतलेआम करवाते हुए कभी भी दया का विचार तक नहीं आता था। न ही कभी उनकी आत्मा ने उन्हें अंदर से झकझोरा था। वरन् ऐसे कत्लों और खून-खराबे से वे प्रसन्न होते थे और खुदा का शुक्र करने लग जाते थे जैसे उनसे कोई भारी पुण्यकर्म हो रहा हो।

(२) इस्लामी विद्या और शिक्षा के प्रभावों की ओर ध्यान देना आवश्यक है कि वे किस प्रकार उनको ऐसी निष्ठुरता से अत्याचार करने की प्रेरणा देते थे; जिस से उन में से भलाई, दया और अनुकंपा बिल्कुल ही अलोप गई थीं और उन के दिलों में इतनी कठोरता और अत्याचार भर गया था। उस शिक्षा ने उन की रग रग में अत्याचार ही भर दिया। अश्चार्य की बात यह है कि जिन हिन्दुओं को बलात् मुस्लमान बनाया जाता था, वे भी उन में मिलते ही उन्हीं जैसे निर्दय, कठोर और अत्याचारी बन जाते थे और अपने भाईओं और देशवासियों की

रक्त के प्यासे बन जाते थे। वापस आने का तो वे स्वप्न भी नहीं लेते थे। लौट कर वे करते भी क्या ? वे ही फूट, निर्बलता और संकटों के पहाड़ ! वे ऐसे गये कि अपने भाईयों के खून के प्यासे हो गये। जो ब्राह्मणों से मुसलमान बनते थे, मुसलमान उन्हें सैयद मान लेते थे। यही कारण है कि हिन्दुस्तान में सैयदों की संख्या बहुत अधिक है। उनको श्रेय प्राप्त हो जाता था और वे भी मार खाने वाले ब्राह्मणों की जगह अत्याचारी शासक बनना पसंद करने लगे। क्षत्रियों को मुगलों में बदल लिया जाता था। वे भी शासन के सांझी बन कर, अपने देशवासियों को छोड़ कर, तलवार से अपने ही भाईयों का रक्त वहाने लगते थे।

(३) हिन्दुओं की उत्साह-हीनता, अपमान, स्वार्थ, ना-समझी, बुद्धि-न्यूनता के कारण चाहे वे बार बार देखते थे कि वे एक एक करके सब तबाह, बरबाद और नष्ट हो रहे थे; लाखों कत्ल होते थे और गुलाम बनते थे; मंदिर और मूर्तियां तोड़ी जा रही थीं, फिर भी उन में एक दूसरे का तमाशा देखने की रुचि थी और किसी को भी यह सूझता न था कि ज़रा मिल कर शत्रु का सामना करें, एक ही इरादा और लक्ष्य बना कर अकस्मात् आक्रमण करें और उसको क्षति पहुंचाएं। प्रत्येक अपने अपने में ही मस्त रहा और अन्त में सारे ही नष्ट हो गये। अन्त में वह समय भी आ गया जब हिन्दुओं को अपनी मान-मर्यादा बचाने के लिये ऊपर आकाश की ओर देखने के अतिरिक्त कोई साधन न रहा। उन के पास कोई वस्तु न बची, जो उनके मन को चैन और शांति दे सके। न ही उनको अपना धर्म ही दिखाई देता था और न ही धरती। वे बिल्कुल निर्बल और सत्ताहीन हो गये थे। न ही उनमें साहस और न ही आवेश रहा। कहीं कहीं कोई कोई राजपूत शासक था। परन्तु वह भी पहाड़ियों, कंदराओं

तथा खंडरों में ही बचा हुआ था। उनके पीछे भी टिड्डी-दल की भांति इस्लामी सेनाएं हर समय जहाद के लिये तैयार रहती थीं। ऐन सम्भव था कि हिन्दू-धर्म का जहाज़ ही ग़रक़ हो जाता और वैदिक धर्म के सेवक सदा के लिये संसार से अलोप हो जाते। इस निराशा के दौर में बाबर के समय एक ऐसा मल्लाह पैदा हुआ, जिस ने वैदिक-धर्म के अस्तित्व के लिये एक जल-पोत तैयार किया और उसके सुघड़ और योग्य उत्तराधिकारियों ने हिन्दुओं को तूफान में ग़रक़ होने से बचा लिया। यह मल्लाह कौन था ? ये गुरु नानक देव जी थे।

गुरु नानक देव जी ने हिन्दू धर्म के सब छिद्रों और त्रुटियों को पुन-छान कर किसी हद्द तक साफ किया। उन्होंने सोचा कि सब धर्मों को परस्पर प्रेम करने की शिक्षा दे कर पहले तो यह यत्न किया जाये कि दोनों कौमों के बीच घृणा का क्षेत्र घटाया जाये और फिर जिन कारणों से मुस्लमान हिन्दुओं से अधिक घृणा करते हैं और उन्हें काफिर कहते हैं और इस बहाने से उन पर अत्याचार करना जायज़ समझते हैं उन कारणों को दूर किया जाये। उन के लिए यह आवश्यक हो गया कि हिन्दू-धर्म से मूर्ति-पूजा जैसी सब बुराईयां दूर की जायें। यद्यपि मूर्ति-पूजा भी हिन्दुओं ने अन्य कौमों से नकल ही की थी, परन्तु इस अनुकृत वेश में वे बेहाल हुए अनेक कष्ट झेल रहे थे परन्तु इस चिथड़े को उतारते नहीं थे। इसी लिये प्रभु भक्ति द्वारा गुरु नानक देव जी ने हिन्दुओं के उन सब कारणों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहा। गुरु नानक देव जी बहुत ही सूझवान और दूरदर्शी थे। वे हिन्दुओं की आंतरिक अवस्था को अच्छी तरह जानते थे। मुस्लमानों के बलात्कार और अत्याचार भी उनके समक्ष ही थे। इस लिये हिन्दुओं के रोग की चिकित्सा के लिये उन्होंने एक बढ़िया नुसखा खोज निकाला। वह नुसखा ऐसा था, जो उनकी

सब बुराईयों के कारण दूर करदे, जिन से वे रोग-ग्रस्त हो जाते थे। मुस्लमान हिन्दुओं को मूर्ति-पूजा के कारण काफिर समझते थे,और उन्हें कत्ल करना और उन की मूर्तियों को तोड़ना पुण्य और अपना धार्मिक कर्त्तव्य मानते थे। इसी हीले-बहाने से वे हिन्दुओं के मन्दिर गिराते और उन्हें ज़बरदस्ती मुस्लमान बनाते थे। मुस्लमान परमात्मा के समान किसी अन्य को स्थान देने के कड़े विरोधी थे। गुरु नानक देव जी ने हिन्दुओं को उपदेश दिया कि एक ईश्वर के अतिरिक्त किसी की पूजा करनी उन के लिये अनुचित है। मूर्ति-पूजा परमात्मा के निर्देश का उल्लंघन है। ईश्वर का कोई शरीर नहीं, वह अकाल है। उसकी कोई मूर्ति नहीं। उनको दृढ़ कराया कि उनके पूर्वज भी परमात्मा को अकाल और शरीर रहित ही मानते थे और मूर्ति-पूजा से घृणा करते थे। गुरु नानक देव जी ने इसी कारण द्वैत मिटा कर एक ईश्वर की पूजा का ही प्रचार किया और इस ओर हिन्दुओं को नम्रता और प्रेम से प्रेरित किया।

उन्होंने यह काम ऐसे ढंग से आरम्भ किया और निवाहा, जिसे केवल वे ही निवाह सकते थे। यही कारण था कि मुस्लमान भी ऐसे साहसी व्यक्ति के विरुद्ध न हुए जो हिन्दुओं को उन के मुकाबले में लाने की नींव डाल रहा था। न ही मुस्लमानों को कभी यह बात सूझी थी।

गुरु नानक देव जी ने अवतार, तीर्थ और अन्य ऐसी बातों के सम्बन्ध में, जो मूर्तिपूजा का विशेष कारण बन रही थी, नर्मी के साथ ज़बान खोलनी आरम्भ की। गुरुडम को भी सोधा और ऐसे सहयोग के ढंग का प्रयोग किया कि न तो मुस्लमान ही भड़के और न ही वे इसके दूर-प्रभावी परिणामों का अनुमान लगा सके, जो इस प्रचार के फल-स्वरूप पैदा होने थे। न ही

हिन्दू अपनी धार्मिक रीतियों के विरुद्ध गुरु जी का उपदेश सुन कर आशंकित हुए। प्रत्युत वे उनके प्रचार को चुप करके स्वीकार करने लगे क्योंकि उन के विचार भक्ति-भाव से ऐसे लथपथ थे कि किसी प्रकार की शंका की सम्भावना नहीं प्रतीत होती थी।

गुरु नानक देव जी के समय में सिक्खों की कोई इतनी बड़ी संख्या तो न थी, परन्तु उन्होंने जिस प्रकार का बीज बोया, वह उगने और बढ़ने लगा।

बड़े आश्चर्य की बात है कि ब्राह्मणों ने अपनी पुरानी आदत के अनुसार न तो गुरु नानक के प्रचार का विरोध किया और न ही मूर्तिपूजा, श्राद्धों तथा अवतारों की रक्षा का प्रयत्न किया और न ही किसी भान्ति का हल्ला-गुल्ला मचाया। यदि किसी ने थोड़े बहुत हाथ-पांव मारे भी, वे इतने मामूली थे कि उनका कोई असर ही न हुआ। परन्तु उन्हों ने उनके प्रचार को स्वीकार भी नहीं किया क्योंकि गुरु नानक देव जी क्षत्रिय थे और ब्राह्मणों का उनके अनुयायी होना कठिन बात थी। अन्यथा जो काम गुरु नानक देव जी ने अपने समय में किया वह शंकराचार्य के काम से किसी प्रकार भी कम वजनदार न था, प्रत्युत कई पक्षों में बहुत ही महत्वपूर्ण था। शंकराचार्य के साथ बचे-बचाये क्षत्रिय थे और ब्राह्मणों का समूह भी उन के साथ था। गुरु नानक देव जी ब्राह्मणों के धार्मिक कर्म काण्डों के विरुद्ध थे और उन की रीतियों को ही हिन्दुओं के पुराने रोग का बड़ा कारण मान कर उनको समाप्त करने के काम में लगे हुए थे। इस कारण ब्राह्मणों से सहायता की कोई आशा न थी। उस समय की आवश्यकता ही कुछ ऐसी थी और बदल रही परिस्थितियां भी कुछ ऐसी ही थीं कि स्वयं ब्राह्मण इस योग्य नहीं रहे थे कि वे किसी ढंग से

अपना बचाव कर सकें। इस लिए प्रतीत यह होता है कि उन्होंने भी इसी में अपना भला समझा। उन्होंने शान्ति और गम्भीरता से काम लिया और सोचा कि जो भी कम से कम हिन्दू गुरु नानक देव के अच्छे प्रयत्नों और साधनों से बच जायें वे ही गनीमत। फिर जब कभी समय ने साथ दिया वे अपने धर्म की बात कर लेंगे अन्यथा यह सम्भव नहीं हो सकता था कि ब्राह्मण अपने निर्वाह और अधिकार पर होते आघात को पसन्द करते।

बड़ी दुःखदायक बात यह थी कि हिन्दू धर्म को छूतछात का रोग लगा हुआ था, जिस से हिन्दू धर्म बिल्कुल नष्ट हो चुका था। गुरु नानक देव जी ने बड़े कुशल ढंग का प्रयोग किया और छूत-छात के विचारों को धर्म से बिल्कुल अलग कर दिया और तीर्थ स्नान आदि को शारीरिक शुद्धि के साधन तक सीमित रखा।

गुरु नानक देव जी अपने उद्देश्य में पर्याप्त मात्रा में सफल हुए। उनकी सहयोग की नीति का प्रयोग बहुत हो उपयोगी सिद्ध हुआ। इससे हिन्दुओं को अपने धर्म की पकड़ के लिये नये साधन मिल गये और नया बल प्राप्त हुआ। उनकी इस सुलहकुल नीति के कारण ही हिन्दू और मुसलमान दोनों उनका सम्मान करते थे।

दूसरी ओर बंगाल में चैतन्य ने भी अपने समय में कृष्ण-भक्ति के सब नवीन विचारों का प्रचार किया और डूबते हिन्दू धर्म को कुछ टेक दी। उन्होंने यहां तक उदारता दिखाई कि एक जन्म से मुसलमान को हिन्दू धर्म में मिला कर अपना चेला बना लिया। गुरु नानक देव जी से पहले कबीर आदि भक्तों ने उस समय के परस्पर विरोध की कड़वाहट और खींच-तान को मिठास में बदलने का पुरुषार्थ किया था। परन्तु समय के प्रभाव

के कारण गुरु नानक देव जी का सुलहकुल प्रचार शीघ्र सफल न हो सका। एक ओर मुस्लमानों ने अपने अत्याचारों का तांता जारी रखा और दूसरी ओर हिन्दुओं ने भी गुरु नानक देव की शिक्षा से ईर्ष्या होने के कारण, उन बातों का पूरी तरह त्याग न किया जिनके कारण वे मुस्लमानों की नजरों में काफिर बन कर खटकते थे।

देखने को तो अकबर ने भी यही यत्न किये कि हिन्दू-मुस्लमान मिल-जुल कर रहें, जो घृणा उन में घर कर गई थी वह घट जाये और वे सहनशील बन जायें, फिर भी हिन्दुओं के लिये तो उसकी नीति अधिक घातक सिद्ध हुई। हिन्दुओं ने तो धार्मिक संकीर्णता के कारण मुस्लमानों की बेटियां लेनी ही न थीं, और न उन्हें ऐसा करना अच्छा लगता था, यद्यपि अकबर ने ऐसी तजवीज़ राजपूतों के सम्मुख रखी भी, परन्तु हिन्दू विवश थे। और राजपूत राजे अपनी बेटियों की डोलियां मुस्लमानों को देने में अपनी शान समझने लगे।

संक्षेप में, हिन्दुओं के लिये वह समय आ गया जब उनके पतन के सब सामान पूरे हो गये। राजपूत क्षत्रियों पर हिन्दुओं को कुछ आशा थी कि वे हिन्दू धर्म की रक्षा करेंगे। देश तो हाथों से निकल चुका था अब धर्म के लोप होने के दिन दिखाई देने लगे। माना कि देश की परिस्थितियों के कारण हिन्दू राजाओं ने मुस्लमानों की बेटियां लेनी अस्वीकार कर दी हों, परन्तु वे भी देने को कहां तैयार थे। यह तो उन की एक चाल थी और साथ ही शासन का आंतक और दबाव भी था, जिस से राजपूत अपनी बेटियां देने के लिये विवश हुए। हिन्दुओं के लिये ऐसे दुर्भाग्य का समय न कभी इस से पूर्व आया था और न ही पीछे जब कि वे स्वयं अपनी खुशी से मुस्लमानों को अपनी लड़कियां पेश करने

लगे। यह सब कुछ होने के बाद भी हिन्दुओं की बिगड़ी दशा में कोई सुधार न हुआ। हो सकता है कि हिन्दुओं को कुछ आंतरिक शांति प्राप्त हो गई हो अथवा धार्मिक और आत्मिक दृष्टि से कुछ न्यूनाधिक उन्नति तथा प्रसिद्धि मिल गई हो परन्तु लगातार कठोरताओं, अत्याचारों और आपसी घरेलू युद्धों के मध्य यह सब कुछ होना असम्भव था। फिर भी उनमें धार्मिक रूप से एकत्रित शक्ति बिल्कुल प्रकट न हुई और न ही वे कोई सामर्थ्य प्राप्त कर सके जिस से वे नित्य सामने आने वाले संकटों और कठिनाइयों से टक्कर ले सकते। गुरु नानक देव जी और उन से पहले के सुधारकों के यत्नों से हिन्दुओं का रोग कुछ कम चाहे हो गया था, परन्तु पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हुआ था। परिस्थितियों के बदलने से रोग फिर तेज़ी से बढ़ जाता था।

औरंगज़ेब का काल तो हिन्दू धर्म के लिये बहुत ही कठिन और परीक्षा का समय था। वह इतना कट्टर था कि हिन्दुओं को इस्लाम में शामिल करने के लिये वह अत्यंत कठोरता और अत्याचार का प्रयोग करता था। जितने भी मुसलमान बादशाह हिन्दुस्तान में हुए, सारे ही दिल से हिन्दुओं के विरोधी थे और हर सूरत उन पर अत्याचार ही करते थे। इतिहास का प्रत्येक पन्ना इस बात का साक्षी है। परन्तु इस बात में जितना औरंगज़ेब बदनाम है उतना और कोई नहीं।

प्रश्न यह है कि क्या यह वास्तव में सच्च है कि जितना औरंगज़ेब बदनाम है और उस से घृणा की जाती है, उस ने अत्याचार भी उसी तरह किये? इस सम्बन्ध में हम सहस्रों में से केवल एक ही उदाहरण दे कर निर्णय समझदार पाठकों के न्याय पर ही छोड़ते हैं। टाड साहब ने राजस्थान के इतिहास में औरंगज़ेब के मेवाड़ के इलाके पर हमले के अवसर का वर्णन

करते हुए लिखा है कि उस ने भी अकवर की भांति हिन्दुओं की हत्या की, परन्तु उस ने वहां के राजपूतों को कत्ल करवा कर कत्ल किये जाने वालों के साढ़े चौहत्तर मन यज्ञोपवीतों से विजय का उत्सव मनाया। इसी प्रकार औरंगजेब अपनी जीतों को जनेऊओं से ही मापा-तोला करता था। मन का तोल चाहे कितना भी कम मान लिया जाय, उस के इस काम से उसकी निर्दयता और अत्याचार तो काफी स्पष्ट हो जाते हैं। औरंगजेब भी पहले इस्लामी विजेताओं जैसा ही दुराग्रही और संकीर्ण-हृदय था। वे सारे के सारे ही इस्लाम को फैलाना दीन और दुनियां में सम्मान का साधन और अपना पवित्र कर्त्तव्य समझते थे और इस कर्त्तव्य-पालन पर गर्व करते थे और अपनी शान समझते थे। भारत के पहले मुसलमान वादशाह राजनीतिक अत्याचारों की आड़ में अपना मज़हवी पागलपन हल्का कर लेते थे। हिन्दू दुःखी यद्यपि वहुत होते थे, परन्तु वे राजनीतिक अत्याचार को सहन करने के आदी होते जाते थे। इस कारण वे अत्याचार सहते रहते थे और दिन गुजारते जाते थे।

औरंगजेब की निर्दयता और अत्याचार के कारण उसकी धार्मिक रुचि और रंग थे। उसकी कोशिश यह थी कि भारतवर्ष से कुफ्र और काफिरों का निशान ही मिटा दे और सबको इस्लाम के रंग में रंग दे। इस के भी अनेक कारण थे। जितनी निर्दयता उसने अपने भाईयों को कत्ल करने और वाप को कारागार में डाल कर दिखाई थी, वह उसका वदनामी और कलंक के टीके को धोना चाहता था। वह अपने इर्द-गिर्द को मज़हवी जोश दिखा कर पतियाना और फुसलाना चाहता था, जिस से उस के पाप उन से छुपे रहें। उसका सब से वड़ा भाई, दारा शिकोह जो राजगद्दी का असली वारिस था अकवर की भांति सब से प्रेम करने की नीति वाला और हिन्दुओं की वेदांत-विचारधारा के वहुत

समीप था। औरंगज़ेब उसको भी कुफ्र से भरा हुआ समझता था और उसके विरुद्ध जहाद को ठीक सिद्ध करने के लिये इस्लामी जोश प्रकट करने को अपना उच्च कर्त्तव्य समझता था। इस से यह अच्छी तरह से सिद्ध हो जाता है कि उसके अत्याचारों के पीछे राजनीतिक आवश्यकता से कहीं अधिक उसकी मक्कारी, धोखे-बाज़ी और अन्धविश्वास थे।

अब ऐसा समय आ गया था कि हिन्दुओं का नाम-निशान ही धरती से मिट जाता। धर्मान्धता का यह तूफान, पागलपन को इस्लामी बाढ़ हिन्दुओं की तबाही के लिये अति भयानक थी। उसके मुकाबले में हिन्दुओं की दशा क्या थी? वे इतने पतनशील थे कि वर्णन करना भी लेखनी की शक्ति से बाहर है। वह ऐसा समय था कि भारत की चारों दिशाओं में इस्लामी हकूमत का डंका बज रहा था। हिन्दुओं की कोई हकूमत बाकी नहीं रही थी, सिवा कुछ छोटी रियासतों के जो जंगलों और पहाड़ों या गुफा-घाटियों में कायम थीं। उनके पीछे भी उनको मलियामेट करने के लिये इस्लामी टिड्डीदल फौज सदा पड़ी रहती थी। वे विचारे पहाड़ों में छुप कर दिन बिता रहे थे और हिन्दुओं की किसी तरह भी रक्षा नहीं कर सकते थे। चंद्रवंशियों का नाम-निशान ही भारत-वर्ष की धरती से मिट चुका था। उन के स्मारकों का भी कोई चिन्ह बाकी न रहा था। कृष्ण और युधिष्ठिर जैसे वीर योद्धाओं की संतान में से भी देश की बुरी दशा पर विलाप करने वाला और आंसू बहाने वाला कोई नहीं था। सूर्यवंशिओं के अधमिटे चिन्ह और टिमटिमाते दिये मेवाड़ के राजे पहाड़ों की कंदरों और जंगलों में छिप कर समय बिता रहे थे। अग्निकुल राजपूत, अपने धर्म, देश और सन्तान का नाश करने वालों को अपनी बेटियों की डोलियां पेश कर

रहे थे। क्षत्रिय और खत्री खानदानों के नाम लोप हो चुके थे। अब कोई भी हिन्दुओं की रक्षा करने वाला नहीं था। उन में कोई शक्ति बाकी नहीं थी। वे निर्बल और अपाहज बन कर रह गये थे। वे क्षत्रिय और राजपूत सब मर चुके थे जिन के सम्बन्ध में टाड साहब ने ये वाक्य लिखे थे।

दिल्ली की विजय और दिल्ली के राजा की गिरफ्तारी ने, उसके साथी चित्तौड़ के राजा और उसके वीर सैनिकों की मृत्यु ने भारत का द्वार तातारियों की जीत के वासते सदा के लिये खोल दिया। जब कन्नौज फतह हो गया और कौम-घातक, धोखेबाज, कृतघ्न, विरोधी राजा जय चंद अपने किये की सजा भुगतने के लिये गंगा की लहरों में डूब मरा तो कोई व्यक्ति भी चौहान की राजगद्दी का वारस बनने के लिये और शहाबुद्दीन का सामना करने के लिये बाकी न रहा। फिर लूट-पाट, बरबादी, हत्या और मार-पीट का ऐसा चक्र चला कि वह सैंकड़ों वर्षों तक भी समाप्त न हुआ। इस समय के दौरान लगभग सब के सब धार्मिक चिन्ह, पवित्र स्थान, मंदिर, विद्या और कला उन असभ्य निर्दय और अत्याचारी शत्रुओं के हाथों नष्ट और समाप्त हो चुके थे। कुलीन राजपूतों ने बड़ी दलेरी, जोश, हिम्मत और हौसले से अपने विरोधियों का डट कर सामना किया और उनका मुंह भी मोड़ा। अपने हठ से उन्होंने शत्रुओं के खानदानों की कुछ कमर भी तोड़ी और क्षति भी पहुंचाई, परन्तु अन्त में दुर्भाग्य के सामने उनका कोई बस न चला और उन को सिर झुकाना ही पड़ा। राजस्थान की सड़कें और रास्ते हारने और जीतने वालों के सम्मिलित खून की नदियों से भर गये। परन्तु इस सब कुछ का कोई लाभ न हुआ क्योंकि मुस्लिम विजेताओं को सदा नये साधन और सामान मिल जाते और वे पहले से

अधिक शक्तिशाली हो जाते। एक खानदान के पीछे दूसरा जा-नशीन हुआ, वे वैसी ही बेदर्द आदतों और रुचियों के स्वामि थे। वे लूट-मार और हत्या को पुण्य कार्य और शरह के अनुकूल खुदाई हुक्म समझते थे। इन असफल युद्धों में राजपूतों के लगभग सब कबीले संसार के इतिहास से मिटते ही गये। उनके रह चुके अस्तित्व वीरता और शानदार कारनामों के कुछ निशान ही बाकी रह गये। कौन-सी कौम है, जो ऐसी पस्ती और बरबादी की दशा में ऐसे दिल-कंपाने वाले अत्याचारों, बलात्कार और धृष्टता के सामने अपनी संस्कृति, अपने पूर्वजों के रीति-रिवाज और वीरता के कारनामों को जीता रख सकी हो ?

राजपूत चाहे काफी सरगर्म होता हुआ भी बेपरवाह होता है, परन्तु अवश्यकता होने पर वह अपने अंदर बरदाश्त और सहन-शक्ति भी धारण कर लेता है। फिर भी प्रतिकार की भावनाएं उसकी छाती में तपती और दिल में दहकती रहती हैं।

अलफिनस्टन साहब अपने उर्दू इतिहास के पन्ना ५८७ पर लिखते हैं :—हिन्दुओं का कोई राज्य भी सख्त लड़ाई के बिना जीता नहीं गया। प्रत्युत कितने राज्य पक्की तरह जीते ही न जा सके। यहां तक कि वे तो अब तक भी कायम हैं, यद्यपि मुस्लमानों का शासन नष्ट हो चुका है। शहाबुद्दीन का जिन हिन्दुओं से वास्ता पड़ा, उन में राजपूत जाति के पुरातन समय के सैनिक थे, जो सारी आयु सेना में बिताते थे। सारी जातियों में से वे ऊंची जाति के थे, यद्यपि वे धार्मिक रीतियों और अन्य भिन्नताओं के कारण भिन्न भिन्न समुदायों में विभक्त हो गये थे, फिर भी कई बातों में वे परस्पर घुले-मिले रहते थे। राजपूत जाति ऐसी थी कि प्रत्येक राजपूत मां के पेट से सैनिक ही जन्म लेता था और प्रत्येक का अपना जद्दी सरदार होता था।

यद्यपि प्रत्येक लेखक ने राजपूत जाति की बहुत ही प्रशंसा की है, परन्तु ये राजपूत अब इतने निर्बल हो गये थे कि शनैः शनैः सारे राज्य गंवा बैठे थे और अकबर, जहांगीर, शाहजहान तथा आलमगीर को अपनी बेटियां देने के लिए विवश हो गये थे। इस जाति के पतन का इस से बड़ा प्रमाण खोजना कठिन बात है। चाहे मान लिया जाये कि अकबर ने अपनी बुद्धि और नीति-कौशल से राजपूत राजाओं की बेटियां प्राप्त कीं, परन्तु शाहजहां, जहांगीर और औरंगज़ेब ने कौन सी नीति-कुशलता का प्रयोग किया था? उन्हों ने तो अपनी सीनाजोरी, राजपूतों की विवशता और निर्बलता के कारण उन की लड़कियों के साथ नकाह किये। यद्यपि इस बात में भी कोई सन्देह नहीं कि राजपूतों ने अपनी चप्पा चप्पा धरती भी अपना रक्त बहाने के बिना नहीं छोड़ी, परन्तु इस बात में भी कोई सन्देह नहीं कि अकबर और आलमगीर के काल में हिन्दुओं की सारी शक्ति नष्ट हो चुकी थी। केवल मेवाड़ के राज्य के अतिरिक्त कोई भी स्वतन्त्र राजा हिन्दुस्तान की धरती पर रहा ही नहीं था। राजपूत और क्षत्रियों के सारे वंश वास्तव में नष्ट हो चुके थे। राजपूतों की किसी प्रकार की राज्य-शक्ति अथवा ऐतिहासिक शान बिल्कुल नहीं रही थी। मेवाड़ के राजा ने भी सैंकड़ों साल वीरता से युद्ध लड़ने के उपरान्त अपना सिर नीचा कर लिया और इस्लाम की आधीनता स्वीकार कर ली। अब हिन्दू राष्ट्र का कोई सहारा न रहा।

अन्त में राजपूतों की दशा ऐसी हो गई थी कि जिस के सम्बन्ध में अलफिसटन साहब ने इस तरह लिखा है :

यदि उनकी (राजपूतों की) सिफ्तों में सुस्ती और आलस्य की प्रवृत्ति और जोड़ दें, जो पुरातन काल से उन में चली आ

रही थीं, यद्यपि ये ऐसी प्रवृत्तियां नहीं थीं कि वर्तमान काल में उनका इतिहास में भी वर्णन होता, और साथ ही उन प्रभावों का भी वर्णन जो लम्बा समय बीतने और उन की हिम्मत घट जाने के कारण इकट्ठे हो गये थे तो उन में ऐसी प्रकृति पाई जायेगी जो आजकल के राजपूतों में देखी जाती है और हम यह भी देखेंगे कि वे इस दृष्टि से अपने पूर्वजों के साथ कितने मिलते-जुलते हैं जो महाभारत के समय के वीर-बलवान राजपूत थे।

औरंगज़ेब के समय तक हिन्दुओं और हिन्दुस्तान की ऐसी दुर्दशा हो गई थी कि सारे भारतवर्ष पर ही इस्लामी झण्डा फहराने लगा था। पश्चिम की ओर गुजरात और द्वारिका तक इस्लामी हकूमत कायम हो चुकी थी। दक्षिण के सारे हिन्दू शासन नष्ट हो कर अपना अस्तित्व खो रहे थे। रामेश्वर में मसजिदें बन चुकी थीं, जहां से अल्ला-हू-अकबर की ऊंची ऊंची अवाज़ें सुन पड़ती थीं। पूर्व में उड़ीसा और बंगाल बहुत समय से इस्लाम के बलात्कार और अत्याचार अभ्यास का क्षेत्र बने हुये थे। उत्तर की ओर भी पहाड़ों में हिन्दू राजाओं के राज्य मिट चुके थे और वे सब अधीन हो गए थे। काश्मीर में इस्लामी झण्डा लहरा रहा था। परन्तु फिर भी इन जीतों और शक्ति के प्रसार के होते हुए भी देश में शान्ति नहीं थी। सब ओर नित्य नए विद्रोह होते रहते थे और हिन्दुओं का कचूमर बनता रहता था। सारे सैनिक आक्रमणों में हानि तो हिन्दुओं की ही होती थी। इतिहास का चाहे कोई पन्ना पलट लो और कोई दिन देख लो, सारे हिन्दुस्तान में इस्लामी दौर में कोई ऐसा दिन नहीं मिलेगा जब कोई युद्ध न छिड़ा हो या विद्रोह न हुआ हो। सेनाएं विद्रोहियों के पीछे भागी फिरती थीं और किसी न किसी स्थान पर टक्कर लगी रहती थी। सैंकड़ों सालों की अशांति

और युद्धों में हिन्दुओं की कौन सी वस्तु थी जो सुरक्षित रह सकी थी ? जो कुछ पहले घट चुका था उस को भुला कर भी यदि अकेले औरंगज़ेब की करतूतों को देखा जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि अब वह समय आ गया था कि हिन्दुओं का नाम भी हिन्दुस्तान की धरती से उसी प्रकार मिट जाता जैसे कुरेशियों का अरब से मिटाया गया था, या फिर वही दशा होती जो ईरान, तुरकिस्तान, अफगानिस्तान और बलोचिस्तान के वासियों की अपने पुरखों के धर्म को तिलांजली दे चुकने के बाद हुई थी। यहां भी सब के सब हिन्दू अपने धर्म का त्याग कर देते और इस्लाम की अत्याचारी तलवार के आगे सिर नीचा करके अपनी पुरानी संस्कृति से हाथ धो बैठते, क्योंकि हिन्दुओं में अब इस्लामी जबर और जोश का सामना करने की न तो हिम्मत थी और न ताकत, न हो हौसला था और न सूझ और न हो धर्म-बल और न धन-बल। हिन्दू जाति बिखरी हुई, निर्बल और टुकड़े टुकड़े हुई पड़ी थी और कराहती और तड़पती दम तोड़ रही थी। ऐन सम्भव और समीप था कि इसकी बची-खुची जीवन-ज्योति भी बुझ जाती और इसके प्राण-पंखेरू उड़ जाते। हिन्दू धर्म तो अब पराधीन था, निर्बल था, बे-सहारा था और उस पर अकथनीय मुसीबतों के पहाड़ टूटे हुए थे। उसकी जीवन-नौका तूफान में ऐसी घिरी हुई थी कि तट पर लगने की कोई आशा न थी। उसका कोई खेवट नहीं था और न ही उसको कोई बचा कर किनारे लगाने वाला था। हर ओर लहरों के थपेड़े और भंवरों के चक्कर थे। परन्तु ऐसी निराशा की दशा में अचानक एक श्रेष्ठ स्वरूप प्रकट हुआ जिसने कुचले जा रहे हिन्दू धर्म की ओर से ऊंचे स्वर में पुकार कर कहा :—

बुदबुदे ने यों कहा, जीवन-नदी बहती रहे।
मैं तो चाहे न रहूं पर धरा बसती रहे।

इस हस्ती ने हिन्दू धर्म की नाव को तूफान से निकाला ही नहीं, प्रत्युत उसे किनारे पर जा लगाया। हिन्दू धर्म के मुरझा और सूख चुके उपवन के लिए वह अनुकम्पा की वर्षा, उजड़ चुकी फुलवाड़ी का माली और दुःख-दर्द का सांझीदार था। परन्तु वह था कौन ? हां वे थे गुरु गोविन्द सिंघ जी, जिन के नाम से सारा संसार अच्छी तरह परिचित है। जिस पौधे को गुरु नानक देव जी ने लगाया था, जिस को गुरु अर्जन देव जी और गुरु हरिगोविन्द जी ने अपने रक्त का जल देकर और हड्डियों की खाद डाल कर बड़ा किया था और जिसको गुरु तेग बहादुर जी ने अपने शीश का बलिदान देकर और रक्त-जल देकर पाला-पोसा था, उसकी सेवाएं गुरु गोविन्द सिंह जी अपनी माता, चार पुत्रों, पांच प्यारों और सहस्रों श्रद्धालु सिक्ख दुलारों के रक्त की किनारों तक भरी नहरों के जल से ऐसा पुष्ट किया कि आखिर वह फल लाया। वे फल क्या थे? राष्ट्रीयता, भ्रातृयता, भक्ति और प्रेम तथा ऐसे फल जिस का छिलका अकाल पुरुष की पूजा, जिस का गूदा राष्ट्र-प्रेम और जिस के परदे देश-भक्ति जिसकी गुठली भक्ति-भाव और जिस का मीठा रस राष्ट्रीयता थी। उस पुरुषोतम पीर, उस महाउपकारी, उस अनुपम योद्धा, देश-पुजारी और राष्ट्र निर्माता के जीवन और कारनामों को पाठकों के परिचय के लिए अगली पंक्तियों में वर्णन करने का प्रयास करते हैं। यदि स्वीकार हो तो मेरे लिए सम्मान की बात है।

केवल
दौलत राय

२५ जनवरी, १९०१

गुरु गोबिन्द सिंघ जी

जब गुरु तेग बहादुर जी जोधपुर के राजा के साथ बंगाल की ओर अपनी इच्छा अथवा औरंगज़ेब के भेजे हुए गये थे तो गुरु जी अपनी धर्म-पत्नी और माता नानकी जी को कृपाल चन्द सहित पटने छोड़ गये थे, क्योंकि उस समय माता गुजरी जी गर्भवती थीं और गुरु जी स्वयं राजा के साथ आसाम की ओर चले गये।

जन्म-स्थान तथा जन्म-काल—

सम्वत् १७२३ विक्रमी १७-१८ पौष, शनिवार तथा इतवार के बीच की रात्रि डेढ़ पहर बाकी थी जब पटने में माता गुजरी जी की कोख से एक सपुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम गोविन्द रखा गया। गुरु तेग बहादुर जी स्वयं आदेश दे गये थे कि यदि लड़का पैदा हो तो उसका नाम गोविन्द रखा जाये। उन के जन्म के सम्बन्ध में सिक्खों द्वारा कई प्रकार की करामातें लिखी हुई हैं जैसे कि अन्य धर्मों वाले भी अपने रहबरों और पैगम्बरों के सम्बन्ध में लिखते हैं। परन्तु इन में केवल श्रद्धालुओं और सिक्खों की श्रद्धा-भावना और उत्साह ही छुपा हुआ होता है, सच्चाई कुछ कम ही होती है। इस लिए यहां ऐसी करामातों का वर्णन करने की कोई विशेष आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

गुरु जी का बचपन—

जब गोबिन्द जी कुछ बड़े हुये और अपने साथियों के साथ खेलने कूदने लगे तो उनकी सब से प्यारी खेल यह थी कि वे लड़कों की टोलियां बना कर बाकायदा युद्ध कराते थे। वे धनुष बाण और गुलेलों के निशाने के भी शौकीन थे।

गुरु जी का सपुत्र जान कर लोग उनका बड़ा ही सम्मान करते और लड़के भी खेलों में उनका सम्मान करते। जब लड़के सेना तथा युद्धों की नकल उतारते तो गोबिन्द के हिस्से सेनापति या राजा का ही पार्ट आता। कभी वे न्यायालय की नकल उतारते और लड़कों का न्याय करते। गुलेलों से निशाना लगाने का अभ्यास वे स्वयं भी करते और अपने साथियों से भी करवाते। कभी-कभी जब स्त्रियां खाली घड़े सिरों पर उठा कर कूओं अथवा नदियों पर पानी भरने जातीं तो उन के घड़ों पर भी निशाने लगाते और घड़े तोड़ देते। स्त्रियां उनकी इस खेल से तंग आकर उनकी दादी, माता नानकी जी के पास शिकायत करतीं तो दादी मां उन को डांटती भी थीं।

वे छोटी अवस्था से ही बड़े निर्भय थे। उन के सम्बन्ध में एक बचपन की कहानी प्रसिद्ध है। एक दिन वे लड़कों के साथ खेल रहे थे और उस ओर से पटना के नवाब की सवारी गुज़री। चोबदार ने लड़कों को देख कर कहा कि नवाब साहिब की सवारी आ रही है, उनको सलाम करो। गोबिन्द राय ने लड़कों को सम्बोधन कर के कहा, सलाम नहीं करना वरन् उसका मुंह चिढ़ाना। लड़कों ने वैसे ही किया और भाग गये। बचपन में ही वे बड़े निर्भय और चंचल थे। गुलेलबाज़ी के बड़े शौकीन थे।

जब गुरु तेग बहादुर जी पंजाब लौटे तो वे अपने परिवार

को पटना में ही छोड़ आये। पंजाब में पहुंच कर उन्होंने आनन्दपुर नाम का गांव बसाया और बाद में अपने परिवार को भी पटना से बुला लिया।

गोबिन्द राय की विद्या–

गुरु तेग बहादुर जी के सामने समय की सब परिस्थितियां विद्यमान थीं। गद्दी-नशीनी के साथ भी अब कई प्रकार के झगड़े और ईर्ष्या जुड़ गये थे। इसी कारण उन्होंने अपने बच्चे गोविन्द को धार्मिक विद्या के साथ साथ सब प्रकार की युद्ध विद्या, शस्त्र विद्या और घुड़-सवारी भी सिखाई। फारसी पढ़ाने की ओर विशेष ध्यान दिया। जिस प्रकार की विद्या उन के पिता जी ने उनको दूरदर्शिता के साथ दिलवाई उस का फल गुरु गोविन्द सिंघ के जीवन में बहुत ही गुणकारी सिद्ध हुआ।

पिता गुरुदेव का बलिदान–

जब गोविन्द राय अपनी विद्या प्राप्त कर रहे थे और सैर तथा शिकार में प्रवृत्त थे तो उन के पिता गुरु तेग बहादुर जी एक अद्वितीय बलिदान की तैयारी में थे, जिस की युग बहुत देर से प्रतीक्षा कर रहा था। समय औरंगज़ेब के राज्य का था, और वह इस बात पर उद्यत था कि जैसे भी हो सके सब हिन्दुओं को मुसलमान बना कर एक मज़हब कर दे और इस लिये वह सब प्रकार की कठोरता, ज़ोर और अत्याचार का प्रयोग कर रहा था। उस ने गांव के गांव मुस्लमान बना लिये थे। सच्च तो यह है कि उस समय उच्च-जातीय और सारे साधारण हिन्दू ही मुस्लमानों के अकह और अकथनीय अत्याचारों से खिन्न और विषण्ण थे। हिन्दू धर्म में फूट और दुर्बलता इतनी अधिक थी कि उनकी सुख-शांति समाप्त हो चुकी थी। बड़ीं कौमें उन से घृणा करती

थीं। उन में राष्ट्रीय-एकता और सहयोग का ऐसा बल नहीं था कि वे सुख और शांति का जीवन जी सकें अथवा अपने बचाव के उपाय सोच सकें। इस्लाम में दाखिल हो कर वे विजयी और शासक समूह के सदस्य बन जाते थे। उन्हें हिन्दु-धर्म की सारी बुराईओं और यातनाओं से मुक्ति प्राप्त हो जाती थी। उन्हें हिन्दू धर्म की दुर्बलताओं, ऊंच-नीच के भेद-भाव, घृणा आदि से सदा के लिये छुटकारा मिल जाता था। इस कारण नीची जातियों ने हिन्दू धर्म की तुलना में इस्लाम को रहमत समझा और प्रसन्नता के साथ इस्लाम में प्रवेश करने लगे। इन प्रवृत्तियों के कारण उन को बलात् मुसलमान बनाने की ओर औरंगज़ेब का कोई विशेष ध्यान न था। वे तो अपने आप ही अपनी परतंत्रता से स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये चले आते थे। औरंगजेब तो उच्च जातियों, विशेषतः क्षत्रियों और ब्राह्मणों को, बलात् मुसलमान बनाना चाहता था।

यह ही कारण था कि काशमीर में मुसलमान बनाने के लिये उस ने सारा ज़ोर लगा दिया और सारी शक्ति खर्च कर दी। काशमीर में कई एक ब्राह्मणों ने हिन्दू धर्म त्याग कर इस्लाम में दाखिल होने से इन्कार कर दिया। औरंगज़ेब ने उन पर अत्याचार किये और उन को दिल्ली-दरबार में बुलाया।

इस समय तक सिक्खों की दशा प्रयाप्त मात्रा में अच्छी और मजबूत हो चुकी थी। उन का कुछ दबदबा भी बन गया था। उनका अपना धर्म प्रचार भी कायम था। गुरु हरगोबिन्द साहिब, समय की सरकार से टक्कर ले कर विपक्षी सेनाओं को कई बार हार भी दे चुके थे। इस कारण काशमीरी ब्राह्मण गुरु तेग बहादुर जी के पास आये और अपनी सारी दुःखमय कथा उन्हें सुनाई। गुरु जी उन की यह कहानी सुन कर द्रवित हो

गये और सोचने लगे। यह बड़ी चिन्ता-जनक बात थी। एक तो ब्राह्मणों की यह दशा थी और दूसरी ओर औरंगज़ेब की शक्ति। ब्राह्मणों की यह स्थिति तथा धर्म की रक्षा, क्षत्री रक्त के जोश से मांग करती थी कि अत्याचार-पीड़ितों का हाथ पकड़ा जाये और उनकी सहायता की जाये। औरंगज़ेब की शक्ति अत्याचार और अहंकार चेतावनी देते थे कि यह बात कोई आसान नहीं है। इसी विचार के गहरे सागर में गुरु जी थे कि गोबिन्द राय जी अपने पिता जी के पास आये और उनसे पूछने लगे कि आज आप इतने चुप क्यों हैं? पिता जी ने उत्तर दिया कि अब हिन्दू धर्म और देश की दशा ऐसी है कि किसी पवित्र आत्मा के बलिदान की आवश्यकता है। गोबिन्द राय जी ने सरलता से कहा कि आप से बढ़ कर कौन सी पवित्र आत्मा है, जो क्षत्रि धर्म के लिये अपना शीश बलिदान करे? गुरु तेग बहादुर जी ने उत्तर दिया, यदि ईश्वर की यही इच्छा है तो यह पूरी होगी।

सिक्खों की चढ़ती कला औरंगज़ेब की आंखों में कांटे की तरह चुभ रही थी और काशमीरी ब्राह्मणों को दी गई सहायता ने तो उसे आग ही लगा दी। औरंगज़ेब ने गुरु को दिल्ली बुलवाया। गुरु तेग बहादुर जी ने गोबिन्द राय जी को गद्दी सौंप दी और उन को कहा कि अकाल पुरुष की आज्ञानुसार वे अपना शीश बलिदान करने के लिये दिल्ली जा रहे हैं। हमारे शव को रुलने से बचाना और इसका मृतक-संस्कार करना। पीड़ित हिन्दू धर्म की रक्षा अब तुम्हारे जिम्मे है, अपने प्राणों की आहुति दे कर भी इस कार्य को निबाहना। जो आदेश गुरु जी ने दिया था, अन्त में वही कुछ हो कर रहा। गुरु तेग बहादुर जी को औरंगज़ेब ने दिल्ली में शहीद कर दिया और उनका शीश एक रंघड़

जाति का जीवन नामी सिक्ख आनन्दपुर साहब में गुरु गोबिन्द सिंघ जी के पास ले आया। गुरु जी ने पिता जी का शीश देख कर यह चौपाई पढ़ी :—

साधन हेत इती जिनि करी।
सीस दिया पर सी न उचरी।
धरम हेत साका जिनि कीआ।
सीस दीआ पर सिरर न दीआ॥

उन के शीश का संसकार किया गया। उन के धड़ को एक प्रिय सिक्ख (लखी शाह बैल गाड़ी में छुपा कर) अपने घर ले गया और वहां इस विचार से कि कहीं बाहर संसकार का भेद न खुल जाये, उस ने अपने घर को आग लगा कर गुरु जी के धड़ का संसकार किया।

गुरु गोबिन्द सिंघ जी के उद्देश्य के राह की रुकावटें—

गुरु गोबिन्द सिंघ जी के दिल में जोश और लगन थी कि पिता जी की भयानक मृत्यु से शिक्षा लेकर अपने उद्देश्य को पूरा करने के काम में लगा जाये। परन्तु उनके उद्देश्य की प्राप्ति की राह में कठोर मुश्किलें और रुकावटें थीं।

जब गुरु तेग़ बहादुर जी ने धर्म की रक्षा के लिये और धर्म के वैरियों की जड़ उखाड़ने के लिये देश-भक्ति की अग्नि प्रचण्ड करने के लिये गोबिन्द राय को प्रेरित किया और उभारा तब उनकी अवस्था नौ वर्ष की ही थी। अभी कोई विशेष अनुभव भी नहीं था। पिता जी ने नन्हें से दिल में देश-प्रेम और राष्ट्र-प्रेम की ज्योति अपनी आहुति देकर जला दी थी। गुरु गोबिन्द सिंघ का कार्य बहुत कठिन और दुष्कर था और प्राप्ति के साधन कोई नहीं थे। उन को आज्ञा मानने वाले गरीब सिक्ख थे, और वे भी अल्प संख्या में। न कोई जागीर, न कोई सम्पत्ति,

न धन, न सेना। जो कुछ भी चढ़ावा कोई सच्चा सिक्ख भेंट करता था, उस से निर्वाह मात्र होता था। उसकी तुलना में इस्लाम की बहुत बड़ी शक्तिशाली हकूमत थी, जो एक ओर तो समुद्र की लहरों को जा छूती थी और दूसरी ओर हिमालय के शृंगों का स्पर्श करती थी। बरमा की सीमा तक इस्लाम की तूती बोल रही थी। ऐसे समय यह कार्य गुरु गोविन्द सिंघ के जिम्मे लगा।

काल के चक्र ने इस्लाम की ऐसी अत्याचारी और बलवान ताकत का मुकाबला एक एकान्त-वासी और एक कोने में टिके हुए फकीर के साथ करवाया, जिस के पास युद्ध के कोई साधन और अस्त्र-शस्त्र नहीं थे, परन्तु जिस को उस ने धुन का पक्का और फौलाद की धार जैसा पाया। अपने पिता के अन्तिम उद्देश्य और प्रेम-सन्देश को पूरा करना गुरु गोविन्द सिंघ जैसे शूरवीर बलवान पुत्र के लिये अत्यावश्यक था। कोई रास्ता नहीं, कोई मित्र नहीं, कोई सैनिक साधन नहीं। साधारण दृष्टि से तो पहाड़ और तिनके की टक्कर वाली बात थी। उस समय हिन्दुस्तान के शासन की बागडोर औरंगज़ेब जैसे निर्दय, खूनी, लड़ाके और अत्याचारी के हाथों में थी। उस का सामना करना हैरान करने वाली बात थी, जो कुदरत ने नौ सालों के उस बालक द्वारा करवा दिया, जिस के न तो अभी पर ही निकले थे और न ही उसमें उड़ान भरने की सामर्थ्य थी। फिर भी उन्होंने प्रण किया और यह उद्देश्य सामने रखा कि वर्तमान इस्लामी राज्य को हिन्दुस्तान से निकाल देना है और हिन्दुओं के गले से इस्लामी दासता का जुआ उतार कर उन्हें सुरक्षित करना है। वे इस्लाम के वैरी नहीं थे और न ही उन्हें ऐसी शत्रुता से कोई विशेष लाभ हो सकता था, परन्तु वे उन

मुस्लमानों के विरोधी अवश्य थे जो मज़हब की आड़ में अत्याचार कर रहे थे, जो स्वयं ही इस्लाम के नाम को कलंकित कर रहे थे और नाम मात्र के ही मुस्लमान थे, अपितु अत्याचारी, लुटेरे, असभ्य और कठोर थे। वे इस्लाम के प्रचार के बहाने सब प्रकार के कत्ल करते और प्रत्येक धर्म का अपमान करते थे। किसी आदमी को भी मारना और लूटना वे पवित्र कार्य समझते थे।

ऐसे दुष्टों को भारत से बाहर निकालने का उद्देश्य गुरु गोविन्द सिंघ जी ने बनाया। बनाने के लिये तो यह उद्देश्य गुरु जी ने बनाया, परन्तु प्रश्न तो यह था कि यह उद्देश्य जो गुरु जी ने बनाया था, वह पूरा किस प्रकार हो। इसे पूरा करना टेढ़ी खीर था। सोचने से कोई रास्ता नहीं निकलता था। रोग की पहचान तो गुरु जी ने कर ली थी, औषधि का भी निर्णय कर लिया परन्तु औषधि का प्राप्त होना कठिन था। अन्त में उन्हों ने औषधि खोज ही ली, जो रोग के लिए उपयोगी सिद्ध हुई। वह रोग क्या था और औषधि क्या थी? जब तक इसके तत्त्व की भरपूर व्याख्या न की जाये तब तक उस 'वैद्य गोविन्दा' की बुद्धिमता, चिकित्सा-ढंग, चिकित्सा की सफलता, औषधि के प्रभाव, रोग की दशा, स्वास्थ्य को प्राप्ति के गुण और सीमाएं और सारे हाव-भाव का पता चलना कठिन है।

गुरु गोविन्द सिंघ के काम करने के रास्ते में उलझनें और कठिनाईयां थीं। वे उस समय बचपन को पीछे छोड़ कर चढ़ती जवानी में पदार्पण कर रहे थे। गद्दी पर विराजमान होने के कारण उन के अपने ही कई सम्बन्धी उन के ईर्ष्यालु और विरोधी थे। सिक्खों को उस समय की सरकार संदेह की दृष्टि से देखती थी। परन्तु गुरु गोविन्द सिंघ जी को

ऐसा दिल प्राप्त हुआ था जो सारे दुःखों और कठिनाईयों को तुच्छ समझता था और किसी रुकावट अथवा कठिनाई से न घबराने वाला और न ही डरने वाला था। किसी भी दुःख में वह उदास होने वाला नहीं था। ऐसा दिल सहस्रों वर्षों से उत्पन्न नहीं हुआ था। उस दिल ने हिन्दुओं को उभारा, पर काम करने के लिये सामग्री उपस्थित न थी। दिल ने प्रेरणा दी, परन्तु कठिनाईयों के बादल सब ओर छाये हुए थे।

गुरु गोविन्द सिंघ जी अपने पिता की शहीदी और अपने राष्ट्र पर ढाये गये अत्याचारों का बदला अत्याचारियों से चुकाना चाहते थे। उन की प्रबल इच्छा थी कि अत्याचार सहती हिन्दू-जाति को औरंगज़ेब के अत्याचारों से बचाया जाये। उनकी तीव्र इच्छा थी कि देश और धर्म का कायाकल्प किया जाये और वक्त के अत्याचारी और दुष्ट शासकों से सुरक्षित कर के कौम को स्वतन्त्र बनाया जाए। गुरु जी ने मातृ-भूमि की दशा को प्रत्येक पक्ष से निकम्मा पाया। देशवासी भी पतनोन्मुख, हिम्मत हारे और बेदिल थे। वे आपस में लड़ते-झगड़ते थे और एक दूसरे को हानि पहुंचाने में प्रवृत, एक दूसरे का निरादर करने में लगे हुए और एकता, प्रेम, प्यार से कोसों दूर थे। वे बल-हीन, लज्जा-हीन, बुद्धि-हीन, स्वाभिमान-हीन, साहस-हीन, प्रेम-हीन और एकता-हीन थे। कोई बात भी ऐसी नहीं दीखती थी, जिस के कारण देश-वासियों को एकत्रित कर के किसी उद्देश्य के लिये एक सूत्र में पिरोया जा सके। सब ओर पराजय और घटती कला के चिन्ह दिखाई देते थे। सब ओर हिन्दू जाति स्वार्थ की गहरी नींद में सोई पड़ी थी। उनकी कौन सुनता था और उनके साथ कौन खड़ा होने को तैयार था! क्षत्रिय, क्षत्रिय न रहे, ब्राह्मण दूसरों को मिटा कर स्वयं मिटते जा रहे थे।

न किसी का मान था न सम्मान। न किसी का धन अपना था, न जायदाद। सब ओर अशांति थी और खतरे की तलवार सदैव सिर पर लटकती रहती थी।

एक ओर देश और कौम की यह दशा थी और दूसरी ओर गुरु गोबिन्द सिंघ जी के युवा हृदय में देश प्रेम का तूफान उमड़ रहा था। धार्मिक जोश की बाढ़ रोकी नहीं जा सकती थी। देशवासियों की दुर्दशा का अनुभव करके वीर-रस के जोश का प्रचंड होना स्वाभाविक ही था। राष्ट्रीय सम्मान का प्रश्न और सब धार्मिकों को विपत्तियों से छुटकारा दिलाने का विचार और देश को म्लेच्छों से स्वतन्त्र करने की तरंगें उन के मन में उठ रही थीं। परन्तु उसके साथ ही टक्कर लेने के लिये साधन भी कोई नहीं थे। न कोई पूंजी, न कोई साधन-सामान, न किसी की सहायता, न कोई जीवन का अनुभव, सब ओर से सहायता और मदद के बिना निराशा ही निराशा थी।

पाठको! ज़रा सोचो और विचार करो कि युवा हृदय में कौमी जोश उबल उबल कर कैसे ठंडा पड़ जाता होगा, जब कौम ही निराशा के गड्ढे में पड़ी हुई उन को हिम्मत करने से रोकती होगी। उस के मन में लहरें उठ उठ कर अपने आप कैसे बिखर जाती होंगी, जब अपने ही देशवासियों के चेहरे पीले और मुरझाये हुए दिखाई देते होंगे और उनके अन्दर से भी जीवन-लौ बुझती दीख पड़ती होगी।

परन्तु नहीं, गोविन्द को ऐसा दिल नहीं मिला था जो संकटों में सहम जाये, निराशाओं में घबराये, दुःखों से मुंह फेरे और कठिनाईयों से टक्कर लेने में डरे, निराशा में हौसला छोड़ दे और उद्यम और यत्न करने से जी चुराये अथवा शत्रुओं की शक्ति से भयभीत हो। गोविन्द ने गंभीरता से स्थिति के सम्बन्ध में

सोचा और सब ओर से इस का अध्ययन किया। हिन्दू हर पक्ष से गिरे हुए दिखाई दिये। उनके सामने कुछ ऐसी समस्याएं उभर कर आयीं जिन के समाधान से हिन्दुओं का कायां-कल्प हो सकता था।

वह प्रश्न कौन से थे

जिन पर हिन्दुओं का सुधार निर्भर करता था ?

वे प्रश्न जो आवश्यक थे, इस प्रकार थे :–

(क) एक परमात्मा की भक्ति को छोड़ कर जो अनगिनत देवताओं, अवतारों, मूर्तियों, पशुओं, मनुष्यों, वनस्पतियों, धातों, तत्त्वों और द्रव्यों की पूजा प्रचलित हो चुकी थी उसने राष्ट्रीय सम्मान और राष्ट्रीय तत्त्व को नष्ट कर दिया था। हिन्दू झाड़ू के तिनकों की भांति बिखर चुके थे। वे शारीरिक और आत्मिक पराधीनता का शिकार हो कर अपना अस्तित्व स्वयं ही मिटा रहे थे। प्रश्न यह था कि किस प्रकार उन को परमात्मा को भुलाने वाली पूजा से हटा कर, अथवा वहु प्रकार की पूजा और वेदों के आकर्षण से रोक कर केवल एक निरंकार के रंग में रंगा जाये।

(ख) हिन्दू शारीरिक, आत्मिक, नैतिक, बौद्धिक और धार्मिक प्रकार से पतनोन्मुख होते जा रहे थे और रसातल की ओर फिसलते जा रहे थे। उनकी इस गिरावट की बढ़ती गति को रोक कर किस प्रकार उन को बढ़ती कला की दशा में प्रवृत्त किया जाये ?

(ग) वे कौन से कारण थे जो हिन्दुओं में फूट, परस्पर घृणा, विरोध, ईर्ष्या और निर्बलता उत्पन्न कर रहे थे और जिन को दूर कर के उन में सांझेदारी और भ्रातृयता उत्पन्न की जाये,

जिस से उन में एकता और मिलाप का सम्बन्ध उभरे और वे एक राष्ट्र बन जायें, जिस का मंतव्य और आदर्श एक हो ?

(घ) इस्लाम की शक्ति को कैसे निर्बल किया जाय और उसके शासन से किस प्रकार हिन्दुओं को स्वतन्त्र कराया जाये ?

भाव यह कि हिन्दुओं को किस प्रकार एक परमात्मा के उपासक बना कर एक सर्व-शक्तिमान परमात्मा के साथ जोड़ा जाये और उन के गले से इस्लाम की गुलामी का पटा किस प्रकार उतारा जाये ? निःसंदेह इन प्रश्नों पर गुरु साहिब से पूर्व भी विचार होता रहा था, परन्तु फल लाभदायक सिद्ध नहीं हुआ था।

पहले जो यत्न अब तक हुए थे, उनसे परस्पर फूट और बेइतफाकी का घेरा घटने के स्थान पर बढ़ता ही गया। जो भी आया उस ने नया रास्ता ही बताया, नई पगडंडी चलाई और पहलों से अलग कर दिया। परिणाम यह हुआ कि सम्प्रदाय और विभाजन बढ़ते ही गये। फिर वे एक दूसरे का तमाशा देखने में लग गये। उन को कभी समझ न आई कि मिल कर काम करें। धार्मिक भिन्नताएं रखते हुए भी, राजनीतिक मत-भेद होते हुए भी एक ही अत्याचारी शत्रु का मिल कर सामना करने का उनमें कभी बल अथवा साहस न हुआ। बौद्धिक दासता के कारण हिन्दू. वैदिक धर्म की पवित्र विचारधारा से बहुत दूर भटक गये थे और वह भी अलग अलग दिशाओं में। इसी कारण मुसलमानों ने उन्हें अकेले अकेले कर के लताड़ा और बरबाद किया। केवल इतना ही अन्तर पड़ा कि जो तमाशा देखने वाले थे उनकी हार या मार खाने की बारी पीछे आई। वे किसी एक धार्मिक विचारधारा के भागीदार न बने। सब अपने धर्मों को वेदों से ही निकला बताते थे, फिर भी परस्पर शत्रुता रखते थे और घृणा करते थे। इसी ईर्ष्या और फूट ने, जो मस्तिष्क की

दासता का परिणाम था, उन को आगे चल कर भयानक राजनीतिक दासता मे फंसा दिया। इस राजनीतिक दासता के कारण राष्ट्र की ऐसी दुर्दशा हो गई कि हिन्दू धर्म और जाति का नाम ही सदा के लिये संसार से मिटने वाला था। धर्म में कोई बल अथवा साहस बाकी नहीं रहा था जिस से भिन्न भिन्न सम्प्रदाओं को एकत्र और संगठित कर के टक्कर ली जा सके। न कोई पूंजी थी और न बाहुबल। हिन्दू धार्मिक, सामाजिक और नैतिक तौर से भी गुलाम और असहाय हो चुके थे। अंतिम प्रश्न का हल करने के लिये हिन्दुओं के पास कोई साधन नहीं था और इन साधनों की खोज में ही गुरु साहब परेशान थे। सोचते थे कि वे क्या काम करें।

यदि गुरु जी ने धर्म की ओर देखा तो कठिनाईयां ही कठिनाईयां साम्ने दिखाई दीं। यदि समाज-सुधार की ओर दृष्टि फेरी तो भी खतरा दीख पड़ा। राजनीतिक क्षेत्र में भी पग-पग पर बज्र शिला-खंडें थीं। फिर भी उन्होंने सब कठिनाईयों से टक्कर लेने के लिये अपने आप को तैयार किया। हिन्दू धर्म की धमनियों में लज्जा, स्वाभिमान और हिम्मत का रक्त जो ठंडा पड़ चुका था उस में नये सिरे से उष्णता उत्पन्न करने का उद्देश्य निर्धारित किया और नयी धड़कन उत्पन्न की। गुरु जी अगम पुरुष बन कर अकेले ही मारू विरोधी और घातक शक्तियों के सामने छाती तान कर डट गये।

किस बात ने गुरु गोबिन्द सिंघ जी को उभारा ?

पाठक यदि उस समय की ओर दृष्टि दौड़ाएं तो वे यह अनुभव करेंगे कि एक साधारण मनुष्य या यों कहिये कि एकांत में भक्ति करने वाला एक दरवेश था, जिस के पास न शक्ति, न धन, न सैनिक सामान और न ही एक बीघा धरती थी, परन्तु

उसके पास एक शक्ति थी जो इस बे-सरोसामनी की दशा में उस को सफलता की ओर आकृष्ट करती थी, उसके साहस को बढ़ाती चन्द्र कला की भांति बढ़ती थी और उस के साहस में उष्णता और तूफान उत्पन्न करती थी। वह कौन सी शक्ति थी ? वह थी उन के हृदय के भीतर देश-प्रेम की चिंगारी और क्षत्रि धर्म के प्रति कर्त्तव्य को पहचान। रामचन्द्र जी के कार्यों और कथाओं को आज तक हम बड़े मान-सत्कार से स्वर्ण करते हैं, परन्तु उन्होंने जो कुछ किया उस काल में किया जब भारत में विशाल हिन्दू राज्य था। धर्म और देश को किसी प्रकार की आशंका अथवा पतन का भय नहीं था। रामचन्द्र जी स्वयं राजकुमार और राज-सिंहासन के स्वामी थे। उन के पास सब प्रकार की सामग्री और साधन उपलब्ध थे। आस पास के राजा सर्वदा सहायतार्थ उनके साथ थे। यह सब कुछ होते हुए भी उन्होंने लंका पर चढ़ाई कोई देश-भक्ति अथवा देश की भलाई के लिये नहीं की थी और न ही इस में कोई देश-प्रेम का ही अंश था। इस में संदेह नहीं कि उन्होंने क्षत्रि धर्म का ही पालन किया और अत्याचारी रावण को, जो उनकी पत्नी को बलपूर्वक उठा कर ले गया था, युद्ध-क्षेत्र में पराजित करके यमलोक पहुंचाया। वह भी एक बड़ा काम था।

परन्तु गुरु गोविन्द सिंघ जी अपनी कौम और देश की लाखों स्त्रियों की मान-हानि के अत्याचार को मिटाने के लिये और वास्तव में दूसरों की भलाई के लिये रणभूमि में उतरे और बड़े ही कठिन काम में ऐसे मुश्किल काल को हाथ में लिया।

श्री कृष्ण जी के सारे कार्य भी, वास्तव में, व्यक्तिगत बदले की भावना पर ही आधारित थे। कृष्ण जी की सुघड़ता को एक ओर छोड़ कर यदि केवल उनके किये कार्यों पर विचार

किया जाये तो यह तथ्य स्पष्ट हो कर सामने आ जाता है कि उन के सारे कार्यों में व्यक्तिगत बदले की भावना प्रबल थी। कंस का उन्होंने इस लिये वध किया कि वह उन की वंशावली ही नष्ट और समाप्त करनी चाहता था। वह कृष्ण जी को भी मार देना चाहता था। कृष्ण जी ने अपनी रक्षा और अपने बचाव की खातिर तलवार उठाई और पांडवों के साथ षडयंत्र रच कर उनकी सहायता से जरासंध का वध किया। कंस के वध के प्रतिशोध के लिये जरासंध ने कृष्ण के यादव वंश पर १५ बार सैनिक आक्रमण किये और कृष्ण को देश से निकल जाने के लिये विवश किया। इसी निर्वासन के पीछे कृष्ण जी ने गुजरात प्रान्त में द्वारिका नगरी बसाई और यादव वंश की राजधानी स्थापित की। ये सारे कारनामें उनके धर्म-पालन और कर्त्तव्य-पालन की मुंह बोलती तस्वीर हैं। परन्तु उनके नीचे व्यक्तिगत प्रतिकार की भावना ही छुपी हुई थी। इस में कोई संदेह नहीं कि जरासंध और कंस बड़े ही अत्याचारी थे और अत्याचारियों को ठीक करने के लिये अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग क्षत्रि-धर्म की पालना ही था परन्तु उस में देश-प्रेम का अंश तो था ही नहीं। यदि कृष्ण जी के कारनामों को देश-प्रेम पर आधारित मान भी लिया जाये तो उन के साधनों की ओर दृष्टि दौड़ाओ वे कितने अधिक थे।

कृष्ण स्वयं राजा थे और उनका जन्म भी राजवंश में हुआ था। गुजरात में उन की पक्की स्थित राजधानी थी। कितने ही क्षत्रि राजे उन के सहायक थे। पांडवों का बड़ा राज्य उनका विशेष हामी और सहायक था। ऐसी परिस्थितियों में कृष्ण जी ने जो कुछ भी किया वह एक साधारण राजे के कारनामों से किसी प्रकार भी अधिक नहीं था क्योंकि देश अपना था, देश पर

राज्य क्षत्रियों का ही था, और हर ओर खुशहाली थी। परिस्थितियां अनुकूल थीं और लोग सम्पन्न थे।

परन्तु गुरु गोविन्द सिंघ का कार्य उस से कहीं अधिक असाधारण, अधिक जोखिम वाला और ज्यादा कठिन था। देश-प्रेम की सीमायें लांघ कर गुरु गोविन्द सिंघ जी ने कृष्ण जी को कहीं पीछे छोड़ दिया। यही बात शंकराचार्य जी की थी। उनके सहायक तथा प्रशंसक भी क्षत्रि राजे थे। शंकराचार्य ने अपनी कुशाग्र बुद्धि के बल से बौद्ध विद्वानों और मुखियों को पराजित किया, परन्तु यदि क्षत्रि राजे उनके साथी न होते, उनकी विचारधारा को न अपनाते, उनके प्रचार में उनका साथ न देते और उनकी सहायता न करते तो वह लोगों के विचारों में परिवर्तन लाने में सफल भी न होते। शंकराचार्य तो विद्या-बल, उक्ति-युक्ति से ही लोगों को बुद्ध-मत से तोड़ कर फिर हिन्दू-धर्म से जोड़ते थे और हिन्दु राजे उनकी पीठ ठोंकते थे। परन्तु गुरु गोविन्द सिंघ मित्र-रहित, असहाय और अकेले थे और उस समय का कट्टर मुस्लिम मुगल शहनशाह औरंगज़ेब उन का शत्रु था।

अरब के पैगम्बर मुहम्मद साहब की टक्कर तो कुरैश कबीले की थोड़ी सी टोलियों के साथ हो थी।

परन्तु गुरु गोविन्द सिंघ की दशा इन सब से निराली, नाज़ुक और भिन्न प्रकार की थी और उन्हें बहुत अधिक शक्ति जुटाने की आवश्यकता थी।

एक ओर तो उन के हिन्दू भाई ही उन के विरुद्ध थे और दूसरी ओर वह केवल एक कोने बैठा फकीर। न देश, न जागीर और न ही था उन के पास कोई शासन। यद्यपि पिता जी के प्रतिशोध का प्रश्न भी उन के सम्मुख हो सकता है, परन्तु गुरु तेग बहादुर जी की शहीदी से पहले इस मुस्लमान सम्राट ने लाखों हिन्दू

कत्ल किये और मुसलमान बनाये थे। उस समय किसी के दिल में यह इच्छा क्यों नहीं पैदा हुई? कितनी ही शताब्दियां अत्याचार होते रहे इन को किसी ने क्यों नहीं रोका? और फिर यह बात गुरु गोविन्द सिंघ जी के मन में क्यों उत्पन्न हुई कि भारतवर्ष से इस्लामी शासन को जड़ से उखाड़ फेंकने की आवश्यता है?

बड़े आश्चार्य की बात है कि जिन हिन्दुओं की भलाई के लिये वे सारे कष्ट उठा रहे थे वे ही न केवल उनकी सहायता करने से जी चुराते थे और साथ नहीं देते थे, प्रत्युत उलटा उन को सताते थे और आक्रमण करके उन्हें दुःख देने में भागीदार बनते थे। हिन्दू तो स्वार्थ और आपा-धापी में फंसे हुए थे। उन के कौमी झंडे के नीचे कभी इकट्ठे होने की आशा नहीं थी। फिर भी गुरु गोविन्द सिंघ के हृदय में देश-भक्ति की चिंगारी छुपी हुई थी, जब कि उन से पूर्व आने वाले सब हिन्दू महापुरुष इससे खाली थे।

गुरु गोविन्द सिंघ जी के अन्दर वह चिंगारी तो उपस्थित थी और सुलगती थी, परन्तु उसके प्रचंड रूप धारण करने के लिये साधन और सामग्री अभी मौजूद नहीं थी। उन की आयु अभी पंद्रह वर्ष की थी और इतनी बड़ी आवश्यक समस्या और पहाड़ जैसा काम उनके सामने था। किसी भय और अशंका के तूफान से, किसी उदासी, बेहिम्मती, कायरता के झोंकों से, किसी स्वार्थ सुख-शांति-आराम की इच्छा से अथवा भूल या बेपरवाही के कारण वह चिंगारी न बुझी और न ही बुझाई जा सकती थी। ऐसे महान् कार्य के लिये समय की पहचान, मौके की सम्भाल अत्यावश्यक थी। जिस के लिये इस देश-भक्ति की अग्नि को सुलगाने और प्रचंड करने के लिये वे एक पर्वतीय स्थान को चले गये और उस एकांत में सब पहलुओं पर सोच-विचार की। इस

एकांत स्थान पर चले जाने का कारण यह भी था कि उन का अपना ही सम्बन्धी राम राय गद्दी पर दावा जमा कर उन का कड़ा विरोध कर रहा था। इस लिये गुरु गोविन्द सिंघ जी का अल्पकालिक एकांत-स्थान-गमन राम राय को ठंडा करने के लिये उचित ही था। गुरु गोविन्द सिंघ जी उस इलाके में लगभग पांच वर्ष बड़े सुख-शांति से टिके रहे, यद्यपि पहाड़ी राजाओं ने वहां भी उन्हें तंग करने में कसर न छोड़ी। इस का वर्णन आगे किया जायेगा।

इस पहाड़ी विश्राम के समय गुरु जी ने अपनी जानकारी बढ़ाने में बहुत उन्नति की। इस समय उन्होंने फारसी भाषा सीखी, अरबी और संस्कृत में भी प्रर्याप्त मात्रा में साहित्य का अध्ययन किया। अपने देश के वीर राजाओं और योद्धाओं की कथा-कहानियां पढ़ीं और सुनीं और अन्य धर्मों के प्रवर्तकों और मार्गदर्शकों के जीवन-दर्शन और प्राप्तियों का भी अध्ययन किया। अपने देश के पतन और उन्नति पर दीर्घ विचार किया। इसी काल में देश के वीर और बलवान योद्धाओं की भावपूर्ण और जोशीली वीर-गाथायें 'भाटों' से सुनीं और अपने सिक्खों को, जो उस समय उन के पास एकत्र हुए थे, सुनवाईं, जिस से उन के अन्दर भी वीरता का प्रवेश हो।

पर्वतीय प्रान्त में ठहरने के समय आप ने काफी समय बाघ, चीते, रीछ, सूअर, आदि का शिकार करने में व्यतीत किया। साथ ही साथ वे भविष्य के लिये योजना बनाते और उस के सम्बन्ध में कार्य-क्रम निश्चित करते रहे और उसे दृढ़ करते रहे। इस काल में राम राय के गद्दी सम्बन्धी अधिकार झूठे साबित होकर समाप्त हो गये। बहुत से सिक्ख गुरु जी के पास इकट्ठे होने लगे। प्रति दिन वे औरंगज़ेब के अत्याचारों और ज्यादतियों

की वारदातें सुनते रहे, जिस से उन के देश-भक्ति से भरपूर हृदय में आवेग मचलते रहे और जोश उबलता रहा।

मुस्लमानों की जबरदस्त ताकत उन से छुपी नहीं थी। हिन्दुओं की बेबसी, निर्बलता और पतनशील दशा उन के सामने सूर्य के प्रकाश की भांति स्पष्ट थी। गुरु गोविन्द सिंघ जी को हिन्दुओं में क्षत्रियता का नये सिरे से जोश भरने के लिये और उनके अन्दर नयी रूह फूंकने के लिये सब पक्षों पर विचार करने का अवसर प्राप्त हुआ और सब तरह से वे इस अंतिम निर्णय पर पहुंचे कि पहले उन सब बाधाओं को दूर किया जाये, जो हिन्दुओं में फूट, उनके पतन, निर्बलता, कायरता, उत्साह-हीनता का कारण थी। उनका यह विचार बना कि सब से पहले हिन्दुओं के धार्मिक सुधार की आवश्यकता है। इस सुधार के साथ ही समाज-सुधार होना भी आवश्यक है। इन को वर्ण-भेद और छूत-छात की कारागार से मुक्त कराने की अत्यधिक आवश्यकता थी। शूद्रों में ऊपर उठने का साहस उत्पन्न करने की आवश्यकता थी और अंत में राजनीतिक स्थिति को सुधारने की आवश्यकता थी। सब ओर विरोध, कठिनाईयां और बाधाएं ही थीं जिन की भली-भांति व्याख्या करनी बहुत ही ज़रूरी है। सब से पहले उन्होंने धार्मिक सुधार ही को हाथों में लिया।

प्रचलित हिन्दू-धर्म में कैसे सुधार किया ?—

हिन्दू जाति में आदि काल से ही "धर्म" अत्यावश्यक, उच्चतम्, श्रेष्ठ, पवित्र कर्त्तव्य और सब वस्तुओं से प्रिय समझा जाता रहा है। हिन्दू-काल में कोई समय भी ऐसा नहीं जब हिन्दुओं ने धर्म की ओर से और इस के प्रति भावना से पूर्णत: मुख मोड़ा हो या इसे पीठ दी हो अथवा त्यागा हो। बुद्ध मत की बहुत सी सख्तियां सह कर और सात शताब्दियें मुस्लमानों-

अत्याचार के मुकाबले में भी वे अपने धर्म को कायम रख सके थे। उन का देश, जायदाद, माल-धन, खानदान-परिवार सब कुछ उन को आंखों के सामने लूटे गये और छीने गये। उनको पुस्तकें और पुस्तकालय जलाये गये। उनके जीवन नष्ट-भ्रष्ट हुए। उन्होंने सब कुछ बरबाद होता देखा और सहारा। परन्तु धर्म की भावना को किसी न किसी ढंग से अंत तक कायम रखा। धर्म के कण को अपने हृदय के ऐसे गुप्त कोने में छुपा कर रखा कि किसी अत्याचारी का हाथ भी वहां तक न पहुंच सका। सब प्रकार के दुःख और कष्ट सहन किये, भिन्न भिन्न आपत्तियां झेलीं, परन्तु धर्म की ज्योति को बुझने से बचा कर, जलती रखा। क्योंकि धर्म उनको हर वस्तु से अधिक प्रिय था। जायदाद और राज्य से अधिक प्यारा, दीन-दौलत से अधिक अजीज, इस लिये उन्होंने इस की अपने रक्त की नदियां बहा कर और जीवन के ढेर दावे लगा कर भी रक्षा की।

आखिर हिन्दू फिर भी मर्द निकले ! चाहे वे सात सौ वर्ष मार खाते, और अत्याचार सहारते रहे, परन्तु धर्म को काफी सम्भाल कर रखा। वे परस्पर कट मरे, भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में बंट गये और विरोधी हो गये। इस धार्मिक विरोध के कारण ही वे छोटे-छोटे फिरकों और अपने टोलों में बंट गये जिस से उन का राष्ट्रीय बल बिल्कुल नष्ट हो गया और एकता की माला भी ऐसी बिखरी कि उन का अस्तित्व ही टिमटिमाते दिये की लौ का रूप धारण कर गया।

औरंगज़ेब की बलवान अत्याचारी तलवार के तूफान से सम्भव था कि ऐसा टिमटिमाता दीप सदा के लिये बुझ जाता, परन्तु गुरु गोबिन्द सिंघ ने अपना हाथ उस पर रख कर उस को बुझ जाने से सदा के लिये बचा लिया।

उस समय हिन्दुओं की स्थिति यह थी कि एक परिवार में ही दर्जनों भिन्न-भिन्न मत थे। एक गणेश का पुजारी, दूसरा भाई सूर्य का, तीसरा शिव जी का, चौथा विष्णु का, पांचवां रामवंशी, छटा भैरव का उपासक, सातवां हनूमान का भक्त, आठवां कृष्ण जी के यौवन पर मस्त, नौवां कृष्ण जी की बाल-लीला पर कुर्बान, दसवां राम जी का पुजारी, ग्यारहवां लक्ष्मण जति पर मोहित, बाहरवां वेदांती और तेहरवां कर्म-कांडी संन्यासी था। और इसी कारण परस्पर क्रोध, द्वेष, वैर और विरोध था। इन्हीं कारणों से देश की भाषा एक नहीं थी, धर्म-पुस्तक एक नहीं थी। कोई भाषा ऐसी नहीं थी जो सारे हिन्दुओं को एक घेरे में ले आये। धर्म का कोई ऐसा कर्म नहीं था जिस में सारे हिन्दू सम्मिलित हो सकें। कोई मंतव्य ऐसा नहीं था जिस से सब के सब एकता की शृंखला में पिरोये जा कर इकट्ठे विचर सकें। कोई मनोरथ अथवा वस्तु ऐसी नहीं थी जिस में हिन्दू जाति का सम्मिलित बल इकट्ठा हो सके। एकता, इकट्ठ, सहयोग, देश-भक्ति, राष्ट्रीय सहानुभूति अथवा प्रेम का नाम-निशान तक न था। इन कारणों से हिन्दुओं का सामाजिक सम्बन्ध कटा हुआ था। परस्पर विरोधी एक दूसरे के विरुद्ध डटे हुए और एकता के प्रसाद से वंचित होने के कारण उनकी धार्मिक मर्यादा भी ढीली पड़ चुकी थी।

दक्षिण-वासियों का उत्तर-वासियों से कोई लगाव नहीं था। ऐसे ही उत्तर-वासियों का दक्षिण-वासियों से कोई सम्बन्ध नहीं था। फिर सारे हिन्दू पूर्व वालों से बेनिआज़ और सब का फर्क और फासला बहुत बड़ा था। किसी का एक दूसरे पर भरोसा नहीं था, विश्वास नहीं था। देश धोखेबाजों और नमकहरामियों से भरा हुआ था।

उन लोगों का न धर्म एक, न कानून एक, न भाषा एक

न मंतव्य एक, न ताल एक न नाच एक, न आदि एक न अंत एक, न वर्तमान एक न भविष्य एक, न जीवन एक न युक्ति एक, न प्रार्थना एक न प्रभु एक, न भाव एक न भावना एक, न आशा एक न प्राप्ति एक, न सुख एक न दुःख एक, न खुराक एक न पोशाक एक, न चाल सांझी न ढाल सांझी, न मनोरथ सांझा न धड़कन सांझी, न सोच सांझा न विचार सांझा, न सवर्ग सांझा न नर्क सांझा, न पूजा सांझी न देवता सांझा, न नींद सांझी न स्वप्न सांझा, न इष्ट एक न लक्ष्य एक, न रूप एक न रंग एक, न दिल एक न दिमाग एक। नहीं नहीं उन की मुक्ति भी अलग अलग थी। यही नहीं था कि उनके सामाजिक जीवन में कई प्रकार की भिन्नता आ चुकी थी, अपितु कई हालातों में यह भिन्नता सीमा को लांघ कर विरोध और शत्रुता का रूप धारण कर चुकी थी। इस कारण उनका न कोई परस्पर लगाव था न प्रेम, न आकर्षण न पीड़ा, न एकता और न ही एक दूसरे की सहायता की भावना।

राजे थे तो वे परस्पर विरोधी। प्रजा भी एक दूसरे की टांग खींचने वाली। धार्मिक सम्प्रदाय भी एक दूसरे के घातक शत्रु। तो फिर उनकी रक्षा और उन्नति कैसे होती? और उनकी बरबादी और नाश कैसे न होता? उन का पतन और दुर्दशा कैसे न होती? उनकी शक्ति-ऐश्वर्य और तेज-आंतक क्यों न मिटते? फिर उन्हें असभ्य, अर्ध असभ्य, कायर और कठोर-हृदय क्यों न कहा जाये?

धार्मिक सम्प्रदायों की दशा यहां तक पहुंच चुकी थी कि उनकी संख्या हज़ारों तक पहुंच चुकी थी। इस सब के उत्तर-दायी और कर्त्ता-धरता ब्राह्मण ही थे। इस के अतिरिक्त उन के श्रद्धालुओं और कई प्रकार के भिक्षकों के समूह इस सीमा तक

बढ़ते चले जा रहे थे कि प्रत्येक नगर और प्रत्येक गांव का अपना अलग देवता, अलग धर्म और अलग ही पूजा-विधि हो गई थी। इस से और आगे उन में से कई एक इस्लामी पीरों-फकीरों को ही अपने रहबर और गुरु मानने लगे थे, जो उन को काफिर कहते थे और उन्हें कुर्बानी के बकरे ही समझते थे। कहीं वे खुदा ही बने हुए थे और कहीं सब कुछ खुदा से निकला हुआ कहने लगे थे।

कहीं माया का चक्र चल रहा था तो कहीं वैराग्य का। और 'सब कुछ मिथ्या है' की लोरी दी जा रही थी। धर्म की अनेकों दुकानें खुली हुई थीं। सब अपने सौदे का गौरव-गान कर रहे थे। सब अपना पेट पीट रहे थे और उच्च स्वर से आलाप रहे थे कि उनका धर्म सर्वश्रेष्ठ है। मुक्ति सस्ते भाव बिक रही थी और टके सेर तोली जा रही थी। एक दिन भूखे रहने से और व्रत रखने से, एकादशी के अनशन अथवा एक बार के स्नान से, केवल थोड़े से पैसों के दान से,दो चार अक्षरों के जप, कुछ प्रकार के मंत्रों को रटने से और कुछ प्रकार के तिलक लगाने से न केवल इस जन्म के, प्रत्युत सहस्रों जन्मों के पाप, न केवल अपने ही, अपितु अपने पिता-पितामाहों के पाप भी नष्ट हो जाते थे। पापों का ही नाश नहीं होता था, स्वर्ग के सारे द्वार भी खुल जाते थे और सब प्रकार की मुक्ति सहज ही प्राप्त हो जाती थी।

इस विभाजन और पृथकता की यह दशा थी कि प्रत्येक का तिलक भिन्न, तिलक की रूप-रेखा भिन्न, तिलक का रंग भिन्न, स्वरूप भिन्न जिस से मरणोपरांत देवताओं की पुलीस को अपने पुजारी की पहचान में धोखा न हो। माला और माला के मणके भिन्न भिन्न शकलों और भिन्न भिन्न रंगों के थे। किसी की

लकड़ी की माला, किसी की रुद्राक्ष की, किसी की मोतियों की, किसी की चन्दन की, किसी की तुलसी की, किसी की पत्थर की, किसी की बिल्लौर की; फिर कोई लाल, कोई पीली, कोई हरी, कोई श्वेत, कोई काली। किस किस बात का वर्णन किया जाय। प्रत्येक वस्तु ही एक दूसरे से अलग, भिन्न या विरुद्ध थी।

सब के कर्म-काण्ड, नियम और धार्मिक-रीतियां अलग-अलग थीं। धार्मिक जगत में व्यापार की मंडी गर्म थी, और अदला-बदली, खरीद और बिकरी, हिब्बा और रेहन सब का चलन था। दान कोई करे, मूल्य कोई दे और उसके फल अथवा लाभ को हिब्बा लिखने से कोई और प्राप्त कर सकता था। एक व्यक्ति को थोड़े से पैसे दे कर उसकी भक्ति, जप और पूजा-पाठ मोल ले लो और फल खाओ। पाप चाहे आप करो और किसी भी पेशावर से दो-तीन आने देकर किसी पुस्तक का पाठ करा लो, किसी मन्त्र की माला फिरवा लो,तो पाप नाश हो गया। पाप करो और अपने देवता को दो-चार फूल-पताशे, गरी-मेवे देकर अनुकूल और प्रसन्न कर लो। यदि प्रचलित रीति ही यह थी तो आचरण की शुद्धि करने, प्रार्थना करने का भार उठाने, अभ्यास से जप तप द्वारा आत्मा की उन्नति करने, सामाजिक कल्याण की चिंता करने, फूट के हानिकारक परिणामों के दुःख को अनुभव करने और प्रभु के साथ लौ लगाने की किसी को क्या आवश्यकता थी?

इस धार्मिक व्यापार के काल में प्रभु-भक्ति तथा प्रेम-भजनों की क्या आवश्यकता थी? लोक-परलोक का सुख केवल कुछ टकों से प्राप्त हो सकता था। यदि मूल्य देने से ही माल प्राप्त होना था तो शुभ कर्मों की क्या आवश्यकता थी? पूर्व जन्म के कर्मों के हिसाब-किताब का क्या अर्थ? यहां तक कि न केवल इस प्रत्यक्ष संसार में प्रत्येक रीति, धर्म तथा विश्वास अलग अलग,

अपितु अदृष्ट अगले संसार में भी भाईचारा और सांझेदारी कठिन थी। प्रत्येक देवता का नर्क-स्वर्ग पृथक-पृथक निश्चित था। जब देवताओं में युद्ध मचा हुआ था तो उनके उपासकों में कैसे मेल-मिलाप हो सकता था? उन्होंने ईश्वर की भी ऐसी दुर्गति की कि पहले उन्होंने ईश्वर को उनके शिव जी, विष्णु आदि अवतारों में बांटा और फिर पीछे न केवल मनुष्य रूप में अवतरित किया, प्रत्युत मत्स, कच्छप और वाराह में से भी दर्शाया। वे इस से भी आगे बढ़े और इतने गिर गये कि ईश्वर को न मनुष्य, न पशु अपितु, नर-सिंघ बना दिखाया। मूर्ति-पूजा प्रचलित करके अवतारों की मूर्तियां बना डालीं। मूर्तियों में भी मतभेद, किसी का सिर नहीं और किसी का पांव नहीं। कोई मूर्ति लकड़ी की, कोई पत्थर की। पत्थर भी एक प्रकार का नहीं, कोई गोल पत्थर और कोई गढ़ा हुआ। और भी भिन्न भिन्न प्रकार के पत्थर थे। कन्हैया का चित्र तथा मूर्ति और कामदेव की मूर्तियों की पूजा तो आम प्रचलित थी। आश्चर्य है कि वाराह, मत्स और कच्छप की मूर्तियां बना कर पूजा करनी क्यों रह गई!

धर्म के नाम पर भांति भांति के शारीरिक कष्ट सहन किये जाते थे। कोई काशी के कुएं में आरे के साथ शरीर की दो फांकें करवा कर मरना पवित्र समझता था, कोई जगन्नाथ के रथ के नीचे पिस कर और कुचले जा कर मरने को पावन मानता था। शोक है कि कान और नाक कटवाने की रीति अभी तक नहीं प्रचलित हुई थी, यद्यपि उनका छेदन पवित्र बन चुका था। कोई बाहें सुखाता था, उनको नाकारा करता था और कोई एक टांग पर खड़े रहने का अभ्यास करते पशु बन रहा था, कोई उलटा लटका हुआ था। धार्मिक पहरावे और वस्त्रों के रंग अलग

अलग थे। वाह्य हाव-भाव और रूप भी अलग-अलग, दाढी-मूछें और सिर के बालों के नमूने भी अलग अलग थे।

इस पतनोनमुख अवस्था और गिरावट से ही बुद्ध मत ने जन्म लिया था। वह तलवार के बल से ही फैला और तलवार के बल से ही भारत की सीमाओं से बाहर निकाला गया और यदि उस में कोई शुभ गुण थे तो उस के अनुसरण-कर्त्ता उनको अपने साथ ही ले गये और अवगुण हिन्दुओं के हवाले कर गये। देवियों और देवताओं के आगे न केवल पशुओं की बलि ही उचित मानी जाती थी, अपितु नर-बलि सब से अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती थी। बंदर वाशी के मन्दिर के पुजारी डींगें बघारते थे और गर्व से कहते थे कि देवी को पशु-वलि देने से कभी रक्त नहीं सूखता।

गंदगी खाना भी एक सम्प्रदाय का गुण समझा जाता था। भैरव को भोग शराव का, शिव जी को भोग चरस और अफीम का और देवी के सम्मान में कबाव खाना पीना कर्तव्य समझे जाते थे। कुछ एक कुत्तों के साथ मिल कर खाने में गर्व करते थे। गुरु के दर्शन-भेंट और साधुओं और सन्तों की सेवा मात्र से मुक्ति की प्राप्ति मानी जाती थी।

इन सब की सब बुराईयों और अवगुणों के जन्मदाता केवल ब्राह्मण ही थे। उन्हों ने ब्रह्मणेतर जातियों को वेदों और शास्त्रों की विद्या से विवर्जित रखा और धीरे धीरे विद्या केवल ब्राह्मणों के हाथों में रह गई। अन्य किसी को ये पढ़ाते ही नहीं थे। वे यह दावा करते थे कि संस्कृत देव-भाषा है और उसको पढ़ने-पढ़ाने का अधिकार ब्राह्मणों के अतिरिक्त और किसी को नहीं। स्वयं ही ये शास्त्राचार्य थे, स्वयं ही पुराणों के कर्त्ता-धर्ता। और

इन सब सम्प्रदाओं और विभाजनों और भेदों के जन्म-दाता भी ब्राह्मण ही थे। यद्यपि वे मार खा कर अपमानित और तिरस्कृत हो रहे थे परन्तु पुरानी ऐंठ और अधिकार छोड़ने का नाम नहीं लेते थे। जिस वस्तु पर वे अपना जन्म-जात और दैवी अधिकार जमाए बैठे थे उस से रत्ती भर भी अलग होने के लिए कदाचित तैयार न थे। ब्राह्मण की किसी रीति-मर्यादा अथवा किसी मान-प्रतिष्ठा में हस्तक्षेप करना बड़ी कठिन बात थी। थोड़ा सा हस्तक्षेप करना भी उन को आपे से बाहर कर देता था। ब्राह्मण इस घर के हस्तक्षेप को मुस्लमानों के अत्याचार से बहुत अधिक भयानक समझते थे। इस स्थिति का अनुमान लगाने के लिए कुछ एक वे आदेश देखो जो अपने बल और अधिकार को स्थिर रखने के लिए आसानी से ही किसी पर लगाये जा सकने के लिए धर्म शास्त्रों में अंकित कर रखे थे। उनका विस्तार बहुत बड़ा है, परन्तु यहां धर्म-शास्त्रों से कुछ उदाहरण पाठकों के लिए अंकित किये जाते हैं :—

सारी सृष्टि की सारी उत्पत्ति पर ब्राह्मण का ही आधिपत्य है और यह सारा दृष्टिगोचर पसारा उस के लिए ही उत्पन्न किया गया है। (१/६६-१००-१०१ मनु)

ब्राह्मण अपने मन्त्रों की शक्ति से राजा को, उसकी सेना और हाथी-घोड़ों सहित नाश कर सकता है। (६/३१३ मनु)

ब्राह्मण, संसार की भान्ति, बहुत से विद्वान, राज्य अधिकारी राजे, नये मनुष्य और नये देवता और अन्य नाशवान अनेकों वस्तुएं उत्पन्न कर सकता है। (६/३१५ मनु)

इस में भी कोई सन्देह की गुन्जाइश नहीं कि इन्होंने राजपूत भाईयों को लड़ा कर कई छोटी-छोटी राजधानियां बनाई

नये देवता तो अनेकों बनाये और नित्य नये सूरज यही काम करते रहते थे।

राजा से ब्राह्मण कहीं अधिक आदर-सत्कार का अधिकारी है। (६/१३६ मनु)

ब्राह्मण के शरीर और प्राण की रक्षा के लिये, भारी दोष करने पर भी ब्राह्मण कड़े दण्ड से मुक्त है।
(८/२८१-२८३,४/१६५-१६६ तथा ६/२०५-२०८,२३२ मनु)

यदि कोई अपराध ब्राह्मण के शरीर अथवा उसकी सम्पत्ति के विरुद्ध किया जाये तो अपराधी दस गुणा अधिक दण्ड का अधिकारी है। (८/३७६, ३७८, ३७९ मनु)

राजा के लिये आवश्यक है कि वह अपना मुख्य मन्त्री और परामर्शदाता ब्राह्मण को बनावे। (७/५८ मनु)

न्यायालय का सब कार्य भी ब्राह्मणों के हाथों में हो।
(८/१,९,१०,११ मनु)

ब्राह्मण को यज्ञ के अवसर पर बहुत सी दक्षिणा दी जानी चाहिये। यदि कहीं कम दी गई तो सारे जीव-जन्तु, सन्तान, प्रतिष्ठा और परलोक के जीवन का आनन्द भी नष्ट हो जायेगा। (३/१३३-१४६, ११/३९,४० मनु)

पूजा-पाठ का फल और तीर्थयात्रा से छुटकारा, ब्राह्मणों को सम्पत्ति दान करने से प्राप्त हो सकता है।
(११/११७ से १३९ मनु)

ब्राह्मणों से किसी प्रकार का कर अथवा चुंगी न ली जाये।
(७/१३२, १३३ मनु)

यदि ब्राह्मण का कोई पशुधन चुरा ले तो उसके पैर काट देने चाहियें। (८/३२५ मनु)

शूद्र केवल ब्राह्मण की नौकरी करे, और यदि प्राप्त न हो तो क्षत्रि की चाकरी करे। ८/३३४ मनु।

इन उल्लेखों पर अधिक टिप्पणी की आवश्यकता नहीं। ब्राह्मण की शक्ति इन से पर्याप्त स्पष्ट हो जाती है। प्रत्येक वस्तु उन के वश में थी। उन का तो देवता बनाने का अधिकार भी मान लिया गया था। वे अपना उल्लू सीधा करने के लिये जैसे भी आवश्यकता होती धर्म-शास्त्रों के मंत्रों को तोड़-मरोड़ अपने पक्ष के अर्थ निकाल लेते। जो जो रीतियां उन को वित्तीय लाभ पहुंचाती थीं वे ही उन्होंने लागू कीं। अपने भले और अधिकार को स्थिर रखने के लिये उन्होंने आम हिन्दुओं को संस्कृत की विद्या प्राप्त करने से तो रोक ही रखा था, अरबी और फारसी सीखना भी विवर्जित कर दिया। मलेछ भाषा का सीखना धर्म-शास्त्रों के विरुद्ध कहा गया। जिस किसी ने फारसी सीखनी आरम्भ की उस को शूद्र कह कर अपमानित किया गया और बरादरी से निकाल बाहर किया गया। कायस्थ, जिन्होंने पहले फारसी की विद्या प्राप्त करनी आरम्भ की थी अभी तक भारत में शूद्र समझे जाते हैं। इस मूर्खता का ही परिणाम था कि हिन्दू बौद्धिक स्तर पर पूर्ण भांति ब्राह्मणों के दास बन गये, और इस अन्ध घोर का सदा के लिए शिकार हो गये। शारीरिक दासता से बौद्धिक दासता बहुत अधिक भयानक होती है और हानि-कारक भी।

हिन्दू एक ओर तो ब्राह्मणों के बौद्धिक दास थे और दूसरी ओर शारीरिक दृष्टि से इस्लाम के गुलाम। गुरु गोविन्द सिंघ जी ने जनता को दोनों परतन्त्रताओं से स्वतंत्र करने का उद्देश्य अपने सामने रखा। हिन्दुओं को ब्राह्मणों की बौद्धिक दासता से छुटकारा दिलाने के समय ब्राह्मणों से तो विरोध की आशंका है ही थी, परन्तु साधारण हिन्दु भी विरोध पर उतारू हो गये।

गुरु गोविन्द सिंघ जी ने विरोध की आंधियों और झक्खड़ों की चिन्ता न करते हुये हिन्दुओं के लिये बौद्धिक दासता से मुक्ति का नाद बजाया और एक 'अकाल-पुरुष' की ओर लगने के लिये निमंत्रित किया।

सब से पहले उन्होंने हिन्दुओं के धार्मिक सुधार की ओर ध्यान दिया। आत्मिक नेता की हैसियत से उन्होंने प्रभु-भक्ति का उपदेश दिया। मानवीय धर्मों के अनुसरण और मूर्ति-पूजा से घृणा की शिक्षा दी। द्वैत का बड़े जोर से खण्डन किया। मूर्ति-पूजा की ओर से लोगों को प्रचार द्वारा रोका और गुरु नानक देव जी की शिक्षा की ओर आकर्षित किया। श्राद्धों को पाखंड कहा। देवताओं की पूजा को छल और धोखा बताया। अवतारों को कुदरत के विरुद्ध कहा। तीर्थ-स्नान को निपट ठगी और साधुओं के बाह्य भेष को धोखे का पर्दा बताया। प्रकृति-पूजा अथवा मनुष्य-पूजा, पशु-पूजा, धातों और पत्थरों की पूजा की ओर से रोक कर लोगों के मनों में इन के विरुद्ध घृणा भर दी।

धार्मिक पहरावों और चिन्हों के विरुद्ध युद्ध छेड़ा। केवल एक रचियता परमात्मा, निरंकार, अकाल की भक्ति से सब को जोड़ा और उस की ही पूजा दृढ़ कराई। 'सचु सभना होइ दारू' का पाठ सिद्ध करवाया। 'सत्य' को सर्व श्रेष्ठ सिद्ध किया। संक्षेप में गंदे, दुर्गन्ध वाले मैले-कुचैले छोटे-छोटे स्रोतों से निकाल कर उनको एक ईश्वर की प्रेम-भक्ति के महासागर के तट पर ला खड़ा किया।

गुरु गोविन्द सिंघ जी की वाणी की असंख्य रचनाओं में से केवल कुछ कवित्त उन विचारों के फैलाव और उच्चता, उन के आदर्श, सुन्दरता, उन के चलन की पवित्रता और उनकी ईश्वर-भक्ति के गुणों को प्रकट करने के लिये पाठकों के स्वादनार्थ नीचे अंकित किये जाते हैं।

त्वप्रसादि ।। कवित्त ।।

खूक मलहारी गज गदहा बिभूतधारी,
गिदूआ मसान बास करिओ ई करत हैं ।।

यदि परमात्मा मट्टी शरीर पर लगाने से प्राप्त होता हो तो हाथी और गधे सदा मट्टी ही धारण किये रहते हैं। यदि प्रभु श्मशान में रहने से मिलता हो तो गिद्ध तो सदा श्मशान में ही रहते हैं।

घुघू मट बासी लगे डोलत उदासी मृग
तरवर सदीव मोन साधे ही मरत हैं ।।

यदि मठ में रहने से मुक्ति प्राप्त होती हो तो उल्लू सदा मठों में रहता है। उदास रहने से भी मुक्ति नहीं प्राप्त होती, देखो हिरन सदा उदास एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर भागते रहते हैं। चुप्पी साधने से भी मुक्ति नहीं मिलती, वैसे तो वृक्ष सदा चुप खड़े ही रहते हैं।

बिंद के सधैया ताहि हीज की बड़ैया देत
बांदरा सदीव पाइ नागे ही फिरत हैं ।।

ब्रह्मचारी रहने से भी ईश्वर नहीं मिलता। देखो हीजड़े सदा ब्रह्मचारी ही रहते हैं। नंगे पांव फिरने से भी मुक्ति नहीं प्राप्त होती, बंदर भी तो सदा नंगे पांव फिरते ही रहते हैं।

अंगना अधीन काम क्रोध मैं प्रबीन
एक ज्ञान के बिहीन छीन कैसे कै तरत हैं ।।१।।७१।।

सुन्दर स्त्री के वश में, लिंग-वासना और क्रोध से भरपूर, ज्ञान के बिना यह तुच्छ जीव संसार-सागर को कैसे पार कर सकता है?

भूत बनचारी छित छउना सभै दूधाधारी
पउन के अहारी सु भुजंग जानीअत हैं ।।

जंगलों में रहने से भी परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती, भूत तो सारे बनों मे ही रहते हैं। केवल दूध पर आधार रखने से भी उस की प्राप्ति नहीं हो सकती, बच्चे सब दूध पर आधार रखते हैं। पवन-आहारी होने से भी वह नहीं मिल सकता, सांप पवन-आहारी ही तो हैं।

तृण के भछय्या धन लोभ के तजैया ते तो
गऊअन के जय्या ब्रिख भय्या मानीयत हैं ।।

घास खाने और धन के लोभ त्याग करने से भी प्रभु प्राप्ति नहीं होती। इस प्रकार तो गायों के बछड़े और वृक्ष तो मुक्त हो गये माने जाते।

नभ के उडय्या ताहि पंछी के बडय्या देत
बगुला बिड़ाल बृक धिआनी ठानीअत हैं ।।

आकाश में उड़ने की सिद्धि प्राप्त करके भी अकाल पुरुष नहीं मिलता, पक्षी तो सदा उड़ते ही रहते हैं। केवल ध्यान जमाने से भी वह नहीं प्राप्त होता। बगुले, बिल्ले और भेड़िये भी तो सदा ध्यान जमाए रखते हैं।

जेते बडे ज्ञानो तिनो जानी पै बखानी नाहि
ऐसे न प्रपंच मन भूल आनीअत हैं ।।२।।७२।।

जितने बड़े बड़े ज्ञानी हैं, उन्होंने परम् शक्ति परमात्मा को जान लिया है परन्तु उन्होंने उसका प्रकट वर्णन नहीं किया। इस लिये उपर्युक्त सिद्धियां आदि प्राप्त करने के कार्य में जो लगे हुए हैं उनके प्रपंच में कदापि न फंसना।

भूम के बसय्या ताहि भूचरी के जय्या कहैं
नभ के उडैया सो चरय्या कै बखानीऐ ॥

धरती पर बिना शय्या सोने से मुक्ति नहीं प्राप्त होती, भूमि पर सोने वालों को क्या चुहिया के बच्चे कहें ? और आकाश में उड़ने की सिद्धि प्राप्त करने से भी मुक्ति नहीं मिलती, क्या ऐसे व्यक्तियों को चिड़ियां कहा जाये ?

फल के भछय्या ताहि बाँदरी के जय्या कहैं
आदिस फिरय्या तेते भूत कै पछानीऐ ॥

केवल फलों के खाने से भी मुक्ति नहीं मिलती, बंदर भी तो फल ही खाते हैं। अलोप रहने से भी मुक्ति नहीं मिलती, भूत भी तो सदा आंखों से ओझल रहते हैं।

जल के तरय्या को गंगैरी सी कहत जग
आग के भछय्या सु चकोर सम मानीऐ ॥

जल में (तैंरते) रहने से भी मुक्ति प्राप्ति नहीं होती, जल में सदा तैंरते रहने वाले को मछली अथवा केंकड़े जैसा कहा जाता है। आग खाने वाले को चकोर जैसा मान लीजिये। उसे भी मुक्ति नहीं मिलती।

सूरज सिवय्या ताहि कौल की बडाई देत
चंद्रमा सिवय्या को कवि कै पहिचानीऐ ॥

सूर्य की पूजा करने वाले को कमल फूल जैसा कहा जा सकता है, चन्द्रमा के पूजक को कमलनी समान कहा जा सकता है। सूर्य और चन्द्र की पूजा से मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती।

नाराइण कच्छ मच्छ तिंदूआ कहित सभ
कउल नाभ कउल जिह ताल मैं रहत हैं ॥

कछुए, मछली और तेंदुए को भी सब नारारण कहते हैं, कंवल-नाभि कमल फूलों का नाम है जो जल में रहते हैं। इन नामों के केवल जपने से मुक्ति नहीं मिलती।

गोपी नाथ गूजर गुपाल सभै धेनचारी
रिखीकेस नाम के महंत कहीअत हैं ।।४।।७४।।

गोपी नाथ और गोपाल सब गूजरों और गायों को चराने वाले होते हैं और ऋषिकेश नाम महंतों को प्राप्त होता है। इन नामों के केवल जपने से परमात्मा को प्राप्ति नहीं होती।

माधव भवर औ अटेरू को कन्हया नाम
कंस के बधय्या जमदूत कहीअत हैं ।।

भंवरे को माधव अटेरू को कन्हैया और कंस को मारने वाले को यमदूत कहते हैं। इन नामों को केवल दोहराने से ईश्वर से तादाताम्य नहीं होता।

मूढ़ रूढ़ पीटत न गूढ़ता के भेद पावै
पूजंत न ताहि जाके राखे रहीअत हैं ।।

मूर्ख पुरानी प्रथा पर गलती से चलते हैं और गूढ़ भेद को नहीं जान सकते और उस निरंकार परमात्मा को मन से भक्ति सहित नहीं पूजते जिस की रक्षा से वे बचे हुए हैं।

बिस्व पाल जगत काल दीन दइआल बैरीसाल
सदा प्रतिपाल जमजाल ते रहत हैं ।।

विश्व को पालने वाले, जगत के काल, शत्रुओं का नाश करने वाले, दीनों पर दया करने वाले, सदैव सब की रक्षा करने, मृत्यु से मुक्त हैं भगवान।

जोगी जटाधारी सती साचे बडे ब्रह्मचारीं
धिआन कांज भूख पिआस देह पै सहत हैं ।।

सिर पर जटा धारण करने वाले योगी, दानी, सत्य पर चलने वाले और ब्रह्मचारी जो उस परमात्मा पर ध्यान जमाने के लिये भूख और प्यास को सहारते हैं।

निउली करम जल होम पावक पवन होम
अधो मुख एक पाइ ठाढे न बहत हैं ।।

कितने ही लोक आंतड़ियों को साफ और मैल रहित करते हैं, ठंडे जल में खड़े रह कर, धूनियों के वीच बैठ कर, विना खाये पवन पर गुज़ारा करके, सिर के बल खड़े हो कर, एक टांग पर विना बैठे खड़े रह कर उसी के लिये तपस्या करते हैं।

मानव फनिंद देव दानव न पावहि भेद
बेद औ कतेब नेत नेत कै कहत है ।।५।।७५।।

मनुष्य, शेषनाग अथवा वड़े वड़े सांप, देवते, राक्षस उस का भेद नहीं जान सकते, वेद और कुरान आदि धार्मिक पुस्तकें उसे अनन्त कहती हैं।

नाचत फिरत मोर बादर करत घोर
दामनी अनेक भाउ करिओ ई करत है ।।

मोर नाचते हैं, बादल गर्जते हैं, बिजली कितने रंग-रूप बदलती ही रहती है।

चंद्रमा ते सीतल न सूरज ते तपत तेज
इंद्र सौं न राजा भव भूम को भरत हैं ।।

चंद्रमा से शीतल और सूर्य से गर्म और तेजवान और इन्द्र–

जो पृथ्वी को तृप्त करता है—जैसा कोई राजा नहीं।

सिव से तपसी आदि ब्रहमा से न बेदचारी

सनत कुमार सी तपसिआ न अनत है ॥

शिव जी जैसा तपस्वी, ब्रह्मा जैसा वेदों को जानने वाला और सनत् कुमार जैसी तपस्या कहीं और नहीं।

गिआन के बिहीन काल फास के अधीन सदा

जुगन की चउकरी फिराए ई फिरत है ॥६॥७६॥

परन्तु ये सब भी विशुद्ध ज्ञान के बिना काल के फंदे में फंसे चारो युगों में फिरते ही रहते हैं।

एक सिव भए एक गए एक फेर भए

राम चंद्र क्रिसन के अवतार भी अनेक हैं॥

एक शिव ने जन्म लिया, वे मर गये और फिर जन्मे, इसी प्रकार राम और कृष्ण भी कई बार जन्मे हैं।

ब्रहमा अर बिसन केते बेद औ पुरान केते

सिंम्रित समूहन कै हुइ हुइ बितए हैं॥

कितने ही ब्रह्मा और विष्णु वेद, पुराण और स्मृतियों के समूह कई बार जन्म लेकर तथा रचे जा कर बीत गये हैं।

मोनदी मदार केते असुनी कुमार केते

अंसा अवतार केते काल बस भए हैं॥

दीन के रक्षक कितने ही सिपहसालार, कितने ही अश्विनी कुमार, अंशिक रूप में अवतार हुए हैं और मृत्यु लोक को पधारे हैं।

पीर औ पिकाँबर केते गने न परत एते

भूमही ते हुइ कै फेरि भूमि ही मिलए हैं ॥७॥७७॥

असंख्य पीर और पैगंबर इस पृथ्वी पर पैदा हो कर पृथ्वी में ही समा गये हैं।

जोगी जती ब्रहमचारी बडे बडे छत्रधारी

छत्र ही की छाइआ कई कोस लौ चलत हैं ॥

कितने ही योगी, यति, ब्रह्मचारी और बड़े बड़े छत्रपति जो छत्र की छाया के नीचे कोसों तक चलते हैं।

बडे बडे राजन के दाबत फिरत देस

बडे बडे राजन के द्रप के द्रप को दलत हैं ॥

जो बड़े बड़े राजाओं के देशों पर अधिकार जमाते फिरते हैं और बड़े राजाओं के अहंकार को पाओं तले रौंदते हैं।

मान से महीप औ दिलीप केसे छत्रधारी

बडो अभिमान भुज दंड को करत हैं ॥

मांधाता जैसे राजा और दिलीप जैसे चक्रवर्ती महाराज जो अपनी शक्तिशाली भुजाओं पर बहुत अभिमान करते हैं।

दारा से दिलीसर द्रजोधन से मानधारी

भोग भोग भूमि अंत भूमि में मिलत हैं ॥८॥७८॥

दारा जैसे राजा तथा दुर्योधन जैसे अहंकारी इस भूमि पर ऐश्वर्य का जीवन बिता कर इस भूमि की मट्टी में ही मिल जाते हैं।

सिजदे करे अनेक तोपची कपट भेस

पोसती अनेकदा निवावत है सीस कौ ॥

तोप चलाने वाला निशाना लगाने अथवा धोखा देने के लिये और पोस्ती कई वार सिर को नीचा करता है। सिर नीचा करने को प्रणाम नहीं कहा जा सकता।

कहा भइओ मल्ल जौ पै काढत अनेक डंड
सो तौ न डंडौत असटाँग अथतीस कौ॥

पहलवान भुजाओं और टांगों द्वारा छाती और पेट को नीचे करके वहुत से डंड पेलते हैं परन्तु उनको परमात्मा के समक्ष डंडे की तरह लेट कर आठ अंगों (घुटने, पांव, हाथ, छाती, शीश, मुख, आंखे और अंतःकरण) से किया प्रणाम तो नहीं समझा जा सकता।

कहा भइओ रोगी जो पै डारिओ रहिओ उरध मुख
मन ते न मूंड निहुराइओ आदि ईस कौ॥

रोगी के मुख ऊपर कर के लेटे रहने से क्या होता है यदि मन से सिर भक्ति पूर्वक नीचा करके आदि पुरुष ईश्वर को नहीं देखता।

कामना अधीन सदा दामना प्रबीन एक
भावना बिहीन कैसे पावै जगदीस कौ॥९॥७९॥

इच्छाओं के वशीभूत हो कर लोगों को फंसाने में कुशल मनुष्य श्रद्धा के बिना जगत के एक ही स्वामी को कैसे प्राप्त कर सकता है?

सीस पटकत जा के कान मै खजूरा धसै
मूंड छटकत मित पुत्र हूं के सोक सौ॥

जिस के कान में कन-खजूरा घुस जाये वह लगातार सिर ऊंचा-नीचा हिलाता है और जिस का पुत्र मर गया हो वह भी

उस के शोक में इधर से उधर सिर हिलाता है। सिर पटकने छटकने का कोई लाभ नहीं।

आक को चरय्या फल फूल को भछय्या सदा
वन को भ्रमय्या और दूसरो न बोक सो ॥

बकरियों से बढ़ कर आक चरने वाला, फल-फूल खाने वाला और जंगल में घूमने वाला और कोई नहीं। आक चबाने, केवल फलों का आहार करने और जंगल में रहने और घूमने का भी कोई लाभ नहीं।

कहा भयो भेड जो घस्सत सीस ब्रिछ्छन सो
माटी के भछय्या बोल पूछ लीजै जोक सों ॥

सिर घिसने से क्या लाभ? भेड़ें भी तो वृक्षों के साथ सिर रगड़ती रहती हैं। मट्टी में रहने से भी कोई लाभ नहीं, मट्टी में सदा रहने वाली जोंक से यह बात पूछ लीजिये।

कामना अधीन काम क्रोध में प्रबीन
एक भावना बिहीन कैसे भेटै परलोक सो॥१०॥८०॥

इच्छाओं के वश में पड़ कर, काम कला में कुशल हो कर, क्रोध से भरे रह कर और एक सच्ची श्रद्धा के बिना प्रभु-लोक कैसे पाया जा सकता है?

नाचिओई करत मोर दादर करत सोर
सदा घनघोर घन करिओ ई करत है ॥

मोर नाचते ही रहते हैं, मेंढक शोर मचाते ही रहते हैं और बादल सदा गर्जा ही करते हैं।

एक पाइ ठाढे सदा बन में रहत ब्रिछ
फूक फूक पाव भूमि स्त्रावग धरत है ॥

वृक्ष सदा जंगल में एक पांव (तने) के बल खड़े रहते हैं और जैन मत के साधु (श्रावक) धरती पर फूंक फूंक कर पांव रखते हैं।

पाहन अनेक जुग एक ठउर बासु करै
काग अउर चील देस देस बिचरत है ॥

पत्थर बहुत लम्बे समय तक एक जगह ही टिके रहते हैं और कौवे तथा चीलें एक देश से दूसरे देश में भ्रमण करती रहती हैं।

गिआन के बहीन महादान मैं ना हूजै लीन
भावना बिहीन दीन कैसे कै तरत हैं ॥११॥८१॥

ज्ञान रहित, जो महादानी परमात्मा के साथ ध्यान नहीं लगाता और जो विचारा श्रद्धाहीन है वह संसार-सागर से कैसे पार उतरेगा ?

जैसे एक स्वाँगी कहूं जोगीआ बैरागी बनै
कबहूं सनिआस भेस बन कै दिखावई ॥

जैसे एक बहुरूपिया कभी योगी, कभी वैरागी और कभी संन्यासी रूप बन कर दिखाता है।

कहूं पउनअहारी कहूं बैठे लाइ तारी
कहूँ लोभ की खुमारी सौ अनेक गुन गावही ॥

कहीं पवन-अहारी बन कर और कहीं समाधि लगा कर बैठता है तथा कहीं लोभ के नशे में अनेकों के गुण गाता फिरता है।

कहूँ ब्रह्मचारी कहूं हाथ पै लगावै बारी
कहूँ डंडधारी हुइकै लोगन भ्रमावई ॥

कहीं ब्रह्मचारी बन कर दिखाता है, कहीं हाथ पर छाप लगा कर दिखाता है, और कहीं दंडधारी साधु बन कर लोगों को धोखा देता फिरता है।

कामना अधीन परिओ नाचत है नाचन सों
गिआन के बिहीन कैसे ब्रह्म लोक पावई ॥१२॥८२॥

ऐसे भेष धारण करने वाले इच्छाओं के अधीन हो कर नाच नाचते फिरते हैं। ये सच्चे ज्ञान के बिना ब्रह्मलोक को कैसे पा सकते हैं ?

पंच बार गीदर पुकारे परे सीत काल
कुंचर औ गदहा अनेकदा पुकार हीं ॥

शीतकाल में गीदड़ पांच वार शोर मचाते हैं और हाथी तथा गधे बहुत बार शोर मचाते हैं। ऊंचे स्वर से पुकारने का कोई लाभ नहीं।

कहा भयो जो पै कलवत्र लीओ कांसी बीच
चीर चीर चोरटा कुठारन सो मार हीं ॥

क्या हुआ जो काशी में जा कर किसी ने आरे के साथ शरीर चिरवा लिया ? कई चोरों को भी आरे से चीर कर मारा जाता है। इस का भी कोई लाभ नहीं।

कहा भयो फांसी डारि बूडिओ जड़ गंगधार
डारि डारि फांस ठग मारि मारि डार हीं ॥

क्या हुआ यदि मूर्ख गले फांसी डाल कर गंगा के प्रवाह में डूब मरा। ठगों को भी फांसी दे कर मारा जाता है। यह तो आत्मघात है। इस का क्या लाभ ?

डूबे नरक धार मूढ़ गिआन के बिना बिचार
भावना बिहीन कैसे गिआन को बिचार हीं ॥१३॥८३॥

जो लोग ज्ञान-रहित तथा विचार-शून्य हैं वे श्रद्धा के बिना कैसे सच्चे ज्ञान-विचार को प्राप्त कर सकते हैं ?

ताप के सहे ते जो पै पाईऐ अताप नाथ
तापना अनेक तन घाइल सहत हैं ॥

यदि कष्ट सहने से कष्ट दूर करने वाला स्वामी मिलता हो तो घायल अनेक कष्ट तन पर सहारते हैं ।

जाप के कीए ते जो पै पायत अजाप देव
पूदना सदीव तुहीं तुहीं उचरत हैं ॥

यदि केवल जप करने से वह प्रभु जो मन की लिव से रीझता है, पाया जा सके तो पूदना पक्षी "तुही तुही" जपते ही रहते हैं ।

नभ के उडे ते जो पै नाराइण पायत
अनल आकास पंछी डोलबो करत हैं ॥

यदि आकाश में उड़ने से नारायण मिल सकता तो अकाश-पक्षी अनल सदा आकाश में उड़ता ही रहता है ।

आग मैं जरे ते गति राँड की परत कर
पताल के बासी किउं भुजंग न तरत हैं ॥१४॥८४॥

यदि आग में जलने से मुक्ति प्राप्त होती तो सती होने वाली विधवा को प्राप्त हो जाये । यदि धरती के नीचे गढ़े में रहने से मुक्ति प्राप्त होती हो तो धरती के नीचे विलों में रहने वाले सांप क्यों न भव-सागर पार कर लें ?

कोऊ भइओ मुँडीआ संनिआसी कोऊ जोगी भइओ
कोऊ ब्रह्मचारी कोऊ जती अनुमानबो ॥

कोई सिर मुंडा कर बैरागी बन गया, कोई संन्यासी, कोई जोगी, कोई ब्रह्मचारी और कोई यति।

हिन्दू तुरक कोऊ राफ़जी इमाम साफी
मानस की जात सबै एकै पहिचानबो ॥

कोई हिन्दू, कोई तुर्क, कोई शीआ और कोई सुन्नी है, परन्तु मैं सब मनुष्यों को एक जैसा समझता हूं।

करता करीम सोई राजक रहीम ओई
दूसरो न भेद कोई भूल भ्रम मानबो ॥

वही एक सृष्टि का रचयिता और दयालु है, वही सब को जीविका देने वाला कृपालु है। भ्रम में पड़ कर कभी भी मैं दूसरा नहीं मानूंगा।

एक ही की सेव सब को गुरदेव एक
एक ही सरूप सबै एकै जोत जानबो ॥१५॥८५॥

मैं उस की एक ही पूजा करूंगा जो सब का गुरुदेव है। सब एक ही के स्वरूप हैं, मैं सब में उस एक ही ज्योति को जानूंगा।

देहरा मसीत सोई पूजा औ निवाज ओई
मानस सबै एक पै अनेक को भ्रमाउ हैं ॥

मंदिर और मस्जिद वही एक परमात्मा है, पूजा और नमाज भी उसी की होती है। मनुष्य सब एक हैं यद्यपि अनेक प्रकार के होने का भ्रम होता है।

देवता अदेव जछ गंध्रब तुरक हिन्दू
निआरे निआरे देसन के भेप को प्रभाउ है ॥

देवता, राक्षस, यक्ष, गंधर्व, तुर्क और हिन्दू इन की भिन्नता भिन्न भिन्न देशों के पहरावों के कारण प्रतीत होती है ।

एकै नैन एकै कान एकै देह एकै बान
खाक बाद आतश औ आब को रलाउ है ॥

मनुष्यों की आंखें, कान, शरीर और बनावट एक सी है । सब मट्टी, अग्नि, जल, वायु के मिलने से बने हैं ।

अलह अभेख सोई पुरान औ कुरान ओई
एक ही सरूप सबै एक ही बनाउ है ॥१६॥८६॥

भेष रहित अल्ला सब का एक ही है । पुराणों और कुरान में उसी की स्तुति है । वह एक ही सब को स्वरूप देता है और वह एक ही सब को बनाता है ।

जैसे एक आग ते कनूका कोट आग उठे
निआरे निआरे हुइ कै फेरि आग मै मिलाहिगे ॥

जैसे आग से अनगिनत चिंगारियां उठ कर, अलग अलग हो कर फिर आग में ही समा जाएगी ।

जैसे एक धूर ते अनेक धूर पूरत है
धूर के कनूका फेर धूर ही समाहिगे ॥

जैसे मट्टी से मट्टी की धूल के अनेक कण बन कर धूल के कण धूल में ही मिलेंगे ।

जैसे एक नद ते तरंग कोट उपजत है
पान के तरंग सबै पान ही कहाहिगे ॥

जैसे एक बड़ी नदी से अगणित लहरें उठती हैं, परन्तु पानी की लहरें पानी ही कहलायेंगी ;

तैसे बिस्व रूप ते अभूत भूत प्रगट होइ
ताही ते उपज सबै ताहीं मैं समाहिगे ॥१७॥८७॥

उसी प्रकार विश्वरूप परमात्मा से पहले न उत्पन्न हुए प्राणी उत्पन्न हो कर फिर उसी में समा जायेंगे ।

केते कच्छ मच्छ केते उन कउ करत भच्छ
केते अच्छ वच्छ हुइ सपच्छ उड जाहिगे ॥

कितने ही कछुए, मछलियां और कितने उनको खाने वाले जीव हैं, कितने ही गरुड़ जैसे पक्षी परों सहित उड़ जायेंगे ।

केते नभ बीच अच्छ पच्छ कउ करैंगे भच्छ
केतक प्रतच्छ हुइ पचाइ खाइ जहिगे ॥

कितने ही शिकारी पक्षी आकाश में गरुड़ जैसे सुन्दर पक्षियों को खा जायेंगे और कितने ही पक्षी प्रत्यक्ष खाये जा कर पचा लिये जायेंगे ।

जल कहा थल कहा गगन के गउन कहा
काल के बनाए सबै काल ही चबाहिगे ॥

क्या समुद्र, क्या धरती, क्या आकाश और उसमें चलने वाले सूर्य, चन्द्र, तारे, आदि सब महाकाल परमात्मा के बनाए हुए काल द्वारा ही चबा लिये जायेंगे ।

तेज जिउ अतेज मै अतेज जैसे तेज लीन
ताही ते उपज सबै ताही मै समाहिगे ॥१८॥८८॥

प्रकाश जैसे अंधेरे में समा जाता है और अंधेरा जैसे प्रकाश

में लीन हो जाता है, वैसे ही सब उसी परमात्मा में से पैदा हो कर उसी में समा जायेंगे।

कूकत फिरत केते रोवत मरत केते
जल मैं डुबत केते आग में जरत हैं॥

कितने शोर मचाते फिरते हैं, कितने रो रो कर मरते हैं, कितने पानी में डूबते हैं और कितने ही आग में जलते हैं।

केते गंग बासी केते मदीना मका निवासी
केतक उदासी के भ्रमाए ई फिरत हैं॥

कितने गंगा के तट पर रहते हैं, कितने मक्का अथवा मदीने में निवास रखते हैं और कितने ही उदासी के कारण घूमते ही रहते हैं।

करवत सहत केते. भूमि में गडत केते
सूआ पै चढ़त केते दूख को भरत हैं॥

कितने आरे से काटे जाने की पीड़ा सहते हैं, कितने धरती में गाड़े जाते हैं, कितने सूली पर चढ़ते हैं और कितने अन्य कई प्रकार दुःख सहारते हैं।

गैन मैं उडत केते जल मैं रहत केते
गिआन के बिहीन जक जारे ही मरत हैं॥१६॥८६॥

कितने आकाश में उड़ते हैं, कई पानी में रहते हैं और कितने प्रज्वलित अग्नि में जल कर ही मरते हैं।

सोध हारे देवता बिरोध हारे दानो बडे
बोध हारे बोधक प्रबोध हारे जापसी॥

देवता-गण मन को शुद्ध करते, शत्रुता करते करते राक्षस, ज्ञा·

देते देते ज्ञानी और जप करने वाले तत्व ज्ञान प्राप्त करते करते थक गये।

घसहारे चंदन लगाइ हारे चोआचार
पूज हारे पाहन चढाइ हारे लापसी॥

कितने चंदन घिसते, कितने सुगंधित अगर के तेल को लगाते, कितने पत्थरों को पूजा करते और कितने ही देवताओं को पतला हलवा भेंट करते थक गये।

गाह हारे गोरन मनाइ हारे मड़ी मट्ट
लीप हारे भीतन लगाइ हारे छापसी॥

कितने कबरों की यात्रा करके, कितने समाधियों और मठों के समक्ष प्रार्थना करते करते, कितने मंदिरों की दीवारों अथवा किवाड़ों को लीपते-पोतते और कितने ही विष्णु, शिव, राम के चिन्ह शरीर पर लगा लगा कर थक गये।

गाइ हारे गंध्रब बजाइ हारे किनर सभ
पचहारे पंडत तपंत हारे तापसी॥२०॥९०॥

देवताओं के गवैये गाते गाते, किन्नर बाजे बजाते बजाते, पंडितों के मस्तिष्क सोचते सोचते और तपस्वी तप करते करते थक गये।

गुरु गोविन्द सिंघ जी के इन वचनों से जो परिणाम निकलता है और सहज ही जो दिल पर प्रभाव होता है, इस के विस्तार की कोई विशेष आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। यह तो सूर्य की भांति प्रकाशमान है और जो इस का प्रभाव सत्य पथ के यात्रियों और सत्य के अन्वेषकों के मन पर पड़ता है उस को वर्णन करके स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं, वह तो अपने आप ही फूट फूट पड़ता है और अपना प्रकाश देता है। एक

बात जो स्पष्ट हो गई, वह यह थी कि उन्होंने हिन्दुओं की धार्मिक दशा को समय पर बहुत उपयुक्त और अनुकूल मोड़ दिया जिस की अत्यन्त आवश्यकता थी। जहां तक धर्म प्रचार की बात थी, हिन्दुओं में राष्ट्रीय भावना का उत्पन्न होना कठिन था और एकता की माला में पिरोमे जाना और एक भाईचारे में जुड़ना दुष्कर था।

गुरु गोविन्द सिंह जी ने वचित्र नाटक में स्वयं लिखा है कि--

सारे पीर और पैगंबर एक दूसरे के पीछे पृथ्वी पर मनुष्य के पापों से मुक्ति दिलाने और गुनाहों से बचाने के लिये ही भेजे गये थे, परन्तु उन्होंने अपनी अपनो पूजा ही प्रचलित कर दी और परमात्मा को बिल्कुल भुला दिया। ब्राह्मणों ने शूद्रों वाले काम अपना लिये और क्षत्रिय भी अपने कर्त्तव्य त्याग बैठे। लोगों ने अनेकों पेशवा, मुर्शद, पीर, फकीर, संत, साधु और गुरु मान कर अनगिनित सम्प्रदाय बना लिये थे। गोरख नाथ, रामानुज, रामानन्द, शंकराचार्य, आदि ने तो अपने अपने धर्म ही स्थापित कर लिये थे। मुहम्मद साहब का आदेश था कि खुदा के नाम के साथ उनका नाम भो लिया जाये। हर एक ने अपना अपना अलग मजहब और पृथक पृथक रास्ता और पूजा की विधि धारण कर रखी थी और लोगों को गलत राह पर डाल दिया था। इस के ये भयानक परिणाम हुए कि लोगों में स्वार्थ, घृणा, विरोध, ईर्ष्या, अहंकार, निन्दा, बखीली, शरारत, अत्याचार, निर्दयता, धोखा, ठग्गी, बलात्कार जैसे अनेकों पाप फैल गये। सच्चाई की ओर से मुख मोड़ कर उन्होंने उन को पापों से जोड़ दिया। लोगों का नेतृत्व करने वालों और पथ-प्रदर्शकों ने अपने अपने कुपथ रास्ते बना लिये और

मानवता को कुपथ पर डाल कर अंधेरे में रखा। अज्ञानियों को उन्होंने सच्चा राह न दिखाया। हे गोविन्द, तुम्हें परमात्मा ने इसी लिये भेजा है कि तू केवल एक सच्चे आनन्द स्वरूप परमात्मा की भक्ति से मानवता को जोड़ने का उद्यम करे और सीधे रास्ते पर चलावे। जो भी मुझे परमेश्वर, देवता अथवा अवतार समझेंगे वे नर्क में पड़ेंगे। मैं परम पुरुष का दास हूं और केवल जगत का तमाशा देखने आया हूं। हिन्दू और मुस्लमान दोनों ही कुमार्ग पर चल रहे हैं। जोगी और कुरान तथा पुराणों के मानने वाले सब ठग्गी चला रहे हैं।

सब धर्म बिगड़ गये हैं। वैरागियों और संन्यासिओं ने भी लोगों को कुमार्ग पर डाला है। सब की पूजा विधियां कुपथ पर ले जाने वाली हैं। परमात्मा पुस्तक के पृष्ठों में नहीं, परमात्मा नम्रता और सच्चाई में है। मुझे ईश्वर की ज्योति हर ओर दिखाई देती है और मैं उस को प्रकाशमान करूंगा। मेरे प्रत्येक कर्म में उस की कृपा है और वह ही मेरा सहायक है। सर्वलोह मेरा सहायक है और केवल ईश्वर की दया से ही मुझे सब शक्ति प्राप्त हुई है।

स्पष्ट है कि गुरु गोविन्द सिंघ जी मानवता को सच्चाई, पवित्रता, प्रेम और न्याय का पाठ दृढ़ करवाने के लिये भेजे गये थे। वे एक सच्चा धर्म स्थापित करने और उसका प्रचार करने के लिये ही आये थे। उन्होंने डंके की चोट से घोषणा की कि हिन्दू और मुस्लमान दोनों असलियत और सच्चाई से भटके हुए और गलत रास्ते पर चल रहे हैं। हिन्दू एक ओंकार निरंकार को भुला कर भूल-भुलैयां में फंसे हुए हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा कि पुरान और कुरान सच्चे धर्म और मज़हब प्रकट नहीं कर रहे हैं। मूर्ति-पूजा और मृत-पूजा द्वारा कभी शांति नहीं मिल

सकेगी। गुरु गोविन्द सिंघ जी की सब से बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने कहीं भी ऐसा दावा नहीं किया कि वे ईश्वर का अवतार, पैगंबर या उसके सम्बन्धी हैं। प्रत्युत उन्होंने बड़े स्पष्ट तथा जोरदार शब्दों में घोषित किया कि यद्यपि वे संसार में नेकी और सच्चाई का संचार करने और इक-ओंकार निरंकार के साथ मानवता को जोड़ने के लिये भेजे गये थे। फिर भी वे साधारण मनुष्य से अधिक कुछ नहीं हैं। वे अन्य मनुष्यों की भांति ही एक मनुष्य हैं, प्रत्युत परमात्मा के दास और तुच्छ सेवक हैं। वे जगत तमाशा देखने के लिये आये हैं। जो मनुष्य परमेश्वर समझ कर उनकी पूजा करेगा, वह सदा ही नर्क की अग्नि में जलता रहेगा।

यदि आंखों पर कट्टरता की पट्टी न बंधी हो और हृदय पक्षपात से मुक्त हो तो गुरु गोविन्द सिंघ सारे मजहबों के पैगंबरों और सारे धर्मों के प्रवर्तकों के सरताज प्रतीत होते हैं। सब ने अपने स्वार्थों को अपने धर्मों में प्रविष्ट किया और अपनी ही आन-शान के लिये हदें और बंदशें तैयार कीं। अपने आप को खुदा का हबीब (प्यारा मित्र), बेटा, पैगम्बर और रसूल कहा और अपनी पदवी साधारण मनुष्यों से बहुत ऊंची रखी। परन्तु गुरु गोविन्द सिंघ जी ने अपना निजी सम्मान करवाने की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया, अपितु अपने आप को परमात्मा का सेवक ही कहा और अन्य मनुष्यों जैसा मनुष्य। इतनी नम्रता धारण करके सच्चाई और प्रेम का उपदेश दिया। नम्रता और निष्काम पथ-प्रदर्शन का इस से बढ़िया उदाहरण और कोई नहीं पेश किया जा सकता। इसीलिये उन का स्थान हर समय और हर मजहब के नेता और प्रवर्तक से बहुत ऊंचा है। यदि कहीं बेलाग, स्वार्थ रहित और कामना रहित भाव प्रकट हुआ तो वह

गुरु गोबिन्द सिंघ जी द्वारा ही हुआ। हमारा भाव किसी मजहवी पेशवा, नेता अथवा प्रवर्तक का निरादर करना व आलोचना करना नहीं है, हम सब का ही सम्मान करते हैं क्योंकि उन सब ने मानवता को सुधारने का प्रयत्न और परिश्रम किया। परन्तु हम सत्य बात कहने में भी संकोच नहीं कर सकते कि प्रत्येक समय के नेता ने अपने सम्मान को प्रमुख रखा और अपना स्थान अन्य मनुष्यों से ऊंचा नियत किया। कोई खुदा का अज़ीज़ (प्यारा), कोई रकीब कोई मशीर (मंत्री), कोई फकीर, कोई खलीफा (गद्दीदार), कोई पुत्र, कोई शरीक (मित्र) और कोई खुद खुदा बन बैठा। उन सब ने अपने आप को खुदा का सहायक सिद्ध किया और कहीं भी उसकी सर्वशक्तिमानता न प्रकट की। गुरु गोविन्द सिंघ जी ने कभी ऐसा दावा नहीं किया और परमात्मा के साथ कोई ऐसा सम्बन्ध नहीं जोड़ा और न ही खुद को खुदा कहा। उन्होंने स्वार्थ को परमात्मा के कार्यों में बिल्कुल सम्मिलित नहीं किया। उन्होंने यह भी घोषणा की कि वे अकाल पुरुष की ओर से काम करने आये हैं और वे एक मनुष्य से अधिक और कुछ नहीं। यह एक ऐसा श्रेष्ठ काम है, जो किसी भी धार्मिक नेता से न हो पाया। इस लिये गुरु गोविन्द सिंघ जी को युग के सारे पैगम्बरों से जिन का हम सम्मान करते हैं, अधिक सम्मानित कहने के लिये हमारे पास ठोस कारण हैं।

सच्चाई और पवित्रता के सिद्धान्तों को गुरु गोविन्द सिंघ जी ने अपने सिक्खों को इस प्रकार दृढ़ कराया जिस से केवल एक अकाल सच्चिदानंद स्वरूप की सच्चाई, श्रद्धा और पूर्ण विश्वास से भक्ति की जाये। सृजनहार को छोड़ कर उस की किसी रचना की पूजा करनी सृजनहार प्रभु का अपमान है। वह तो सारी सृष्टि का कर्त्ता है।

इस प्रकार की शिक्षा द्वारा गुरु गोविन्द सिंघ जी ने नेकी और पवित्रता का पाठ साधारणतः सारे संसार को और विशेषतः हिन्दुओं को पढ़ाया और एकता और देश-प्रेम जैसे सरल गुण उन के जीवन में प्रवेश कराए। इस विधि से उन्होंने हिन्दुओं को द्वैत-वादी और मूर्ति-पूजक कौमों की गिनती में से निकाल कर एक परमात्मा के पुजारी और विश्वासी बना दिया। वहमों और भ्रमों के जाल से मुक्त कर के एक ईश्वर के साथ जोड़ दिया और इस प्रकार एकता और अभिन्नता का प्रेम उन के रक्त में प्रवाहित कर दिया। त्याग और संसार-मिथ्या कहने कहाने की हत्यारी रुचियों से मुक्त करके निवृत्ति से प्रवृत्ति की ओर उन्हें रुचित किया। जो लोग च्यूँटी को मारने से भी पापी बन जाते थे, उन्हें उपदेश दिया कि धर्म की रक्षा के लिये की गई हिंसा पाप नहीं, अपितु बड़ा पुन्य है। जो रुचि हिन्दुओं को निर्बलता, निराशा और बरबादी की ओर बढ़ा रही थी, उन के अस्तित्व का ही अंत करने वाली थी, उस को बढ़ने से रोक दिया और उनको लड़ाकी, मेहनती और बीर-बहादुर कौम बना दिया। जो धर्म के त्याग के लिये बहाने ढूंढ रहे थे, उन में ऐसी रूह फूंक दी कि धर्म की वेदी पर सिर बलिदान करना, धर्म के लिये जान दे देना उन के लिये एक खेल बन गई। उन्होंने ऐसे धर्मात्मा योद्धे बना दिये जिन की वीरता और बहादरी की प्राप्तियां संसार को आज तक आश्चर्य में डाल रही हैं; जिन की करनी, कुर्बानी, वीरता और त्याग की कीर्ति सारे संसार के कानों में गूंज रही है। यह सब कुछ उस बीज का फल था जो गुरु गोविन्द सिंघ जी ने राष्ट्रीय प्रेम, एक ईश्वर की भक्ति और पूजा के रूप मे सिक्खों के दिलों में बोया था। जब तक मनुष्य का धर्म परस्पर प्रेम की शिक्षा न दे, एक उद्देश्य के लिये इकट्ठा

न करें, एक जैसी हृदयों की धड़कन न पैदा करे, तब तक कोई सम्प्रदाय तथा कौम उन्नति नहीं कर सकती। सर्वशक्तिमान ईश्वर का आश्रय छोड़ कर जो निर्बल और साहसहीन हो गये थे, उन को एकोंकार के भक्त बना कर और एक आदर्श के साथ बांध कर एक बलवान कौम बना दिया।

गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने अपने धर्म-उपदेशों को प्रचारित करने के लिये मातृ-भाषा का प्रयोग किया। उनके वचनों से पता लगता है कि वह अपने उपदेश को देश की प्रचलित भाषा में न देने को न केवल अनुचित समझते थे, अपितु बहुत हानिकारक और खतरनाक समझते थे। उन्होंने यह अच्छी तरह जान लिया था कि हिन्दुओं के पतन का कारण हर तरह ब्राह्मणी विद्या ही थी। ब्राह्मण ने ब्रह्म विद्या संस्कृत पर अपना पक्का कबज़ा कर के केवल अपने हाथों में ही सीमित कर छोड़ा था और राष्ट्र को अशिक्षित और उज्जड बना कर छोड़ दिया था। वे उन के अज्ञान का लाभ उठा कर अपना उल्लू सीधा करने के लिये अपनी आवश्यकताओं और अपने पक्ष को पूरने के लिये ही शिक्षा और आदेश देते थे।

यदि गुरु गोबिन्द सिंघ जी भी अपने प्रचार का माध्यम संस्कृत भाषा को ही बनाते तो वे बिल्कुल सफल न होते। यह खतरा उन के सामने और उन के ज्ञान में था जो संस्कृत अथवा अन्य किसी ऐसी भाषा के प्रचार के लिये प्रयोग से होना था, जब कि संस्कृत-भाषा ब्राह्मणों के अधिकार में थी। इस प्रकार तो सब कुछ ब्राह्मणों के अधिकार में चला जाता। वे उसकी मनमानी व्याख्या करते। चाहते तो जन्म से पूर्व ही उस का गला दबा देते। जिन लोगों में गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने काम करना था वे संस्कृत में उपदेश से क्या लाभ प्राप्त कर सकते

थे ? यही कारण है कि गुरु गोविन्द सिंघ जी ने संस्कृत की शिक्षा की ओर अधिक ध्यान न दिया और अपने विचारों और विचार-धारा को प्रकट करने के लिये अपने पहले गुरु जी की भांति मातृ-भाषा को ही स्वीकार किया और उसी का प्रयोग किया।

इस से सिद्ध होता है कि गुरु गोविन्द सिंघ जी एक कुशल वैद्य थे और समय की नाड़ी को अच्छी तरह पहचानते थे। जहां उन्होंने हिन्दुओं के इस रोग को पहचाना, वहां उस की पर्याप्त मात्रा में चिकित्सा कर के उन्हें आरोग कर दिखाया।

धर्म के क्षेत्र में वैदिक शिक्षा के प्रकाश के चारों ओर पौराणिक धर्मों की वदलियां छा रही थीं। उन को गुरु गोविन्द सिंघ जी ने काफूर कर दिया और उन्होंने अपने प्रचार के लिये गुरु नानक देव जी की भांति अपने देश की भाषा का प्रयोग किया। उन्होंने धार्मिक समस्याओं और उलझनों का ऐसा समाधान किया और उन्हें ऐसा रूप दिया जो वेदों की शिक्षा के विरुद्ध नहीं था। उन्होंने जनता की रुचि को अन्य दिशाओं से हटा कर सीधे एक अकाल पुरुष में लगा दिया। यहां ही वस नहीं, उन्होंने और भी वहुत कुछ किया, जिस का हम आगे वर्णन करेंगे।

गुरु जी ने सामाजिक अवस्था में क्या परिवर्तन किये ?

गुरु गोविन्द सिंघ जी के सामने जितनी भी कठिनाईयां थीं उन में से पहली कठिनाई धार्मिक सुधार अथवा धर्म की शुद्धि थी। उस को उन्होंने इस तरह पकड़ में लिया कि उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। दूसरी थी सामाजिक अथवा भाई-चारक सम्बन्धी सुधार। उस दिशा में भी उन्होंने पूर्ण निर्भयता, साहस, हिम्मत और हौसले से कदम उठाये और हाथ वढ़ाये।

सामाजिक पक्ष से जो कार्य गुरु गोविन्द सिंघ जी ने किया उस में वे सब को पछाड़ गये। इस कार्य में उनकी कोई भी बराबरी नहीं कर सकता। औरों को वह सुधार न तो सूझा तथा न ही उनकी कल्पना में आया। गुरु गोविन्द सिंघ जी ऐसे वैद्य नहीं थे कि वे हिन्दुओं के रोग की अलामतें न पहचान सकें। उन्होंने रोग पहचाना और उसका इलाज सोचा, जो पूरा प्रभावोत्पादक सिद्ध हुआ।

जब गुरु गोविन्द सिंघ जी ने चकित्सा आरम्भ की, तब हिन्दू-जाति में वर्ण-भेद का रोग गहरी जड़ें पकड़ चुका था। किसी समूह, बरादरी वा कौम की समूची सामाजिक अवस्था पर उस की धार्मिक विचारधारा तथा स्थिति का अत्यन्त गहरा प्रभाव होता है। इस प्राकृतिक नियम से हिन्दू मुक्त नहीं थे। धार्मिक अदला-बदलियों के साथ साथ ही रीति-रिवाज भी बदलते रहते हैं। हिन्दुओं के रीति-रिवाज भी उन की भिन्न-भिन्न विचारधाराओं से अवश्य प्रभावित हुए। यह बात बहुत साफ और स्पष्ट है कि जैसे जैसे ब्राह्मणी-धर्म में वर्ण-भेद और छूत-छात बढ़ते गये, नये नये देवता और अवतार जन्म लेते गये और उन का आविष्कार होता गया और धर्म के भेद बढ़ते गये, तैसे ही उन की रीतियों, रुचियों और प्रवृत्तियों पर भी प्रभाव पड़ता गया। पहले चार वर्ण ही थे। धार्मिक फूट और बढ़ने से जातों की संख्या बढ़ती गयी। इस में संदेह नहीं कि जातों के भेद बढ़ने से उन लोगों का व्यक्तिगत लाभ जुड़ा हुआ था, जो जोंकों की तरह अन्य लोगों की कमाई और खून पर पलते थे। उन का हित इस बात में था कि उन की आवश्यकतायें और खर्च बढ़ने के साथ जातों के भेद भी बढ़े जिस से उन के लाभ में किसी प्रकार की क्षति न हो। धार्मिक भेद से फिरकाप्रस्ती बनी और उससे जातों का भेद बढ़ना

आरम्भ हुआ।

जातों के भेद से आगे उन के और भेदों का यह चक्कर ऐसा चला कि शताब्दियों तक इस में बढ़ौती ही होती गई और जातों की संख्या हज़ारों तक पहुंच गई। एक जात का दूसरी जात से कोई प्रेम-भाव अथवा सम्बन्ध नहीं था। ब्राह्मणों का क्षत्रियों से कोई वास्ता न था। शूद्रों का क्षत्रियों के साथ कोई मेल-मिलाप नहीं था। ब्राह्मणों और क्षत्रियों के अपने ही अनेक फिरके थे, जो न परस्पर खाने-पीने का सम्बन्ध रखते थे और न ही शादी-विवाह कर सकते थे। आगे चल कर एक दूसरे के साथ इतनी घृणा बढ़ती गई कि एक दूसरे के हाथ का पकाया भोजन भी नहीं खा सकते थे। ये खाने-पीने की बंदशें इतनी कठोर हो गयीं कि केवल एक के दूसरे के हाथ से बने भोजन खाने से ही एक व्यक्ति का धर्म से बहिष्कार कर दिया जाता, वह धर्म-भ्रष्ट हो जाता और बरादरी से निकाल दिया जाता। यहां तक कि धर्म का मापदंड खाना-पीना ही रह गया। केवल यही बात नहीं, एक दूसरे के मुकाबले में खाने-पीने की वस्तुओं में भी विरोध था।

इस के अतिरिक्त भी परस्पर विरोध था। इन अलगाओं के कारण एक दूसरे से घृणा, नये दिन यही झगड़े और बखेड़े, झंझट और तकरार जो खत्म ही नहीं होते थे। फिर प्रेम-प्यार हो तो कैसे हो? एकता हो तो कैसे हो? उनकी नींव को ही ऐसी दीमक लग गई थी कि किसी समय भी गिरने का भय लगा रहता था।

इस्लाम के विरोध के लिये हिन्दुओं ने छूत-छात और खाने-पीने की बंदिश और भेद का बहुत बुरी तरह से प्रयोग किया।

उनका छूआ भ्रष्ट भोजन खाना तो छोड़िये, एक फर्श पर बैठ कर खाना भी विवर्जित था।

यह छूआ-छूत की बीमारी हिन्दुओं में हद दर्जे के वहम तक पहुंच चुकी थी, जिस कारण हिन्दुओं में एकता और भाईचारा दृढ़ न रह सके और राष्ट्रीयता के रास्ते में यह बड़ी रुकावट थी। इस लिये गुरु गोविन्द सिंघ जी इसको मिटाना चाहते थे और यही कारण था कि वे शूद्रों को बाकी तीन जातियों के समान करना चाहते थे। छूआ-छूत का रोग जो हिन्दू जाति को लग चुका था उस से छुटकारा वे आवश्यक समझते थे। इस ओर उनकी यही कोशिश थी कि हिन्दू जाति के घेरे को जहां तक हो सके बड़ा करें। एक तो सदा से पिछड़ी और कुचली हुई शूद्र जाति उन्नत हो कर राष्ट्र का स्वस्थ अंग बन सके, दूसरे यदि कोई हिन्दू अन्य धर्म धारण करना चाहे अथवा दूसरे धर्म का शिष्य बनना चाहे तो आसानी से उस को अपनाया जा सके। इसी लिये हिन्दुओं में वर्ण-भेद को समाप्त करने की आवश्यकता थी जिस से शूद्रों को भी राष्ट्रधारा में फिर सम्मिलित करने में आसानी हो सकती थी। उन्होंने इस ओर पूरा ध्यान दिया।

जितने हिन्दू बिखरे हुए, विभाजित और छोटे छोटे समूहों और सम्प्रदायों में संकुचित थे, उन को एक दूसरे से कोई प्रेम अथवा सहानुभूति नहीं थी। इन कारणों से वे निर्बल थे और अत्याचारियों और आंतकताईयों से टक्कर लेने में असमर्थ थे। इसी कारण उनकी इस निर्बलता का मुस्लमानों ने ऐसा लाभ उठाया कि एक एक को हड़प कर गये और उनके राज्य नष्ट कर दिये और इस प्रकार ये सब के सब एक दूसरे का मुंह देखते रह गये। इस आपबीती से भी हिन्दुओं ने कोई शिक्षा न प्राप्त की और वर्ण-भेद की कैद, छूआ-छूत की घृणा, रीतियों की

कठोरता और भी तेज़ करते गये। परस्पर सहानुभूति और सहायता से मुंह मोड़ कर सदा के लिये अपने अस्तित्व से वंचित होने की ओर शीघ्रता से अग्रसर हो रहे थे। उन के अस्तित्व की समाप्ति के सारे ही साधन बुरी तरह मौजूद थे।

जातियों के भेद की एक बड़ी हानि यह पैदा हो रही थी कि छोटी जातियों को बड़ी जातियों में दाखिल नहीं किया जाता था, इसलिये छोटी जाति वालों से बड़ी जाति वालों को काम लेना असम्भव हो गया था। जन्म से ही जाति-भेद मान लेना कौमी उन्नति की राह में निश्चय ही रुकावट बन गया था। सम्भव है कि भारत में जाति-भेद ने भाषाओं के भेद को जन्म दिया हो। गुरु गोविन्द सिंघ जी की दूर-दर्शी और शुभ कामना-प्रवीण आंखों ने अच्छी तरह अनुभव कर लिया था कि नीची जातों को उठने का मौका दे कर उन से काम लिया जाये और उन के उच्च-जाति में प्रवेश करने के अधिकार को फिर से जीवित किया जाये। ब्राह्मणी राज्य के समय और क्षत्रिय शासन काल में शूद्रों की दशा पशुओं और जानवरों से भी बुरी थी, यद्यपि एक ही राष्ट्र का अंग होते हुए वे भी देश के प्रामाणिक नागरिक थे। निःसन्देह शूद्रों की दशा इस्लाम के गुलामों, अरब और अन्य असभ्य तथा अत्याचारी लोगों की गुलामों के व्यापार द्वारा जरखरीद गुलामों से भी बुरी और ध्वस्त थी।

मनु के नियमों के बनाने के समय से ही इस बात को कानून का रूप दे दिया गया था कि शूद्र तो पैदा ही सेवा के लिये हुए थे। उस विधान के अनुसार बाकी की तीन जातियां शूद्रों से सेवा तो करवा सकती थीं, परन्तु उन के हाथ का पका हुआ भोजन नहीं खा सकती थीं। वह बंदिश उस समय इतनी कठोर नहीं थी कि इस का उल्लंघन करने से कोई अधिक शोर-शराबा

होता अथवा विघ्न पड़ता। परन्तु ब्राह्मण काल में जब एक जात के व्यक्तियों ने भी किसी दूसरे के हाथ से खाना अनुचित समझना शुरू कर दिया तो फिर शूद्रों के हाथ से खाने की छूट उन्हें कैसे मिल सकती थी। तब तो ब्राह्मण ब्राह्मण के हाथ से बना और क्षत्रिय, क्षत्रिय के घर का पका हुआ भी नहीं खा सकता था। एक जाति, दूसरी जाति का पकाया हुआ तो निश्चय ही नहीं खा सकती थी। फिर शूद्रों के हाथों से बनाया गया भोजन खाना कैसे सहन किया जा सकता था, जब कि मनु के विधान अथवा मनु-स्मृति में शूद्रों से इतनी घृणा प्रकट की गई हो और उन को बहुत नीच और कमीना बताया गया हो? उदाहरण देखिये :—

विपत्ति के समय प्रत्येक फिरका अपने से नीचे फिरके का काम कर ले, परन्तु किसी भी दशा में अपने से ऊंचे फिरके के काम में हाथ न डाले। १०/९९-१०० मनु।

शूद्र को वेद-शास्त्र और अन्य धार्मिक पुस्तकें पढ़ने की आज्ञा नहीं। ४/१२५ मनु।

शूद्र अपने स्वामी के बचे हुए अन्न पर पले और उसके उतारे हुए वस्त्र पहने। १०/१२५ मनु।

शूद्र को धन इकट्ठा करने का अधिकार नहीं। १०/१२९ मनु।

यदि शूद्र किसी उच्च जाति वाले को गाली दे तो उस की जिह्वा काट दी जाय। ८/२७० मनु।

यदि कोई शूद्र ब्राह्मण के पास एक ही फर्श पर बैठ जाये तो उसके चूतड़ों का मांस काट दिया जाये। ८/२८ मनु।

यदि कभी शूद्र ब्राह्मण को धर्म-ज्ञान की बातें सुनाए तो उस के मुख और कानों में उबलता तेल अथवा सीसा ढाल कर डाल दो। ८/२७२ मनु।

शूद्र की हत्या का दंड धर्म की धारा अनुसार, वही है जो

बिल्ली, कुत्ते, छिपकली, मेंढक अथवा अन्य ऐसे जीवों की हत्या का।

शूद्र का अपमान और दुर्गति वर्णन करने के लिये उपर्युक्त उदाहरण पर्याप्त हैं और इन को बढ़ाने और विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं। शूद्र हिन्दू राज्य के ब्राह्मणीय तेज-प्रताप काल में सिर ऊंचा नहीं उठा सकते थे और उनकी दशा पशुओं और कुत्तों से भी बुरी थी।

जब गुरु गोविन्द सिंघ जी ने अपना कार्य आरम्भ किया तो उस समय हिन्दुओं में शूद्रों की उसी प्रकार बेकदरी थी। न वे उच्च जाति में जा सकते थे और न ही उच्च-जाति वाला काम कर सकते थे। क्षत्रियों वाला काम उन से नहीं लिया जा सकता था। यदि कोई शूद्र किसी कारण अपने व्यक्तिगत सामर्थ्य से कोई राजनीतिक शक्ति प्राप्त कर ले, संसार में कोई ऊंची पदवी प्राप्त कर के धन-दौलत हासिल कर ले तो उस को जात और कुल का स्तर ऊंचा बिल्कुल नहीं गिना जा सकता था। कोई पदवी, धन, शासन, राज-भाग, बाहु-बल उस के शूद्रत्व को दूर नहीं कर सकता था, वह शूद्र का शूद्र ही रहता था। सब से दुःखद बात यह थी कि धर्म के नाम पर और देव-वाणी और धार्मिक मंत्रों की शक्ति से मनुष्य ही मनुष्यों को समाज में उन्नति करने से रोक रहे थे। इस लिये हिन्दू समाज में इस समय अत्यन्त आवश्यकता थी कि कोई ऐसा रास्ता निकाला जाये कि जात और कुल के दुर्ग को चकना-चूर कर के प्राणी-मात्र को समानता और बराबरी का दर्जा प्राप्त हो सके जिस से जातों की सीमायें टूट जायें और तथाकथित नीची जाति वालों को भी मानवीय समाज में वह अधिकार मिल सके जो जन्म के समय प्राणी-मात्र को परमात्मा ने प्रदान किये हैं और जिन को

जन्म सिद्ध अधिकार कहा जाता है।

कोई राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता, कोई धर्म उन्नत नहीं हो सकता, यदि उसके पांव जकड़े हुये हों और अनावश्यक बेड़ियां पड़ी हुई हों। स्वतन्त्रता जीवन की असलियत है और इसके बिना न कोई राष्ट्र, न कोई देश और न ही कोई मनुष्य उन्नति कर सकता है और न ही उसको प्राप्तियां शिखरों को छू सकती हैं। वैदिक धर्म ने जो स्वतन्त्रता समूची मानवता को दी थी, उस की व्याख्या और दृढ़ कराने के लिये नियम बनाने के लिये स्मृतियां पुराण और अन्य ऐसी असंख्य रचनायें रच कर उस स्वतन्त्रता की आत्मा को ऐसा कसा और उसे ऐसे सीमित कर दिया गया कि शक्ल-सूरत से तो मनुष्य स्वतन्त्र दिखाई देते थे परन्तु यथार्थ में वे कैदियों से भी बुरे थे। यही बात थी कि हिन्दुओं की कोई अपेक्षाकृत विशेषता और आचरण नहीं था। यदि कोई आचरण था तो समाप्त हो चुका था। सारा राष्ट्र ही बौद्धिक तौर पर पूर्णतः गुलाम हो चुका था। यदि मस्तिष्क ही कैद हो तो हृदय कैसे आजाद हो सकता है?

इस लिये गुरु गोविन्द सिंघ जी ने संकल्प किया कि हिन्दुओं को वर्ण-भेद की कैद से स्वतन्त्र कर के उनकी एक ऐसी कौम बनाई जाये जिसमें हिन्दुओं के वे अवगुण बिल्कुल न हों जिन द्वारा उस समय वे ग्रसे हुये थे। गुरु जी यह भी चाहते थे कि तथाकथित नीची जातियों को भी उनके साथ समानता और बराबरी देकर खड़ा कर दिया जाये और ऊंच-नीच का सारा झगड़ा सदा के लिये समाप्त कर दिया जाये। गुरु गोविन्द सिंघ जी के इस संकल्प की पूर्ति के रास्ते में बहुत ही बड़ी कठिनाईयां और रुकावटें थीं। हिन्दुओं की यह दशा थी कि इतनी बेइज्जती, अपमान और पतन का शिकार होते हुये भी यदि उनके भोजन,

पहरावे, उठने-बैठने, पूजा-पाठ अथवा किसी काम में कोई थोड़ा सा अन्तर दर्शाया अथवा उसका सुझाव ही दिया जाता तो वे शोर मचा देते। पुरानी रीति को तोड़ने वाले को जाति से निकाल दिया जाता और उसे अपनी कुल और परिवार से टूट जाने का भय बना रहता था। गुरु जी ने निर्णय लिया कि प्रत्येक प्रकार की कठिनाईयों का सामना करके भी उनको बौद्धिक तथा शारीरिक गुलामी का जूआ उनके गले से उतार कर उनको राष्ट्रीयता के शिखिर पर पहुंचाया जाये। सब से बड़ी कठिनाई उन के सामने हिन्दुओं की राजनीतिक स्थिति की थी।

गुरु गोबिन्द सिंघ जी के समय हिन्दुओं की राजनीतिक अवस्था–

महाभारत काल में हिन्दुओं की राजनीतिक शक्ति न केवल समूचे भारतवर्ष में ही अनुभव होती थी अपितु इस का प्रभाव भारत की सीमाओं के बाहर भी प्रत्यक्ष था। उनकी जीतें और प्राप्तियां हिन्दुस्तान के बाहर बहुत बड़ी थीं। महाभारत के युद्ध के पश्चात भारत अधोगति की ओर चला और धीरे-धीरे छोटे छोटे राज्यों में बंट गया। हज़ारों छोटे छोटे राजा इस भारत-भूमि पर राज्य करते थे और उनमें एकता के स्थान पर परस्पर विरोध और शत्रुता थी। एक के पतन से दूसरा प्रसन्न था। महाभारत में जो कुछ हुआ, वह भी इस बात को दृढ़ कराता है। उस समय भी भारतवर्ष पर किसी एक राजा का राज्य नहीं था, केवल छोटी छोटी राजधानियां थीं। बड़ी शक्ति कौरवों और पांडवों की ही थीं और हिन्दुस्तान के बाकी सब राज्य इनकी बड़ी शक्ति को मानते थे।

महाभारत काल के पीछे सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी कुलों के

शासन की शृंखला बहुत देर न चल सकी। बुद्ध धर्म के राजाओं ने पुराने राज्य घरानों का नाम-निशान ही मिटा दिया केवल उनकी स्मृति ही बाकी रही। बुद्ध मत के शासकों को अग्निकुल क्षत्रियों ने हिन्दुस्तान से बाहर निकाल दिया। उनकी सन्तान जो भिन्न जातियों के राजपूत कहलाते थे, परस्पर विरोध और एक दूसरे का अन्त करने में लगी हुई थी। उनकी कोई स्थिर शक्ति अथवा शासन कभी भी अस्तित्व प्राप्त न कर सका जो सारे भारत पर कोई प्रभाव डाल सकता। केवल छोटे छोटे राजे थे और उनके आपसी निजी ऊंचे नीचे भाव और कई प्रकार के झगड़े इतने सरगर्म थे कि उनमें राष्ट्रीय भावना की तरंगें स्वप्न मात्र भी नहीं थीं, यद्यपि सारे भारत में राजपूतों के कितने हो रजवाड़े थे, परन्तु वे छोटे छोटे टुकड़ों में विभक्त थे। आये दिन उनकी आपसी लड़ाई विरोध और शत्रुता समाप्त होने में नहीं आती थी। इतिहास के पृष्ठ उलट कर देखिये, हज़ारों लड़ाईयां हुईं। कोई मास भी ऐसा नहीं मिलेगा, जब कोई न कोई लड़ाई किसी न किसी राजपूत टोले में जारी न हो। आपस में लड़ लड़ कर वे अपनी शक्ति और सत्कार सब खो चुके थे।

राजा विक्रमादित्य और राजा भोज जैसे प्रसिद्ध नाम भारत के इतिहास से सम्बंधित हैं। उन के पीछे सब कुछ लोप हो गया। राजपूत और क्षत्रियों की वीरता और कीर्ति की कहानियां संसार के अन्त तक भूल नहीं सकतीं और सदा प्रकाश-मान रहेंगी। राजपूतों ने अपने रक्त से जो भी अमिट छाप हिन्दुस्तान पर लगाई, उसका मिटाना समय के चक्र की शक्ति से बाहर है। वे निशान समय के चेहरे पर ऐसे गहरे हैं कि जब तक समय का प्रवाह चलता रहेगा वे सदा उभर कर ऊपर आते रहेंगे। आपस की फूट, भेद, व्यक्तिगत विरोध और धार्मिक

भिन्नताओं ने भारत के हिन्दुओं को कभी भी एक राष्ट्र वनने नहीं दिया और वे वीते पांच सहस्र वर्षों से कभी भी एक राष्ट्र की भावना से सत्कार और सम्मान के योग्य नहीं हो सके। बेशक 'हिन्दू' शब्द अथवा 'भारत-वासी' शब्द में सब सम्प्रदाय और जातियां सम्मिलित हों, परन्तु 'राष्ट्र' शब्द में जो भावना है वह उनमें प्रकट न हो सकी। एक वैदिक धर्म के धारण करने वाले होने के कारण भी उन्हें 'राष्ट्र' नहीं कहा जा सकता क्योंकि वैदिक धर्म रखते हुये भी वे अनेकों सम्प्रदायों में बंटे हुये थे और जातों तथा वर्ण-भेद में फंसे हुए थे। सब से वड़ा दुःख यह था कि उनमें राजनीतिक विरोध और ईर्ष्या वहुत ही तीव्र हो चुकी थी। वाकी की विरोध भावनाओं के कारण एक दूसरे को पछाड़ कर आगे निकलने की इच्छा सब सीमाएं लांघ चुकी थी।

योरुप के इतिहासकारों का विचार है कि इन भेदों और छोटी-छोटी रियासतों और रजवाड़ों के कारण इस्लाम के मुकावले हिन्दुओं को इसका पर्याप्त लाभ हुआ, जैसे भिन्न-भिन्न धार्मिक सम्प्रदाय होने के कारण इस्लाम भारत में झटपट एक वार ही न फैल सका। मुस्लमान हिन्दुस्तान को एक दो लड़ाईयों में नहीं जीत सके, पग पग पर राजपूतों ने कड़ी टक्कर ली और भयानक रक्त रंजित युद्धों के पश्चात् चप्पा चप्पा भूमि छोड़ी, यद्यपि अन्त में छोड़नी ही पड़ी और फिर न छोड़ते तो कैसे जब कि इस्लाम जैसी वड़ी शक्ति की तुलना में सारे भारतवर्ष में कोई एक वड़ा शक्तिशाली राज्य ही स्थापित नहीं था। इस परस्पर फूट और विरोधों के कारण एक दूसरे की सहायता से लाभ उठाना सम्भव नहीं था। इसलिये शक्तिशाली मुस्लमान कौम ने उन्हें अच्छी तरह रौंदा। कोई शीघ्र और कोई देर से रौंदे गये। परन्तु उन्होंने छोड़ा किसी को नहीं और

सारे ही हिन्दुस्तान को अपने कब्जे में करज़े लिया।

यदि हिन्दुओं की भी एक शक्तिशाली केंद्रीय राज्य सत्ता होती अथवा ये छोटे छोटे रजवाड़े ही एक राष्ट्रीय लक्ष्य बनाकर लड़ते और फिर जिस प्रकार राजपूत साहसी तथा प्राण न्योछावर करने वाले थे, तो सम्भव था कि इस्लाम के कदम भारत में न जम पाते। हिन्दुस्तान में मुस्लमान इसलिये जम गये कि उन्होंने एक एक को अलग कर के मारा। जब एक पर आक्रमण होता था और मार पड़ती थी तो दूसरे तमाशा देखते और प्रसन्न होते थे। जितना लाभ मुस्लमानों को हिन्दुओं को इस आपसी फूट से हुआ उतना कदाचित उनकी अपनी वीरता और बल से न होता।

पृथ्वी राज अपने मौसेरे भाई जय चन्द की ईर्ष्या और घृणा की अग्नि में जल रहा था। टाड साहब के कथनानुसार वह हिन्दुओं की बरबादी और रक्तपात का उत्तरदायी था। उसकी कुटिल नीति के कारण ही हिन्दुस्तान में मुस्लमानों के पांव ऐसे जमें कि आठ सौ साल तक लगातार वे किसी भी हस्तक्षेप के बिना भारत के बादशाह बने रहे और हिन्दुओं के सब राज्यों के चिन्ह मिटा दिये। राजपूतों को गुलाम और आधीन बनाकर उनकी बेटियों से नकाह पढ़ाये और डोलियां लाए। इतने लम्बे समय में जो जो अत्याचार मुस्लमानों ने हिन्दुओं की निर्बलता और फूट के कारण किये, आज उनको पुस्तक के रूप में लिखना और अनुमान करना भी असम्भव है। हिन्दुओं को तो ऐसे कारनां में लिखने का शौक और साहस ही न रहा। मुस्लमानों के अत्याचारों ने होश ही न आने दी और न साहस रहने दिया कि वे ऐसी घटनाओं को इकट्ठा करके लिखने की हिम्मत कर सकते। वे बातें मुस्लमान लेखकों ने ही लिखो

है जो हमें नमूने मात्र मिलती हैं और वे भी अपनी ताकत दिखाने और काफिरों की बेइज्जती करने के लिये लिखी हैं, नहीं तो उनका मिलना भी बहुत कठिन होता। उनका वर्णन हम आरम्भ में ही कर चुके हैं।

इतनी कठिनाईयां अत्याचार और दुःख सहने पर भी अपना अस्तित्व मिटता देख कर हिन्दुओं को एकता के लाभ का विचार तक न आया और न ही उन्होंने इसके लिये कोई यत्न किया। उनको एक दूसरे का कोई ख्याल न था। पंजाब के हिन्दुओं का बंगाल के हिन्दुओं से कोई मिलाप-सम्बन्ध नहीं था। प्रत्येक व्यक्ति जिस रंग में था, मस्त था। कोई किसी की सहायता के लिये तैयार न था। मार खाते, लूटे-लताड़े जाते अपमानित होते सारे दुःख सहते, परन्तु परस्पर सहायता और एकता के लिये कभी उन के दिल में भावना न उत्पन्न हुई क्योंकि सब का सब कुछ अलग और भिन्न भिन्न था। न दुःख सांझा था और न सुख।

तलवार और शस्त्रों से लड़ने वाले हिन्दुओं के अंग, धीरे धीरे कुछ तो मुस्लमान बन कर सदा के लिये उन से कट चुके थे, उनका साथ छोड़ गये थे और हिन्दू संसार से अपना अस्तित्व मिटा चुके थे और कुछ अपने कर्तव्य त्याग कर ऐसे गये-गुजरे और नाकारा हो गये थे कि उन में इस्लाम से टक्कर लेने का बिल्कुल साहस न रहा था। पुराने क्षत्रियों, राजपूतों की वीरताओं और धर्म का प्राचीन जोश और बल केवल ज़बानी जमा-खर्च तक ही रह गया था। अत्यन्त आवश्यक था कि हिन्दुओं को किसी एक उद्देश्य पर इकट्ठा किया जाये और उनमें राष्ट्रीय भावना उद्दीप्त की जाये। उनकी समाजिक स्थिति को ऊंचा किया जाये, उन में देश प्रेम, राष्ट्रीय गर्व और उत्साह

ऐसा भरा जाये कि उस पर ब्राह्मणीय धर्म और विचारधारा की फिर छाया न पड़ सके। जैसे पहले भी हम वर्णन कर चुके हैं यह बात पिछले चार हज़ार वर्षों से किसी को नहीं सूझी थी। छः सात सौ वर्षों तक मुसलमान हिन्दुस्तान पर पूर्ण अधिकार जमाये बैठे रहे। उन की शक्ति को नष्ट करने का विचार किसी को पैदा न हुआ।

यह इतना आवश्यक और जोखिम का काम केवल गुरु गोविन्द सिंह जी के हिस्से आया और ईश्वद की ओर से ही गुरु गोविन्द सिंह जी हिन्दुओं जैसी बेचारी निर्बल, बिखरी और गिरी हुई कौम के लिए कौमी साहस, बल, देश-प्रेम का सन्देश ले कर आये। कितने दुःख की बात है कि उनका प्रेम-सन्देश सुनने के योग्य कोई भी न था। हिन्दू धर्म और भावना की पोशाक इतनी पुरानी और गल-सड़ चुकी थी कि उसको थिगलियां लगा कर या सी कर बचाना असम्भव था। इसलिये उन्होंने हिन्दुओं की वर्तमान दशा के अनुसार नये पहरावे का निर्णय लिया जो शत प्रतिशत ठीक बैठा। गुरु गोविन्द सिंघ जी ने बुझ चुकी देशभक्ति की ज्योति को नये सिरे से प्रज्वलित किया जो प्रचण्ड अग्नि का रूप धारण कर गयी। इस देश-भक्ति की अग्नि को उन्होंने दो पक्षों में प्रचण्ड किया। पहला पक्ष था धर्म-शक्ति। उन्होंने हिन्दुओं को बहु-प्रकार पूजा से हटा कर एक अकाल की पूजा में लगाया और एकता का केन्द्र स्थापित कर दिया। दूसरा पक्ष था सामाजिक स्तर, और उन्होंने वर्ण-भेद और जातों की भिन्नता को मिटा कर शूद्रों का उत्थान कर के एक-राष्ट्रीयता की पैवंद लगा दी। हिन्दुओं में एक अकाल की पूजा तथा राष्ट्रीय भावना को, जो लोप हो चुकी थी, फिर से जीवित कर दिया।

पाठक जनो! गुरु गोविन्द सिंघ जी के इस कारनामे का अनुमान लगाने के लिये ज़रा उन विवशताओं और कठिनाईयों पर दोबारा दृष्टि दौड़ाने की आवश्यकता प्रतीत होती है। गुरु गोविन्द सिंघ जी इस कार्य की पूर्ति के लिये अकेले छाती तान कर डट गये और अपने ही भाईयों के हाथों कई प्रकार के कष्ट सहारे। आश्रय हीन, साधन हीन, सेना रहित और बिना किसी देश की सहायता के गुरु जी ने उन हिन्दुओं की काया पलट दी, जिन्होंने सात सौ साल तक इस्लाम की गुलामीं के नीचे असंख्य दुःख और अपमान सहारे थे। वे इतने लम्बे समय में अपने सारे वीरता-करतब इस हृद तक भूल चुके थे कि वे अपनी स्त्रियों, बहू-बेटियों और बहनों को टके टके में बिकतीं देख कर भी चुप्पी साधे बैठे थे। वे अपने इलाकों और जायदादों से सदा के लिये हाथ धो बैठे थे। उन के पवित्र मन्दिरों, पूज्य देवियों और देवताओं को उनके अपने ही पवित्र पशुओं के रक्त से लीपा और नहलाया जाता था। परन्तु उनके कान पर जूं तक नहीं रींगती थी। उनका धर्म और मान-मर्यादा मुस्लमानों के जूतों में रुलता था और उनकी दया का आकांक्षी था। वे बनियों की तरह घरों में घुस बैठे थे और चूहों की भांति पहाड़ों की बिलों में जा छुपे थे! उनके बुझे हुए साहस, मुरझाये चेहरों और मुरदा दिलों में गुरु साहब ने ऐसी रूह फूँकी, वह गर्मी उत्पन्न की और वह जोश भरा कि एक एक सिक्ख सैंकड़ों मुस्लमानों की ताकत को तुच्छ समझने लगा। देश और कौम के लिये शहीद होने और धर्म की रक्षा के लिये शहीदी का जाम पीने को सिक्ख अपना सौभाग्य समझने लगे। गुरु गोविन्द सिंघ जी ने बिल्लियों को बाघ बनाया और नामर्दों को मर्द मैदान। यह काम गुरु गोविन्द सिंघ जी के जिम्मे ही लगा था और उन्होंने इसको पूर्ण सफलता से किया। उनके सामने पहला कार्य

यह था कि वे इस कार्य को कहां से, किस प्रकार और किन लोगों में आरम्भ करें।

गुरु जी ने अपना कार्य कहाँ से और किन लोगों में आरम्भ किया—

गुरु जी ने इस कार्य का क्षेत्र हिमालय पर्वत के पास के इलाके को बनाया। इस पतन और गिरावट के समय राजपूतों के दिलों से राष्ट्रीय गर्व और लज्जा लोप हो चुकी थी और उनसे गुरु जी के आदर्श को अपनाने तथा सहायता देने की कोई आशा नहीं की जा सकती थी। पंजाब के पश्चिम की ओर बसते हिन्दू भी अपनी वीरता का गुण खो चुके थे। मध्य पंजाब के क्षत्रियों में शारीरिक तथा आत्मिक बल की कमी के कारण ऐसी योग्यता नहीं थी कि वे गुरु जी के उद्देश्य को अपना कर लामबंद हो जाते। बंगाल, मद्रास, महाराष्ट्र में भाषा का बड़ा अन्तर था। वे लम्बे समय से मुस्लमानों से लड़ते-लड़ते थक चुके थे और उनके युवकों से शीघ्र ही किसी विशेष सफलता की आशा नहीं हो सकती थी क्योंकि अब तक ऐसे आवश्यक कार्य के लिये उनको किसी ने तैयार नहीं किया था। उत्तर-पश्चिमी पंजाब पर गुरु नानक देव जी के प्रचार का पर्याप्त प्रभाव था। कई वीरता के कारनामें और शहीदियां उन में से हो चुकी थीं। उनका प्रभाव भी लोगों में कायम था। गुरु गोबिन्द सिंघ को भी ऐसे लोगों की ज़रूरत थी जिन में कुछ विशेष साहस और बल हो और वे धार्मिक प्रचार और विचार-धारा को शीघ्रता से ग्रहण करने के लिए तत्पर हों। इसलिये उत्तरी हिमालय का क्षेत्र दोनों पक्षों से पर्याप्त उपयुक्त था। गुरु नानक देव जी के प्रचार का भी उन्हें बहुत कुछ ज्ञान था और शारीरिक बल के पक्ष से भी वे पूरे उतरते थे। उनके

शरीर हृष्ट-पुष्ट थे तथा वे कठिनाईयों और सख्तियों से घबराने अथवा भागने वाले भी न थे। वे तो सूखी लकड़ियों के ढेर अथवा बारूद की तरह थोड़े से सेंक अथवा चिंगारी से ही भड़क उठने अथवा भभूका बनने के लिये तैयार थे। अगर-मगर अथवा लेकिन-वेकिन करने में उनकी रुचि नहीं थी। उस श्रेणी के लोगों में सफलता बहुत कठिन हो जाती है जो अपनी निर्बलता कायरता और उत्साह-हीनता को अगर-मगर और लेकिन-वेकिन की शाब्दिक हेरा-फेरी के चक्कर के पीछे छुपाते हैं।

गुरु जी का यह विचार बहुत मूल्यवान था कि यदि एक बुझा हुआ दिया जल जाये तो दूसरे को जलाना सहल होता है, चाहे कैसा भी हो। आवश्यकता और कठिनाई तो पहले को जलाने में थी। हिन्दू तो उस समय बुझे दिये ही थे। गुरु गोविन्द सिंघ जी ने उस क्षेत्र के खाली और बुझे हुए दीप को, जिस में नाम मात्र भी तेल नहीं था जलाना चाहा जिस से इस दीप के प्रकाश से सारे संसार में उजाला और प्रकाश हो सके। पर ऐसे दिये के लिये किसी विशेष प्रकार के तेल और बत्ती की आवश्यकता थी। उन्होंने इस दिये में राष्ट्र-प्रेम की बत्ती डाली और अपने जिगर के खून का तेल डाल कर क्षत्रियता की अग्नि से जलाया और इस प्रकार ऐसा दीपक जलाया कि मुर्दा कौम जीवन के रंग-मंच पर अपने कर्त्तव्य-पालन के लिये पुनः जीवित हो गई। इस दीपक को जलाने का गौरव गुरु जी ने अपनी जात से कभी नहीं जोड़ा। उन्होंने सदा कहा कि इस दीपक की ज्योति गुरु नानक देव जी द्वारा प्रदान की हुई है, वे तो केवल अपने रक्त का तेल डाल कर इसकी ज्योति को बढ़ाने के लिये ही आये हैं। सचमुच ऐसे वीर पुरुष की ही ऐसी उच्च और पवित्र भावना हो सकती थी। इस लिये उन्होंने देश के ऐसे भाग में

कार्य आरम्भ करना उचित समझा, जहां गुरु नानक देव जी ने पहले ही मैदान तैयार किया हुआ था। उन्होंने ऐसे लोगों में कार्य आरम्भ किया जो पहले ही कुछ ऐसे ही विचारों के थे।

उन्होंने उत्तर-पूर्वी हिमालय की पहाड़ियों में टिक कर यह कार्य आरम्भ किया। उन्होंने स्वयं कई प्रकार की विद्या में प्रवीणता प्राप्त की और सिक्खों को दिलाई। लगभग ३३ वर्ष की आयु तक वहां विद्या प्राप्त करने, इतिहासों को सुनने और उनके अध्ययन में अपना समय लगाया।

शिकार और अस्त्रों-शस्त्रों के प्रयोग का अभ्यास किया। अपने सिक्खों को इन की सिखलाई कराई। उन में परिश्रम करने की प्रवृत्ति को बढ़ाया। वीर काव्य एकत्र किया। लोक-भाषा में उसका अनुवाद करवाया और जनसाधारण की प्रवृत्ति तथा रुचि से एकीभूत किया, धीरे धीरे यौवन के जोश और उफान को संयम से गंभीर उत्साह में बदला। जो सिक्ख-सेवक उनके पास आते थे उन में वे जोश भरते थे और जो उन के पास रहते थे उन को साथ शिकार के लिये ले जाते थे, जिस से वे अधिक उत्साही और परिश्रमी होते गये। आराम को त्याग कर चुस्त और बलवान बनते गये, सुस्ती तथा आलस्य पूर्णतः त्याग कर उद्यमी और तैयार बर तैयार होते गये। एक अकाल के पूजक बन गये और उनमें कौमी भावना जागने लगी। निस्सार खयाली धर्म से निकल कर सच्चे और व्यवहारिक धर्म के धारक हो गये। इस प्रकार शनैः शनैः सिक्ख गुरु गोबिन्द सिंघ जी की सामरिक प्रवृत्ति और क्षत्रि विचारधारा के अनुकूल और प्रेमी बन गये। सिक्ख गुरु साहब को आभूषणों, बर्तनों, गलीचों और अन्य उपहारों के स्थान पर घोड़े और अस्त्र-शस्त्र भेंट करने लगे। गुरु जी ऐसे उपहारों और सौगातों को देख कर अति प्रसन्न होते।

सिक्ख भी ऐसी वस्तुओं को भेंट करने में गर्व अनुभव करने लगे। विचारों के परिवर्तन के साथ ही अस्त्र-शस्त्र तथा अन्य सामरिक साधन भी इकट्ठे होते गये।

गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने फकीराना रहन-सहन त्याग कर शाही ठाठ अपना लिया। वे प्रातःकाल और संध्या समय दरबार लगाते थे।

वे सदा कृपाण धारण करते थे चाहे बाहर हों और चाहे गुरु-गद्दी पर विराजमान। वे गतका, व्यायाम, नेजाबाजी के अखाड़े लगवाते और प्रतियोगताएं करवाते। ईश्वर-भक्ति के साथ साथ कौमी जोश भरने वाले, खून गर्माने वाले और दिलों को बलवान बनाने वाले गीत-कवित्त भी उनके दरबार में गाये और सुनाये जाने लगे। गुरु गोबिन्द सिंघ जी इस में बहुत दिलचस्पी लेते थे और स्वयं भी उत्साह उत्पन्न करने वाली, हिम्मत बढ़ाने वाली और खून को गर्माने तथा तेजी लाने वाली कवितायें रचते रहते थे। उन के पास लगभग बावन कवि इस कार्य की पूर्ति के लिये उपस्थित रहते थे, जो हिन्दुओं के शहीद योद्धाओं और आर्य वीरों की वीरता के कारनामें प्रभावशाली भाषा में रच कर सिक्खों को सुनाते थे। भट्ट तो सदा ही उनके दरबार में राष्ट्रीय तेज-प्रताप की वीर-रस से ओत-प्रोत वारें गायन करते रहते थे।

गुरु गोबिन्द सिंघ जी की रचना जो दसम ग्रंथ के नाम से प्रसिद्ध है, एक विशेष भाग दुर्गा और राक्षसों के युद्धों से भरपूर है, जिस की भाषा के वेग में समुद्र का तूफान चलता है। शब्दों से तलवारों और ढालों की खनक सुनाई देती है, और पिंगल की चाल ऐसी है कि उस से सरपट दौड़ते घोड़ों की टापों की आवाज़ आती है और अलंकारों की भरमार ऐसी है कि पढ़ कर भावों में

उद्वेग आ जाता है। जोश इतना है कि शरद्-काल में भी पढ़ने से पसीना आना शुरू हो जाता है। इस ग्रंथ का एक विशेष भाग देवी की सामरिक वारों (वीर-रस से भरपूर सारंगी और डमरू के साथ गाई जाने वाली कविताओं) से भरपूर है। इसलिये कई लोगों को ग़लत-फ़हिमी हुई कि गुरु जी देवी के पूजक थे। यह निर्मूल भ्रम अथवा व्यर्थ कल्पना है। वे केवल एक निरंकार अकाल पुरुष के पुजारी थे। एक प्रभु के विना किसी की पूजा नहीं करते थे, न ही किसी देवी-देवता की पूजा को उन्होंने कभी स्वीकार किया और न ही उसका अनुमोदन किया, प्रत्युत वे तो सदा ऐसी पूजा के विरुद्ध संग्राम करते रहे। इस ग्रंथ में वर्णन (दुर्गा) देवी और राक्षसों के युद्ध का है। उस में की देवी, स्तुति और वीरता-वार्ता के पीछे एक भेद छुपा है। देवी को राक्षसों के विरुद्ध युद्ध में विजय-प्राप्ति की 'नायक' और साधन के रूप में कल्पित किया गया है। विरोधी शक्ति की तुलना में नायक की स्तुति करना, उसकी वीरता को चमकाना होता है। सामरिक रुचि को जगाने और बढ़ावा देने के लिये अत्यावश्यक इस स्तुति से यह अनुमान लगा लेना कि वे देवी के पूजक थे एक बड़ी भारी भूल है। देवी को 'नायक' बनाना उस कार्य की सिद्धि के लिये एक ललकार थी। नायक को सर्वगुण सम्पन्न दर्शाना और प्रशंसा करना आवश्यक था; वे देवी पूजन व किसी ऐसी भावना के प्रशंसक नहीं थे और न ही ऐसा कहा जा सकता है। देवी की पूजा करना अथवा उसका प्रचार करना कभी उनका लक्ष्य नहीं था। वे एक अकाल पुरुष की पूजा के अतिरिक्त किसी और देवी-देवता की पूजा, भक्ति अथवा उपासना करनी और उन पर विश्वास रखना बड़ा भारी पाप मानते थे। यह बात हम पहले भी धार्मिक प्रचार के वर्णन में कह चुके हैं।

गुरु जी के अतिरिक्त इस ग्रंथ में अन्य कवियों की रचना भी है, जो 'श्री मुख वाक' तथा गुरु जी की स्वयं उचरित रचना नहीं। देवी को नायक स्थापित कर के राक्षसों के सम्मुख डटाया गया। उस के रक्त बहाने और मारू शक्ति और विजय के उदाहरण ओज-पूर्ण भाषा में वर्णन किये गये हैं, जैसे कि महाभारत और रामायण जैसे ग्रंथों में श्री कृष्ण और राम चन्द्र जी के वीर-कर्मों के नमूने प्रभावशाली लोकभाषा और काव्य-शैली द्वारा पेश किये गये हैं। आवश्यकता तो इस बात की थी कि सिक्खों के अंदर प्रयोजनीय उत्साह उत्पन्न किया जाये और उस उत्साह को उभारा और उत्तेजित किया जाये, जिस से उन को आने वाले युद्धों और क्रांति के लिये तैयार किया जा सके और आवश्यकता होने पर भक्ति के साथ शक्ति का उपयोग किया जा सके। यदि किसी नायक अथवा हीरो की कल्पना न की जाये तो कल्पित कथा का विस्तार और चाल ही ढीली और फीकी पड़ जाती है। इस लिये गुरु जी ने कविता में युद्ध की विजेता नायक, (नायिका कहने से अर्थ में निर्बलता आ जाती है) देवी को बनाया। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि जिस समय उन्होंने काम का आरम्भ किया, उस समय पर्याप्त संख्या में लोग देवी-पूजक थे। गुरु जी उनकी उपासना वेग में प्रयोजनीय परिवर्तन ला कर और देश-भक्ति की आब चढ़ा कर राष्ट्र का उत्थान करना चाहते थे।

गुरु गोविन्द सिंघ जी ने बड़ी बुद्धिमत्ता, दलेरी और दूरदर्शिता से अपनी मारू नाद बजाने वाली और जोश पैदा करने वाली कविता में नेता देवी को ही बनाया। उन की नीति पूर्णतः स्पष्ट थी कि वे देवी के उपासकों को उत्तेजित कर के, उन में से अपने लिये बहादुर सिंघ प्राप्त करना चाहते थे। यह मर्दों के लिये एक ललकार भी थी कि यदि एक वीर नारी राक्षसों का

सामना कर के उन्हें मार कर विजय प्राप्त कर सकती है तो मर्द क्यों ऐसा नहीं कर सकते। उन्हों ने कितने ही सिंघ उस सम्प्रदाय में से लिये, परन्तु उनका कोई भी सिंघ देवी का भक्त नहीं रहा था। अपितु खालसा धर्म में प्रवेश पाने के उपरांत वे सारे केवल एक ओंकार निरंकार ईश्वर के आराधन में मस्त रहते थे। यदि गुरु जी देवी-भक्त होते तो कोई कारण नहीं था कि वे देवी-पूजा के सम्बन्ध में साफ और स्पष्ट शब्दों में उपदेश न करते। यह कितनी साफ और ठोस गवाही है कि उनके सिक्ख यद्यपि उस श्रेणी में से आते थे परन्तु खालसा धर्म धारण करने के पश्चात उनमें से कोई भी देवी की उपासना नहीं करता था।

यहां एक प्रश्न उठता है कि क्या खालसा धर्म की मर्यादा में उन्हों ने देवी-पूजा का अंश भी शामिल किया? खंडे द्वारा पाहुल देने की रीति कुछ एक को देवी-पूजक श्रेणी की कुछ क्रिया प्रतीत होती है। कुछ जन्म साखियां लिखने वालों ने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि गुरु जी देवी-पूजक थे, परन्तु जन्म साखियों के ऐसे लेखक मन-घड़ंत कहानियां बना कर मजे लेने वाली श्रेणी के प्रतिनिधि हैं जो सदा बेतुकी बातें कहते और गप्पें हांकते रहते हैं और इसी से आनन्द लेते रहते हैं और भंग के नशे में जो मन में आता है लिख देते हैं। ये मित्र-घातक नीति और मूर्खता के कारण सदा धर्म के नाम पर अधर्म का प्रचार करते चले जाते हैं।

यदि कहीं साधारणतः देवी की कुछ प्रशंसा किसी समय इस कल्पित कविता में नाटकीय प्रभाव की आवश्यकता से की गई है तो उसको गुरु साहिब के जीवन के अन्य समाचारों और उनकी शिक्षा और सिद्धान्तों को सम्मुख रख कर देखना चाहिये। इस प्रकार की प्रशंसा उनके विचारों पर किसी तरह भी हावी नहीं

हो सकती, क्योंकि वे तो समय की नाड़ी को पूर्णतः पहचानने वाले थे और जिस इलाज को उन्होंने उचित समझा, उसी का उपयोग किया। आज, हम सैंकड़ों वर्षों की दूरी से किस तरह कोई फतवा दे सकते हैं और अपनी विचारधारा के अनुसार किसी विशेष बात को उचित या अनुचित ठहरा सकते हैं?

धार्मिक उन्नति का कार्य उन्होंने गुरु नानक देव जी के प्रचलित सिद्धान्तों और शिक्षा पर चलाया और एक निरंकार तथा अकाल पुरुष की पूजा पर बल दिया। इसी विचार के आधीन उन्होंने अपने कार्य-क्षेत्र और स्थान को चुना। जो जो मुशकिलें सामने आने वाली थीं, उन सब पर इस पर्वतीय क्षेत्र में विश्राम करते समय गम्भीर विचार किया और राजनीतिक उत्थान की नींव भी एकता, भाईचारे तथा राष्ट्रीय प्रेम में डाली।

गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने प्रारम्भ सिद्धान्त कैसे स्थापित किये?—

पहला बुनियादी सिद्धान्त एक भाईचारा स्थापित करना था। उन्होंने सारी ज़ात-ब्रादरियों को समाप्त करके, एक खालसा जाति की नींव डाल कर उस नींव पर बनाये जाने वाले भवन को उसारना आरम्भ किया। सब की उन्नति, एकजैसा रास्ता और एक जैसे साधन प्रस्तुत किये। वर्ण-भेद को समाप्त करके सब की समानता केवल मनुष्य होने के 'मानस की जात सबै एकै पहचानबो' के सिद्धान्त पर स्थापित की। अलग अलग प्रकार की जातियों के सब मनुष्यों को एक समान स्तर पर ला कर, बराबर सांझे-दारी की घुट्टी देकर, उनके शरीर में और उनके रग-रेशों में एकता का रक्त भरा।

दूसरा सिद्धान्त उन्होंने यह दृढ़ कराया कि राष्ट्रीय एकता को स्थिर करने और जीवित रखने के लिये बलिदान की

आवश्यकता है और इस विशेष प्राप्ति के लिये समयानुसार प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्र और देश के कार्यों में अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को त्याग कर सांझे बल और शक्ति से मिल कर काम करने की आवश्यकता है। पहला काम ही कठिन था, परन्तु दूसरा उससे भी कठिन था। पहले कार्य में ही बहुत सी कठिनाई और बाधा का सामना था। सहस्रों वर्षों से हिन्दुओं में वर्ण-भेद चला आता था और लोगों के खाने-पीने के ढंग, विवाहों की रीति-मर्यादाएं केवल अलग अलग ही नहीं वरन् एक दूसरे के विरुद्ध भी थीं। वर्णों और जातियों में परस्पर बहुत घृणा थी। वे ज़ात की कैद और रीतियों के बन्धनों को धर्म से भी अधिक प्यार करने लगे थे। ज़ात के बन्धन ढीले होने से वे धर्म से फिसलते प्रतीत करते थे। जाति के बन्धन में थोड़ी सी अदला-बदली से तूफान उठ पड़ने का भय उन्हें खाता रहता था। हिन्दू सैंकड़ों वर्षों से जातियों के दास बने चले आते थे। उसमें हस्ताक्षेप करना कोई सहल बात नहीं थी। इस में सब से अधिक चुभने वाली बात यह थी कि छोटी जातियों को जिन्हें अन्य जातियों वाले शूद्र तथा मलेछ ही समझते थे और जिन को सारे हिन्दू-काल में उन्नति करने का किसी को कभी स्वप्न भी नहीं आया था, बड़ी जातियों के बराबर कर दिया जाये।

गुरु गोबिन्द सिंह जी शूद्र और नीच जातियों के लोगों को जो गुलामों से किसी प्रकार कम नहीं थे, अपितु उन से कहीं अधिक गिरे हुये थे, स्वतन्त्र और उन्नति करने में नितान्त अकेले थे।

गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने शूद्रों को दासता से मुक्त करते समय एक कदम और भी आगे बढ़ाया। जो व्यक्ति भी खालसा धर्म में प्रवेश पाता, चाहे वह ब्राह्मण था चाहे शूद्र, वह

खालसा बरादरी में समान और सब का भाई बन जाता। जो काम भारत के वीर योद्धाओं और ईश्वर के अवतारों से (यदि ईश्वर के अवतारों का होना मान भी लिया जाये) भी न बन पड़ा, वह पंजाब के उस क्षत्रिय शूरवीर के हाथों से हुआ और पूर्णतः हुआ, जिस के दिल में सच्चे प्रेम और राष्ट्रीय भावना की प्रचण्ड अग्नि प्रज्वलित थी और जिस में देश भक्ति की लपटें धधक रही थीं।

दूसरा कार्य कौम के लिये कुरबानी भाव अपने सिक्खों में जगाना था। अलग अलग गुरु, अलग-२ देवता, अलग-२ धर्म के सिद्धान्त और अलग-२ विश्वास थे। भिन्न-२ भाषाएं और भिन्न भिन्न आवश्यकताएं थीं। इन भेदों के कई कारण हिन्दुओं को स्वार्थ की दलदल में धकेल चुके थे। हर एक अपनी खुदगर्ज़ी और निजी-स्वार्थ में ही फंसा हुआ था, एक दूसरे की कोई प्रवाह नहीं थी। एक राष्ट्र बना कर उस को ऊंचा उठाने में किसी की रुचि ही नहीं थी। न ही कोई राष्ट्रीय लक्ष्य नियत किया हुआ था। जब तक हिन्दू जन्ता राष्ट्रीय आवश्यकता, देश की स्वतन्त्रता, देश के भले तथा समूहिक लाभ के लिये अपने आप को न्योछावर और बलिदान करने की शिक्षा नहीं प्राप्त कर लेती थी, तब तक उस के बलवान राष्ट्र के रूप में उभरने का कठिन कार्य पूरा होना सम्भव नहीं था। इस लिये गुरु गोविन्द सिंघ जी ने हिन्दू जाति मे ऐसी भावना जगाई और रूह फूंकी कि कौम की सद्गति प्रत्येक प्राणी के हृदय में जाग उठी। कौम के लिये प्यार, श्रद्धा और सामूहिक उद्देश्य के लिये मिल कर बलिदान करने का भाव उत्पन्न हो गया, जात और व्यक्तिगत भेद या ऊच-नीच की भावना न रही। इन आरम्भिक सिद्धान्तों का लक्ष्य सामने रख के गुरु जी ने कार्य आरम्भ किया और जो भी बाधाएं

और कठिनाइयां आगे आईं उन को हंसते हंसते सहारा। जिन कारणों ने खालसा धर्म को जन्म दिया और जिन कारणों से एक निरंकार की भक्ति और पूजा प्रचलित हुई और राष्ट्र अस्तित्व प्राप्त कर के विकसित हुआ उस का वर्णन हम अगले कांड में करेंगे।

खालसा धर्म के स्थापित होने से पहले के कुछ समाचार–

गुरु गोविन्द सिंघ जी के फकीरी जीवन और चिन्तन के समय आसाम का एक युवराज रत्न राय गुरु जी के दर्शनों को आया। उस को गुरु-घर पर अपार श्रद्धा और भरोसा था। जब गुरु तेग़ बहादुर जी आसाम गये थे, उस समय इस श्रद्धा और प्रेम की लौ उस परिवार में पैदा हुई थी। अन्य उपहारों और भेंट के साथ उस ने गुरु जी को प्रसादी नाम का एक अति सुन्दर हाथी भी अर्पण किया। गुरु जी उस समय शिकार में अधिक दिलचस्पी रखते थे और उन की इस रुचि के कारण उन के पास लड़ाके सिक्खों की बड़ी भीड़ जमा हो गई थी। जब वे शिकार के लिये निकलते थे तो बड़ा शानदार दृश्य और चढ़ाई होती थी।

उस समय रिवाज था कि सरकारी अमीर-वज़ीर ही अपने महलों अथवा किलों में नगाड़ा रखते थे और शिकार या स्वारी के साथ ले जाते थे। गुरु जी ने अपने साथ पर्याप्त सिक्खों के इकट्ठे हो जाने के उपरांत नगाड़ा रखने का भी संकल्प कर लिया। नर्म विचारधारा के कुछ लोगों ने दूर-दृष्टि के विचार से गुरु जी को रोकने का यत्न भी किया, परन्तु वे सहमत न हुये। अन्त में नर्म विचार वाले लोगों ने गुरु जी की माता जी द्वारा दबाव डाल कर उन्हें इस बात से रोकने का यत्न किया। माता जी ने भी बड़प्पन के नाते उन को समझाया कि उनके

दादा जी ने भी इस प्रकार के कार्यों से काफी कष्ट उठाये थे। गुरु का काम सैनिकों सा नहीं, अपितु शांति तथा भक्ति का है। उन का सैनिक ढंग का प्रचार और अमीरों और शासकों जैसा जीवन-ढंग अपनाना उचित नहीं। गुरु जी ने माता जी को कहा कि मैं उसी पितामह का पौत्र हूं, मुझे किसी का भय नहीं। माता जी, आप कहती हैं कि मैं छुपा रहूं और अकाल पुरुष का आदेश है कि प्रकट हो कर विचरूं। मेरी ओर यदि किसी राजा ने बुरी आंख से देखा तो उस का उत्तर तलवार से दूंगा। समय की नीति अनुसार गुरु जी का यह उत्तर उचित न समझा गया, परन्तु एक निर्भय,वीर और राष्ट्रीय भावना वाले से ऐसे उत्तर की ही आशा की जा सकती थी। एक ऊंचे साहस वाले से यही उत्तर मिल सकता था।

गुरु गोविन्द सिंघ जी ने एक बहुत ही प्रभावशाली नगाड़ा बनवाया। उसको रणजीत नगाड़े का नाम दिया। शिकार समय इस को साथ ले जाते। उस पर चोटें लगने लगीं। उन्होंने सैनिक प्रबन्ध और सैनिक सामान इकट्ठा करने पर ज़ोर दिया। यह देख कर, इर्द-गिर्द के ज़मीनदार, जो पहाड़ी राजे कहलाते थे, डर गये। राजाओं को यह बात चुभती थी। नगाड़े की चोट ने उन्हें और अधिक दुःखित किया। वे गुरु गोविन्द सिंघ के साथ झगड़ा मोल लेने का मौका और बहाना ढूंढने लगे।

अन्त में बिलासपुर के राजा भीम चन्द कहलूरिया ने झगड़ा खड़ा कर लिया। गुरु जी से अपने लिये प्रसादी हाथी मांगने का संदेश भेजा। गुरु जी ने देने से इन्कार कर दिया। गुरु जी की माता और अन्य कर्मचारियों ने कहा कि हाथी दे कर सन्धि कर लेनी उचित है। परन्तु गुरु जी हाथी देने के लिये बिल्कुल सहमत न हुए। इस कारण यह क्रोधाग्नि सुलगती रही। कृपाल

चन्द एक अन्य पहाड़ी राजे ने भीम चन्द को उकसाया कि वह गुरु जी को अपने इलाके से निकल जाने के लिये मजबूर करे। गुरु जी को संदेश भेजा गया। गुरु जी उस के इस संदेश का उत्तर तलवार से देने के लिये तत्पर हो गये। पर राजा मेदनी प्रकाश ने अपने आदमी भेज कर गुरु जी को नाहन बुलवाया और इस प्रकार गुरु जी का म्यान से तलवार खैंचने का पहला मौका जाता रहा। कुछ इतिहासकार कहते हैं कि गुरु जी और भीम चन्द में तलवार चली और जीत गुरु जी की हुई। कुछ भी हुआ, गुरु जी भीम चन्द के इलाके से नाहन चले गये।

नाहन के क्षेत्र में जा कर संवत १७४१ कार्तिक मास में गुरु जी ने एक गांव बसा कर वहां किला बनवाया, जिस का नाम पाउंटा रखा। इसी समय कुछ अफगान काले खान, निजाबत खान, हयातखान और भीखन खान औरंगज़ेब की नाराजगी के कारण किसी नवाब के पास पनाह लेने का यत्न कर रहे थे, परन्तु उन्हें पनाह देने का कोई साहस नहीं कर रहा था। सैयद बुद्धु शाह की सिफारश से गुरु जी ने उन्हें अपने पास रख लिया। यह बहुत ही हिम्मत और साहस का काम था जो गुरु गोबिन्द सिंघ जी जैसे दिल-गुरदे वाला वीर ही कर सकता था। परन्तु इसका परिणाम कुछ अच्छा न हुआ। राजा भीम चन्द अपने पुत्र की बारात ले कर श्रीनगर (गढ़वाल) के राजा फतह शाह के यहां गया। इस विवाह के अवसर पर गुरु जी ने कुछ उपहार अपने दीवान नन्द चन्द के हाथों राजा फतह शाह को भेजे। भीम चन्द ने इस बात को पसन्द न किया और क्रोध प्रकट किया। इस नाराजगी को देख कर राजा फतह शाह ने गुरु जी के उपहार स्वीकार न किये और नन्द चंद वैसे ही वापस आ गया। इस प्रकार इन दोनों राजाओं और गुरु जी में शत्रुता

बढ़ गई। राजा भीम चन्द ने कृपाल चन्द कटोचिया, राजा केसरी चन्द जसवालिया, राजा सुखदयाल जसरोटिया, राजा हरो चन्द हंडूरिया, राजा पृथ्वी चन्द डडवालिया, राजा फतह शाह श्रीनगर, आदि को गुरु जी के विरुद्ध अपने साथ मिला लिया और वे कभी कभी गुरु जी को तंग करने और सताने लगे।

उन राजाओं ने मिल कर वैशाख १७४२ में सम्मिलित शक्ति के साथ गुरु जी पर अपनी सेनाओं से आक्रमण कर दिया। उस समय गुरु जी यौवनावस्था में पदार्पण कर रहे थे और दुनिया का अनुभव भी पर्याप्त नहीं था, परन्तु यह होते हुये भी गुरु जी अपनी छोटी सी अनुभव रहित और लड़ाई से अनजान जमात को भीम चन्द आदि पहाड़ी राजाओं की सम्मिलित सेना के सामने टक्कर लेने के लिये रणक्षेत्र में ले आये। अभी छोटी सी झड़प हुई थी कि पांच सौ उदासी साधुओं का टोला, जो हलवा खा खा कर पला हुआ था, गुरु जी का साथ छोड़ कर छुप कर भाग निकला। काले खान और उसके साथी मौके पर धोखा देकर भीमचन्द के साथ षड्यन्त्र रच कर आक्रमणकारियों के साथ जा मिले। सैय्यद बुद्धू शाह, जिस के अनुरोध से ये पठान गुरु जी के पास नौकर हुये थे, उनकी धोखाबाजी से बहुत दुखित हुआ। वह गुरु जी की सहायता के लिये ऐन समय पर पहुंच गया। तीन दिन जमना और गिरि नदियों के बीच के मैदान में जम कर टक्कर हुई। गुरु गोविन्द सिंघ स्वयं इस साधन रहित अनियमित सैनिक दस्ते का सेनापतित्व कर रहे थे। गुरु जी की यह सेना अनुभव हीन और अप्रशिक्षित थी। उनके पास पूरा सामान भी नहीं था। इसमें अधिक कामकाजी सेवक सिक्ख ही थे जो युद्ध-विद्या से अपिरिचित थे और उनमें कुछ फकीर और एकांतवासी साधु ही थे। जन्म-साखियों में जिन जंगी साथियों की सूची मिलती

है, उन में एक लाल चन्द हलवाई भी था। इस से अनुमान किया जा सकता है कि गुरु जी के पहले सेवक किस श्रेणी के कितने अनुभव वाले और किस स्तर के थे। गुरु जी के मामा कृपाल चन्द और दीवान नन्द चन्द भी इस लड़ाई में शामिल थे।

कभी हलवाइयों और हलवा खाने वाले साधुओं से भी जंग जीते गये हैं? उदासी तो हलवा खा कर चुपके से भाग गये और हलवाई अपनी श्रद्धा और हिम्मत दिखा कर मैदान में ही हलवा हो गये। हां, गुरु जी ने स्वयं और उनके कुछ जाट सिक्खों ने वीरता दिखाई। गुरु जी ने छाती तान कर ऐसा मुकाबला किया और तीर चलाये कि शत्रु हैरान रह गया। हरी चन्द ने गुरु जी के घोड़े को घाव लगाया परन्तु वह गुरु जी के हाथों मारा गया। राजा केसरी चन्द और सुखदेव भी घायल हो गये। गुरु जी के सिक्ख थोड़े थे और जमात कमज़ोर थी, परन्तु वे ऐसे जान तोड़ कर लड़े कि पहाड़ी राजाओं के सैनिकों के दिल टूट गये और छक्के छूट गये। वे रणक्षेत्र छोड़ कर भाग निकले। मैदान संयोग से गुरु जी के हाथ रहा।

इसमें सन्देह नहीं कि इस युद्ध के समय मुस्लमान पठानों के धोखा दे जाने से, जिन को गुरु जी ने बड़ी विपत्ति के समय ओट देकर अपने पास नौकर रखा था, और उदासी साधुओं की कायरता और समय पड़ने पर रणक्षेत्र से भाग जाने से गुरु साहिब को जो अनुभव प्राप्त हुआ, उसने उनसें वह काम करवाया जो और किसी दशा में होना असम्भव था। भाव यह कि खालसा धर्म द्वारा जंगी फिरके को जन्म देने का विचार और भावना जो पहले गुरु जी के मन में थी, उसको दृढ़ करने के लिये यह ज़रूरी घटनाएं थीं; जिन से गुरु गोविन्द सिंह जी को अच्छी तरह बहुत कीमती अनुभव हो गया कि दुनिया का व्यवहार कैसा है।

राष्ट्र में दुबारा क्षत्रियता और वीरता जैसे गुण उत्पन्न करने के लिये, समानता और सांझेदारी की लड़ी में पिरोने के लिये यह आवश्यक था कि हिन्दुओं में सब का कोई एक लक्ष्य, विश्वास और उच्च आदर्श की भावना पैदा की जाए। इसी लिए गुरु जी ने हिन्दुओं के लिये एक अद्वितीय और महान कार्य किया, जिस से हिन्दुस्तान की रूप-रेखा ही बदल गई। बरबाद हुई हुई और बिखरी हुई कौम ने एक बलवान राष्ट्र का रूप धारण कर लिया, जिस द्वारा उन्होंने अपनी रसातल को जाती हुई दशा और खोई हुई शान और सम्मान को एक बार फिर सम्भाला और संसार भर की बहादुर कौमों की पंक्ति में खड़े हो कर अपने बाहुबल और वीरता की सुगन्धि सारे संसार में फैला दी।

इस युद्ध के पश्चात गुरु जी के सिक्ख-सेवक विजय के नगाड़े बजाते हुये पाऊंटा साहिब वापस आ गये। यहां पहुंच कर गुरु जी ने पीर बुद्धू शाह को, जिसका पुत्र और कुछ साथी युद्ध में शहीद हुये थे, एक सनद (हुकमनामा) और एक दस्तार (पगड़ी), जिसके कारण सिंघ अभी तक उसके घराने का सम्मान करते हैं, दिये। इस युद्ध के एक मास बाद गुरु जी वापस अपने ठिकाने आनन्दपुर में, जिसको उनके पिता जी ने ज़मीन मोल लेकर बसाया था, आ गये। वहां पहुंच कर उन्हों ने आनन्दगढ़, लोहगढ़, होलगढ़, केसगढ़ और फतहगढ़ नाम के पांच किले बनवाए। ये शायद उन्हों ने इस खबरदारी के कारण बनवाये कि यदि पहाड़ी राजे दोबारा आक्रमण करें तो इन के द्वारा अपनी रक्षा की जा सके। इसी साल सरहिन्द के सूबेदार की सेना ने अलफ खान के सेनापतित्व में पहाड़ी राजाओं पर आक्रमण किया, क्योंकि उन्होंने देहली के शहनशाह का कर नहीं चुकता किया था। राजाओं ने कर अदा करने के स्थान पर शाही फौज से भिड़ने

की ठानी और इस संकट के समय राजा भीम चन्द ने गुरु जी के पास सुलह के लिये विनती की। गुरु जी ने उसके पहले अपराधों को भुला कर उसको सहायता करनी मान ली।

पहाड़ी राजाओं की सहायता के लिए गुरु जी की शाही फौज से टक्कर :—

गुरु गोविन्द सिंघ जी ने विशाल खुले दिल से, राष्ट्रीय भावना को मुख्य रख कर अपने निजी शत्रु को क्षमा करके उस के साथ सन्धि कर ली। वे कभी भी मौन धारे देख नहीं सकते थे कि हिन्दू लताड़े जाते रहें और बरबाद होते रहें। गुरु जी उन के विरोधियों से तो मिल नहीं सकते थे। जो दिल कुचले जा रहे हिन्दुओं और दु:खी लोगों की भलाई के लिये ही पैदा हुआ था और जिस दिल में पीड़ितों के लिये शुभ इच्छायें थीं वह उन पर आये संकट के समय सहायता की मांग को कैसे ठुकरा सकता था ? यदि गुरु जी किनारे खड़े रहते और उनका साथ न देते, (यद्यपि पहले रहे विरोध के कारण ही) तो फिर उनके उच्च उद्देश्य और आदर्श को बट्टा लगता। जब उनकी आंखों के सामने हिन्दू अपमानित और बरबाद होते थे, तो वे कैसे चुप रह सकते थे। उन के अन्दर राष्ट्रीय प्रेम का उछलता-उबलता जोश था, जो कुचली जा रही हिन्दू जाति का अपमान न सहार सका। गंभीरता से सोच-विचार कर उन्होंने भीम चन्द की शत्रुता को भुला कर, उनकी मांग पर उन से संधि कर ली और खुले दिल से उन का साथ देना मान लिया। उनके साथ संधि करके पांच सौ सवार और पैदल लड़ाके सिक्खों का एक जत्था दीवान मोहरी चन्द और दया राम की जत्थेदारी में सहायता के लिये भेजा। दैवयोग से शाही सेना को हार का मुंह देखना पड़ा।

इसके पीछे तीन वर्ष तक शांति रही और गुरु जी को

तलवार उठाने की आवश्यकता न पड़ी। इस समय गुरु जी अपनी विचारधारा का गहरा अध्ययन करने, उसे दृढ़ करने और अपने उद्देश्य के प्रचार की तैयारी में कार्यशील रहे। ईश्वर-भक्ति और आत्म-उपदेश द्वारा जहां वे सिक्खों की आत्मिक तृप्ति करते रहे वहां उनके रक्त को भी गर्माते रहे।

भाद्रपद संवत १७४५ में लाहौर के सूबेदार ने पहाड़ी राजाओं का शोध करने के लिये सेना भेजी और एक अलग फौजी दस्ता गुरु जी से टक्कर लेने के लिये रुस्तम खान के अधिकार में भेजा। वर्षाऋतु थी और सब नदी-नालों में बाढ़ आई हुई थी। वर्षा और तूफान के कारण रुस्तम खान ज्यादा देर टिक न सका और किसी हल्ले-गुल्ले के बिना ही वापस चला गया। जो नाला उस समय सामने था और जिसने शत्रु को आगे बढ़ने में बाधा डाली, उस को सिक्खों ने 'हमायती नाला' कहा और आज तक भी इसके इर्द-गिर्द बसने वाले इसे इसी नाम से याद करते हैं। रुस्तम खान ने कुछ समय बाद पहाड़ी राजाओं पर, फिर आक्रमण किया। इस बार भी शाही सेना को हार हुई। इस युद्ध में भी गुरु जी के तीन सौ जवान भाई संगीना जी की जत्थेदारी में शामिल हुए।

आखिरकार औरंगज़ेब ने पंजाब के इस भाग को दबाने के लिये अपने पुत्र मुअज़्ज़म शाह को भेजा। मुअज़्ज़म शाह स्वयं तो लाहौर चला गया, परन्तु अपने मुख्य सरदार मीर मिरज़ा बेग को अपनी सेना का विशेष भाग दे कर पहाड़ी राजाओं को दबाने के लिये भेजा। मिरज़ा बेग ने पहाड़ी राजाओं को बहुत लूटा, मारा और लताड़ा। गुरु जी इस समय अपने पहाड़ी ठिकाने पर ही टिके रहे। मुसलमानों ने आनन्दपुर को भी लूटा। इस लूट का वर्णन गुरु जी ने अपनी पुस्तक 'बचित्र नाटक' में किया है।

गुरु गोबिन्द सिंघ का देवी प्रकट करने का किस्सा--

जब गुरु गोबिन्द सिंघ जी आने वाले समय के कार्य की तैयारी में लगे हुए थे और सैनिक सामान इकट्ठा कर रहे थे तो उस समय पंडितों ने उनको प्रेरित किया अथवा गुरु जी ने स्वयं ही देवी पूजक श्रेणी को अपनी ओर आकर्षित करने और प्रेरित करने के लिये पंडितों को इस बात के लिये तैयार किया कि एक विशेष यज्ञ और हवन किया जाये जिस द्वारा देवी को प्रकट कर के उस की सहायता और प्रसाद से शत्रुओं का नाश किया जाये। मालकार (नैना देवी) पर्वत पर यज्ञ-सामग्री इकट्ठी की गई। इस यज्ञ को सम्पूर्ण करने के लिये बनारस से कालीदास और केशो दास नामी दो पंडित बुलाये गये। उनके साथ पंडित विशंभर दास भी शामिल किये गये। हवन कई दिन होता रहा, परन्तु देवी प्रकट न हुई, जैसे कि ब्राह्मणों ने दावा किया था। फिर ब्राह्मणों ने यह बहाना लगाया कि देवी तब तक प्रकट नहीं होगी जब तक इस हवन-कुंड में देवी को किसी महापुरुष की बलि न दी जाये। यह सुन कर गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने हंस कर पंडितों को कहा कि आप से बड़ा महापुरुष कौन मिल सकता है? अच्छा हो यदि किसी पंडित जी की देवी को बलि दी जाये। यह सुन कर पंडित लघुशंका और स्नान करने के बहाने वहां से भाग निकले और यज्ञ वहीं का वहीं रह गया।

कई किंवदन्तियों में एक यह भी प्रचलित है। जब पंडित लोग यज्ञ को अधूरा छोड़ कर भाग गये तो गुरु जी ने बाकी बची हुई सारी सामग्री को एक दम हवन-कुण्ड में डाल दिया और इससे पहाड़ पर प्रचंड अग्नि की एक ऊंची लपट उठी जिस से दूर से देखने वालों ने समझा कि देवी प्रकट हो गई है।

परन्तु यह सब किवदन्तियां गलत प्रतीत होती हैं। वास्तव में यह सब कहानियां ही मनोकल्पित हैं जो कुछ भोले लोगों के अज्ञान और अन्धविश्वास के कारण प्रचलित हुईं। यह कहानियां लोगों ने गुरु जी के 'दसम ग्रंथ' में लिखित 'चण्डी दी वार' और 'चण्डी चरित्र' के आधार पर बनाईं, जिन में गुरु जी ने देवी को 'नायक' बना रण-क्षेत्र में उसकी वीरता का वर्णन किया। अन्यथा कहां ब्राह्मणों का हवन, कहां उसमें से देवी का प्रकट होना, और कहां गुरु गोविन्द सिंघ जी की सारी शिक्षा जो पूर्णत: उसके उलट है। गुरु जी की विचारधारा के तो यह बिल्कुल विरुद्ध थी और कल्पना नहीं की जा सकती कि उनका कोई ऐसा विचार तथा विश्वास था जिस कारण ऐसा किया गया हो। हां, यह बात आवश्यक मानी जा सकती कि लोक-परम्परा और लोगों के बने विचारों को नाटकीय ढंग से व्यर्थ दिखाने के लिये और उनको भ्रम-जाल से निकाल कर अपने बल और विश्वास के आधार पर टिकाने के लिये ऐसा कोई हवन पहाड़ की चोटी पर करवाया गया हो और बची हुई सामग्री को अग्नि-कुंड मे फेंकने से ऊंची ऊंची लपटें निकली हों और लोगों ने दूर से देख कर अनुमान लगाया हो कि देवी गुरु जी के वश में आ गई है या कोई देवता काबू में आ गया है और अब गुरु जी की शत्रुओं पर विजय अवश्य होगी। इस कारण इर्द-गिर्द के जाट चाव से गुरु जी के दल में मिलने लगे। हमारे पास इस कहानी के लिये न उचित युक्ति है और न ही ठोस सबूत। इस लिये हम यह समझ सकते हैं कि यह उस समय की नीति के अनुसार नाटकीय ढंग का प्रयोग कर के लोगों को प्रेरित करने का एक साधन-मात्र था, जो लोगों की सामरिक रुचियों को उत्तेजित करने में सहायक सिद्ध हुआ।

इस सारे नाटक से यह परिणाम निकालना निर्मूल है कि गुरु

जो देवी के पूजक थे अथवा ऐसा करने की औरों को आज्ञा देते थे। ऐसी चालें तथा दाव-पेच लड़ाई के समय कई वार, कई अवसरों पर कितनों ने पहले भी प्रयोग किये थे और इतिहास में ऐसी कितनी ही गवाहियां मिलती हैं। यदि राजनीतिक क्षेत्र में यह वात सचमुच हुई हो, तो वह गुरु जी के आने वाले समय के कार्य का पूर्व लक्षण था, उस खालसा धर्म के लिये जिस की स्थापना के लिये वे तैयारी कर रहे थे। परन्तु खालसा धर्म की बुनियाद रखते समय भी उन्होंने देवी को अपने सिद्धांतों में बिल्कुल शामिल नहीं किया। खालसा धर्म के आधारभूत सिद्धांतों में देवी-पूजन अथवा अवतार-पूजन या किसी प्रकार की भी व्यक्ति-पूजन का उन्होंने नाम तक नहीं लिया और इन को सदा के लिये समाप्त कर दिया। इस के वाद गुरु जी की कोई ऐसी वात देखने में नहीं आई जिस से अनुमान लग सके कि वे किसी देवी-देवता की पूजा को उचित समझते थे। जिन सिद्धान्तों पर खालसा धर्म की नींव रखी गई उन का वर्णन हम अगले कांड में करते हैं।

खालसा धर्म की बुनिआद—

पिछले पृष्ठों में वताया जा चुका है कि गुरु गोविन्द सिंघ जी को ऐसे मनुष्यों की आवश्यकता थी जो आचरण और धर्म के सम्बन्ध में केवल प्रभु भक्त ही न हों, अपितु सैनिक उत्साह, राष्ट्रीय प्रेम और भ्रातृ-भाव से भी भरपूर हों और देश तथा धर्म के लिये अपने आप को न्योछावर करने के लिये सदा तत्पर हों। यद्यपि गुरु गोबिन्द सिंघ जी गुरु-माला के दस मनकों में से एक, एकांतवासी दरबेश थे, जिन का पवित्र उद्देश्य आत्मिक उपदेश था, परन्तु समय की मांग, मुस्लमानों की लूट-मार और अत्याचारों तथा हिन्दुओं की निर्बल दीन दुःखी दशा ने उनको

फकीरी से अमीरी और पीरी से मीरी धारण करने के लिये विवश कर दिया था। पहाड़ी राजाओं के विरोध ने उनको रण-क्षेत्र में उतरने के लिये मजबूर किया। गुरु जी ने स्वयं कभी भी पहाड़ी राजाओं या मुस्लमानों को किसी शिकायत का अवसर न दिया।

गुरु जी सैनिक उत्साह की विचारधारा को नया जीवन देने और प्रकाशमान करने की धुन में प्रभु-चरणों में लीन थे, जब ईर्षालुओं ने विना कारण उन्हें सताया और तंग किया। गुरु जी के पास न तैयारी के लिए समय था और न ही पर्याप्त अस्त्र, शस्त्र आदि। इस लिये तैयारी के बिना ही गुरु जी को म्यान से तलवार खींचने के लिए विवश होना पड़ा। हिन्दुओं की हालत दयनीय थी और पतनशील थी, जिस का चित्र हम पाठकों के सामने पहले रख चुके हैं। गुरु जी को वर्तमान परिस्थितियों में इन से किसी प्रकार की सिद्धि प्राप्त हो सकनी कठिन प्रतीत हुई। इस लिये उन्हें ऐसे मनुष्य उत्पन्न करने की आवश्यकता प्रतीत हुई जो पुरातन शूरवीर क्षत्रियों का नमूना हों। अपने आप को न्योछावर करने और देश तथा धर्म पर कुरवान होने को वे अपना पवित्र धर्म समझते हों। उन्हों ने अपनी सारी शक्ति इस ओर ही लगा दी और अपना सारा ध्यान इस एक बिन्दु पर ही केन्द्रित कर दिया, जब तक कि वे हिन्दुओं को किसी एक उद्देश्य, एक भाव, एक मंतव्य और एक लक्ष्य की ओर नहीं लगा लेते। भिन्न भिन्न हिन्दुओं का इकट्ठा होना या एक बनना बहुत ही कठिन था, इस लिए गुरु जी ने दो उद्देश्य अपने सामने रख कर खालसा धर्म के भवन को बना कर खड़ा करने की नींव डाली।

(१) भिन्न भिन्न हिन्दू मिल कर एक हो जायें।

(२) मुस्लमान राज्य को हिन्दुस्तान की सीमाओं से बाहर

निकालना जिनका कर्त्तव्य हो।

यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि गुरु गोविन्द सिंघ जी का मंतव्य इस्लाम के विरुद्ध जहाद करना बिल्कुल नहीं था और न ही ऐसा यत्न इस्लाम के विरुद्ध उन्होंने किया। परन्तु मुस्लमानों के अत्याचारों को देख कर उनकी राजनीतिक सत्ता को कमज़ोर करना और उनको भारत से बाहर निकालना, वे बहुत जरूरी समझते थे। उनके खालसा धर्म के स्थापन करने का यही कारण था। हिन्दुओं की तो दशा ही ऐसी नहीं थी कि वे मुसलमानों जैसी किसी शक्तिशाली कौम के विरुद्ध मजहबी जहाद कर सकें, और न ही इस से गुरु जी को कोई राष्ट्रीय अथवा व्यक्तिगत लाभ था। उनका मुख्य उद्देश्य मुस्लमानों की राजनीतिक सत्ता को तोड़ना था। इस कार्य-पूर्ति के लिए वे नवीन ढंग से हिन्दुओं में हिम्मत और हौसले की रूह फूंकना चाहते थे। गुरु साहिब को अपनी बीती आयु के अनुभवों ने भी यह सिद्ध कर दिया था कि हिन्दुओं का युद्धोत्साह का बाना इतना क्षीण हो चुका था कि उसकी मुरम्मत कर के अथवा थिगली लगा कर काम चलाना असम्भव था। अब तो किसी नये बाने की आवश्यकता थी। गुरु गोविन्द सिंघ जी ने अनुभव किया कि इन को नया रूप और नया बाना दिया जाये, जो इन के लिए स्वार्थ, आलस्य, उत्साह हीनता, कायरता के स्थान पर देश-भक्ति, प्रभु-भक्ति, वीरता और सेवा-भाव का चिन्ह बन जाये। इस लिए उनका विचार था कि एक ऐसी श्रेणी उत्पन्न की जाये, जिसका कर्त्तव्य भारत और अत्याचार-पीड़ित हिन्दू धर्म की रक्षा हो। अन्त में गुरु जी ने इस कार्य को पूरा करने का अवसर निकाल लिया।

सम्वत १७५६ में वैशाखी के दिन अपने पवित्र उद्देश्य को

पूर्ति के लिए, खालसा धर्म की नींव डालने के लिये गुरु जी ने अपने सिक्खों को, जो बहुत बड़ी संख्या में दूर दूर से इस शुभ त्योहार पर बुलाये गये थे, एक खुले मैदान में एकत्र किया। उस मैदान में एक शामियाना लगा हुआ था। जब मैदान श्रद्धालु सिक्खों से भर गया तो गुरु जी नंगी कृपाण हाथ में ले कर खड़े हो गये और सिक्खों को संकेत कर के पुकारा कि अकाल-पुरुष को आज्ञा हुई है कि अत्याचार-पीड़ित धर्म की रक्षा के लिए पहली बलि हम अपने एक सिक्ख के सिर की दें, जिस से उस सिक्ख का रक्त, दुःखी हिन्दू धर्म और देश की रक्षा के लिए, आने वाले समय के सिक्खों की रक्षा के लिये, भविष्य के सिक्खों के लिये बलिदान देने की प्रेरणा का एक जीवित चिन्ह बन जाये। जो सिक्ख इस उद्देश्य की प्राप्ति और पूर्ति के लिए अपना शीश न्योछावर करना चाहता है, बलिदान करना चाहता है, गुरु को भेंट करना चाहता है, वह हमारे सामने आगे, जिस से उसका सिर काट कर राष्ट्रीय जीवन को उसके रक्त से पुनः सुरजीत किया जाये। यह बात सुनते ही लाहौर निवासी दया राम खत्री उठ कर गुरु जी के सम्मुख आया और विनती की कि उसका सिर इस पवित्र कार्य के लिये प्रस्तुत है और वह अपने गुरु जी के लिये अपना शरीर बलिदान करने में गौरव समझता है। गुरु जी उसकी बांह पकड़ कर एक तम्बू में ले गये। तम्बू में तलवार की ज़ोरदार चोट का शब्द हुआ और रक्त की धारा बह निकली और बाहर बैठे सब लोगों को विश्वास हो गया कि दया राम का सिर धड़ से अलग हो चुका है। गुरु जी रक्तरंगित तलवार ले कर बाहर आये और कहा कि एक और सिर की आवश्यकता है।

अब हस्तिनापुर के निवासी धर्म राय जाट ने अपने आपको

सम्मुख किया। गुरु जी उसको भी तम्बू में ले गये और फिर पहले जैसा ही शब्द हुआ और रक्त बाहर वह निकला। फिर इसी प्रकार तीन बार और गुरु जी ने सिरों की मांग की और बारी बारी हिम्मत कहार, मुहकम छीपा और साहब नाई आगे बढ़े और अपने शीश अर्पण किये। गुरु जी उनको भी तम्बू में ले गये और पहली क्रिया दुहराई।

चाहे वे कुछ भी थे, परन्तु उनकी मिसाल मिलनी मुश्किल है। वे केवल अपने गुरु की आज्ञा पर अपना शरीर और जीवन कौम पर न्योछावर करने के लिये तैयार हुए, जीवन को तुच्छ समझा और प्राणों का बलिदान करने के लिये तत्पर हो गये। वे भारत के सच्चे सपूत थे, देश-प्रेम के आदर्श थे, महान आत्मा थे, जिन में अपने इस पंच-भौतिक शरीर को अपने देश-वासियों के लिये कुर्बान करने की समझ थी। उन्होंने अपने रक्त से अत्याचार-पीड़ित हिन्दू कौम की टूटी हड्डियों को जोड़ा। वे ऐसे महाबली थे कि उन्होंने कौम की भलाई के लिये मृत्यु को तुच्छ समझा। इस प्रकार के योद्धाओं शूरवीरों से ही, जो प्राणों को हथेली पर रखने वाले हों, गुरु जी को देश की उन्नति और भारत की मुक्ति की आशा हो सकती थी।

इस विशेष विधि से कार्य आरम्भ करने में गुरु जी के पास दो भेद थे :—

एक, यह देखना कि सिक्खों में कौमी सेवा तथा देश-भक्ति की भावना कितनी आ चुकी थी और उनके देर से चले आ रहे उपदेश और प्रचार का क्या फल था। क्या सिक्खों में ऐसी योग्यता आ चुकी थी कि वे हंसते हंसते दूसरों के लिये अपने प्राणों की आहुति दे सकें? गुरु जी के सिक्ख उनकी इस परीक्षा में पूरे उतरे। उन्होंने पांच सिरों की मांग की और पांचों ने ही

अपने सिर गुरु जी की तलवार के सामने अर्पण कर दिये। यदि सारे सिक्खों को आज्ञा होती तो ये सारे के सारे सिर देने से इन्कार न करते। इस से स्पष्ट है कि गुरु गोविन्द सिंघ जी ने कितनी साधना, परिश्रम, तपस्या और प्रेम से काम लिया, जिस कारण ऐसे त्यागी योद्धा सिक्ख उत्पन्न हुए। अपनी साधना को सफल होता देख कर जो प्रसन्नता गुरु जी को हुई होगी, वह बताने से कहीं अधिक कल्पना से जानी जा सकती है।

दूसरा, गुरु जी सिक्खों को दृढ़ कराना चाहते थे कि देश और जाति का भला केवल वे पुरुष ही कर सकते हैं जो अपने रक्त से उन को बल और शक्ति देंगे। इस बात की पुष्टि सिक्खों के उन कारनामों से सहल ही हो जाती है जो खालसा धर्म की स्थापना के उपरांत उन्होंने गुरु गोविन्द सिंघ के जीवन-काल अथवा पीछे कर दिखाये।

इस के बाद गुरु जी उन पांचों को तम्बू से बाहर ले आये और केशगढ़ किले में दरबार लगा कर पांचों को ही वर्दी में सजा कर और स्वयं भी वर्दी पहन कर दरिया का जल मंगवाया और एक सर्वलोह के खुले मुंह के भाजन में डाल कर कुछ पतासे भी डाले और अपने खंडे के साथ पांच वाणियों का पाठ कर के अमृत तैयार किया। इस में से प्रत्येक को पांच बार पांच पांच अमृत के चुल्लू पिलाये और प्रत्येक चुल्लू पिलाते समय स्वयं भी और उन्होंने भी "वाहिगुरु जी का खालसा, वाहिगुरु जी की फतह्" का गर्ज कर जयकार किया। इस रीति का नाम गुरु जी ने पाहुल तथा अमृत छकाना रखा और इस पंथ का नाम खालसा और इस संगत का नाम खालसा धर्म रख दिया। उन्होंने सिक्खों के नामों के साथ 'सिंघ' की उपाधि दी और निम्न-लिखित आदेश खालसा धर्म के मौलिक सिद्धान्त बताये।

खालसा धर्म के मौलिक सिद्धान्त--

(१) जो भी खालसा धर्म में प्रवेश करेगा और खालसा धर्म धारण करेगा, वह इस प्रकार पांच सिघों के सम्मुख हो कर ऊपर दरशाई मर्यादा के अनुसार अमृत छकेगा।

(२) जो भी इस प्रकार अमृत छकेगा, उस के नाम के साथ 'सिंघ' शब्द लगाना आवश्यक होगा।

(३) जहां पांच सिघ इकट्ठे होंगे, खालसा धर्म सम्पूर्ण होगा, पांचों में परमेश्वर और पांच ही अमृत छकाने के लिये गुरु रूप होंगे। वे कौन होंगे, उन में भी किसी प्रकार का भेद नहीं होगा। इस दरशाई गई विधि अनुसार उस समय गुरु जी ने भी उन पांच सिघों से अमृत छका और अपना नाम गोविन्द राय से, जिस नाम से वे अब तक पुकारे जाते थे, बदल कर गोविन्द सिघ रखा।

(४) जो खालसा धर्म में प्रवेश करेगा वह सिघ कहलावेगा। वह अपने सिर पर केश धारण करेगा। एक प्रकार का शस्त्र कृपाण अपने पास अवश्य रखेगा, कछहरा (घुटनों तक की काछ) पहनेगा, कंघा और लोहे का कड़ा धारण करेगा। उस समय से ही सिघ इन पांच निशानों को धारण करते हैं, जिन को पांच कक्के (क) कहा जाता है।

(५) सब सिक्खों की एक ही जाति होगी, छोटे-बड़े सब भाई भाई होंगे। पहली जाति-पाति और वर्ण नाश हो गये समझे जायेंगे। प्रत्येक सिघ की पहली जाति खालसा धर्म में प्रवेश पाते ही मिट जायेंगी। सिघ बन कर सब वर्ण एक बर्तन में खायेंगे।

(६) सब सिघ कृति-नाश, कुल-नाश, धर्म-नाश और

कर्म-नाश होंगे; जिस का भाव यह है कि वे अपने भूत से सब प्रकार मुक्त हो कर नये धर्म में प्रवेश करेंगे।

(७) सिंघ के लिये अपनी सारी ताकतों को लोहे पर लगाना आवश्यक होगा। शस्त्र धारण करना, शस्त्र चलाना और युद्ध करना सिंघों का परम् धर्म होगा।

(८) जो भी सिंघ युद्ध में शहीद होगा, युद्ध में योगदान करेगा, दुष्टों का नाश करेगा और लताड़े जाने पर भी दिल और हौसला नहीं हारेगा, वह महान् उच्च पदवी प्राप्त करेगा।

(९) सिंघ कभी भी यज्ञोपवीत नहीं पहनेगा।

(१०) सिंघों को मुक्ति केवल खालसा धर्म से ही प्राप्त होगी।

(११) सिंघ हिन्दू जाति की सब प्रथाओं का त्याग करेंगे, परन्तु उनके तीर्थों, पवित्र भावनाओं और विचारधारा के सम्मान का ध्यान रखेंगे। उनके लताड़े जा रहे धर्म और देश की रक्षा सिंघों का कर्त्तव्य होगा।

(१२) तुर्कों (दुष्टों) का नाश करना सिंघों का कर्त्तव्य होगा।

(१३) सिंघ परमात्मा की पूजा सत्य और शुभ कार्यों द्वारा करेंगे। केवल एक-ओंकार, निरंकार अकाल की पूजा होगी और किसी कृत्रिम की उपासना नहीं की जायेगी।

(१४) सिंघ किसी भी मनुष्य के आगे शीश नहीं झुकावेंगे। वे किसी कबर, मढ़ी, मठ्ठ की पूजा नहीं करेंगे।

(१५) सिंघ सदा गुरु नानक देव जी को अपना गुरु मानेंगे और उन के उत्तराधिकारी गुरुओं का सम्मान करेंगे और उनके उपदेशों पर चलेंगे।

(१६) अमृतसर के सरोवर में कभी कभी स्नान करेंगे, जो सिघों का तीर्थ-स्थान होगा।

(१७) सिंघ जब भी एक दूसरे से मिलें तो 'वाहिगुरु जी का खालसा, वाहिगुरु जी की फतह' उनका अभिवादन वाक्य होगा।

(१८) सिंघ तम्बाकू और अन्य मादक द्रव्यों का सेवन नहीं करेंगे।

(१९) सिंघ खालसे में ईश्वरीय शक्ति का निवास मान कर उस पर विश्वास करेंगे।

खालसा धर्म में प्रवेश पाने से किन को विवर्जित किया ?–

खालसा धर्म की स्थापना के समय गुरु जी ने निम्न-लिखित व्यक्तियों के इस धर्म में प्रवेश करने पर रोक लगा दी :

(१) मसंद—जो उन दिनों धर्मशालाओं का प्रबन्ध करते थे और उन पर अधिकार रखते थे। वे एक तरह से धर्मशालाओं के प्रबन्धक थे जो धीरे धीरे पुजारी बन चुके थे। इस श्रेणी के लोग साधारणत्या कायर, आलसी और निकम्मे हो गये थे।

(२) धीर मल्ली : भाव धीर मल्ल के उपासक तथा सेवक। धीर मल्ल ने गद्दी के लिये झगड़ा किया था और गुरु तेग़ बहादुर का कठोर विरोध किया था। यहां तक कि उन पर गोली चलवाई और सदा उन्हें तंग करता रहा था।

(३) राम रायी : राम राय गुरु जी के चाचा थे। गुरु तेग़ बहादुर और गुरु गोबिन्द सिंघ के गद्दी पर विराजमान होने के समय दोनों बार ईर्ष्या और झगड़ा किया और गुरु साहब को हर तरह का दुःख दिया।

(४) सरगुम : उस समय लड़कियों को जन्म लेते ही मार देने की कुप्रथा जोरों पर थी और गुरु जो ने ऐसे नीचों को अलग रखना ही ठीक समझा। उन पर कोई भरोसा नहीं था कि वे खालसा धर्म में शामिल हो कर भी इस बुरी आदत से बाज आते या न। सिक्खों को बेटी-मारों के साथ मिलाप और शादी-विवाह करने से भी रोक दिया।

गुरु गोविन्द सिंघ जी ने खालसा धर्म की बुनियाद रखने में अपना प्रेम-संदेश पूरा किया। गुरु जी ने खालसा धर्म के स्वर्णिम सिद्धान्तों को संसार के इतिहास तथा समय के पन्नों पर बड़े सुन्दर अक्षरों में लिखा। इस लेख पर गुरु जी ने हस्ताक्षर करने थे और शहादत (गवाही) द्वारा तस्दीक करने का काम बाकी था। गुरु गोविन्द सिंघ जी ने अपने रक्त से इस प्रेम-सन्देश पर हस्ताक्षर किये और अपने चार पुत्रों की शहादत (बलिदान) से इस को तस्दीक करवाया।

जब गुरु गोविन्द सिंघ जी पांच प्यारों की परख कर के उन को खालसा धर्म में प्रविष्ट कर चुके और आप भी प्रवेश पा चुके और खालसा धर्म के आधार-भूत सिद्धान्त भी खालसे के दिलों पर अंकित कर चुके तो जो सिक्ख–इतर खत्री और ब्राह्मण वहां उपस्थित थे, उन्होंने गुरु जी की इस कार्यवाही को बिल्कुल पसन्द न किया। वे उठ कर चल दिये और अपने धर्म और रीतियों में रुकावट और हस्तक्षेप के विरुद्ध हल्ला-गुल्ला करने लगे। गुरु गोविन्द सिंघ ने अपने सिक्खों को संकेत कर के कहा :

"जा की छोत जगत कउ लागै ता पर तूही ढरै ॥
नीचहु ऊच करे मेरा गोविन्द काहू ते न डरै ॥"

उन्होंने कहा कि नीच अवश्य ही उच्च होंगे। यह अकाल

पुरुष का आदेश है, जिस का हमने पालन करना है। जिन लोगों को आज जाति के ब्राह्मण घृणा करते हैं, मेरे पीछे वे ही मेरे उत्तराधिकारी होंगे और सम्मान प्राप्त करेंगे। गुरु गोविन्द सिंघ जी ने अपना वचन निवाहा और उनके विरोध और हल्ले-गुल्ले की कोई परवाह न की।

गुरु गोबिन्द सिंघ जी की जीवन-पद्धति और रहन-सहन–

जो कुछ भी गुरु गोविन्द सिंघ जी के जीवन के सम्बन्ध में पता चल सका है उस का वर्णन न करना जीवन-वृत्तांत लिखने के कर्त्तव्य से मुख मोड़ना और भूल होगी। इस कारण यहां इसके सम्बन्ध में हम कुछ लिखते हैं। गुरु जी का शरीर कुछ भारी और बहुत बलवान था। कद् लम्बा, मुख बहुत ही सुन्दर और तेजवान था। वे बहुत हो परिश्रमी थे। गुरुगद्दी पर बैठे रहने की जगह शिकार में अधिक रुचि और दिलचस्पी रखते थे। बहुत समय शिकार में ही व्यतीत करते और सिक्खों में शिकार का शौक उत्पन्न करते थे। वे रीछ, चीते, शेर आदि जंगली जानवरों का शिकार करते थे।

उन्होंने अस्त्र-शस्त्र विद्या स्वयं भी प्राप्त की और सिक्खों को भी सिखलाई। अपने पुत्रों को भी अस्त्र-शस्त्रों की पर्याप्त विद्या दी। यदि उन को कोई सिक्ख घोड़ा या अस्त्र-शस्त्र भेंट करता तो वे बहुत प्रसन्न होते।

उन को घोड़े पालने और घुड़-सवारी का बड़ा शौक था। आप बहुत जबरदस्त घुड़-सवार थे। तलवार और तीर के धनी थे। आखेट के लिये वे तेग, कटार सिरोही और भाले का प्रयोग करते थे। उनके तबेलों में बहुत बढ़िया घोड़े थे। वे अमीरों की तरह दरबार लगाते थे। उनका एक दीवान था जो

मीर-मुंशी तथा घरेलू प्रवन्ध का काम करता था। वे वस्त्र अमीराना पहनते थे और कमर के साथ सदा तलवार रखते थे।

गुरु गोविन्द सिंघ जी उच्च-कोटि के कवि थे और अपनी देश-भाषा तथा मातृ-भाषा में सब प्रकार की कविता करते थे और खूब करते थे। कविता सुन्दर ढंग और ओज पूर्ण शब्दों में लिखते थे, जिस का बहुत प्रभाव होता था। उनके दरवार में विद्वान, कवि और पंडित पर्याप्त संख्या में उपस्थित थे, जो अपनी विद्वता से उत्तम साहित्य रचते थे। गुरु गोविन्द सिंघ जी उन सब की बड़ी कदर करते थे, हौसला बढ़ाते तथा धन से सहायता करते थे।

उन को प्राचीन इतिहास तथा धार्मिक पुस्तकों के सुनने और अध्ययन करने का बड़ा शौक था वे फारसी और अरबी अच्छी तरह जानते थे। संस्कृत के भी पर्याप्त ज्ञाता थे। युद्धों से सम्बन्धित वारें (वीर-रस प्रधान कवितायें) और कारनामें बड़ी रुचि से सुनते थे और इस में पर्याप्त समय लगाते थे। वे उपनिषद् वेद, उपवेद, पुराण, स्मृतियां आदि भी सुना करते थे और हिन्दुओं की विचारधारा और धार्मिक समस्याओं का उन्हें भली प्रकार बोध था। वे विद्या में निपुण और विद्वानों के मित्र थे। कवियों और विद्वानों को अपने पास रखते थे और उनका बहुत सम्मान करते थे। उन्होंने अपने कई सिक्खों को संस्कृत की विद्या प्राप्त करने के लिये काशी भेजा।

गुरु गोविन्द सिंघ जी श्री गुरु नानक देव जी की भांति राग तथा संगीत की ओर अधिक रुचि नहीं रखते थे, परन्तु,फिर भी वे भजन-कीर्तन प्रति दिन करते और शब्द सुनते थे। भाट्टों से वीरता की कविता तथा वारें सुन कर अति प्रसन्न होते थे और उन में उनका अधिक प्रेम था।

गुरु जी 'नित्तनेम' (नित्य-नियम—नियत पांच वाणियों का सुवह शाम पाठ और चिन्तन) के दृढ़ता से पावंद थे। वहुत सवेरे अमृत वेले (रात्रि के तीसरे पहर के मध्य को सिक्ख अमृत वेला कहते हैं) जागते और सिमरन और प्रभु-भक्ति में लगते। "जपु जी' का पाठ करते और ईश्वरीय वाणी का कीर्त्तन सुनते। सायंकाल के सोदर के दीवान में 'रहिरास' का पाठ सुनते। वे सदा ईश्वर-भक्ति में मगन रहते।

यह कहीं से पता नहीं चलता कि वे होलियों के अवसर पर नाच-रंग में कभी शामिल हुए हों। उस ओर उन की रुचि ही नहीं थी। ऐश-प्रस्ती और रंग-रलियां तो उन के उद्देश्य के विल्कुल ही उलट थीं।

खालसा धर्म गुरु जी के जीवन-काल में कितना फैला ?

गुरु गोविन्द सिंघ जी के उद्देश्य और खालसा धर्म के ढंग और वनावट ने साधारण जाटों तथा हिन्दुओं के दिलों में अपना स्थान वना लिया और वे खालसा वनने लगे। खालसा के सरल और स्पष्ट सिद्धान्तों, स्वतन्त्रता की लगन और उच्च जीवन में विजली जैसी चमक और आकर्षण था, जिस कारण लोग अपने आप खिचे चले आने लगे और थोड़े ही समय में उनके उद्देश्य को भव्य सफलता प्राप्त हुई। हज़ारों लोग गुरु जी के सिंघ वन गये। जाटों को ऊंची जातियों वाले शूद्र समझते थे। गुरु जी के प्रेम के स्रोत की ओर वे ऐसे दौड़े जैसे कोई वहुत समय से व्याकुल प्यासा पानी के स्रोते की ओर भागता है। गुरु गोविन्द सिंघ जी ने वड़े ही सच्चे दिल से और हिन्दुओं के प्रति प्रेम-भावना से इस काम का आरम्भ किया था। साधारण लोगों ने भी इस की पूरी कदर की और खालसा धर्म को गुलामी से निवृत्ति और असली जीवन में प्रवृत्ति का साधन और समय की ललकार समझ कर मन्त्र की तरह धारण किया। इस प्रकार सिंघों की

संख्या दिन प्रति दिन बढ़ने लगी।

इस शक्तिशाली गुण को कैसे अस्वीकार किया जा सकता है कि खालसा धर्म ने उन जातियों को चुम्बक की भांति आकर्षित किया जिन को कभी किसी द्वारा काम पर लगाने का यत्न नहीं किया गया था और जिन जातियों के लोग बिल्कुल निकम्मे, घटिया, नीच और गुलामी के लिये पैदा हुए ही समझे जाते थे।

इस में कोई सन्देह नहीं कि गुरु गोविन्द सिंघ की यह खालसा श्रेणी, जो सच्चे प्रेम, हौसले, हिम्मत और पक्के भरोसे वाली थी, उन ऊंची जातों में से नहीं थी, जो अपने आप को क्षत्रिय कहते थे और अपनी बेटियों को सहर्ष मुस्लमानों को पेश करते थे और न ही उन ऊंची जाति के ब्राह्मणों में से थी, जो अपनी धोती की मर्यादा बचाने के लिये देश को भी बेचने के लिये तैयार थे, जिन की स्त्रियों की इज्जत गज़नी के बाज़ारों में दो दो दीनारों में (सवा रुपये से पौने दो रुपये तक) बिक चुकी थी। यह तो वह श्रेणी थी जो अपने मांस और हड्डियों के ढेर लगा कर निर्दोष हिन्दू कौम के लिये गौरव और सम्मान का ऊंचा चबूतरा तैयार करने में लगी हुई थी। जो सात सौ वर्षों के पुराने अपमान, गर्वहीनता तथा निरलज्जता के दागों को अपने रक्त से धोने और साफ करने के लिये रण-क्षेत्र में बढ़ रही थी। वे अपने प्राणों की आहुति डाल कर अपनी कौम में नया जीवन लाने और नई रूह फूंकने के लिये खालसा धर्म में प्रवेश कर रहे थे, जिस से वे भारतवर्ष को ही खालस भूमि बना सकें। इसी निर्धन टोले को देख कर अपनी बड़ाई के अभिमान और अपनी कुल की शान में पहाड़ी राजाओं ने गुरु गोबिन्द सिंघ को ताना दिया था कि क्या आप इन चिड़ियों से देश की रक्षा करवायेंगे और इन बिल्लियों को शेरों से टक्कर करायेंगे?

उत्तर में गुरु जी ने कहा था :—

"सवा लाख से एक लड़ाऊं,
चिड़ियों से मैं बाज तुड़ाऊं,
बिल्लियों से मैं शेर मराऊं,
तबी गोविन्द सिंघ नाम धराऊं।"

इस बात के सम्बन्ध में असहमति है कि यह गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने किस समय और किस अवसर पर उच्चारण किया, परन्तु इस से किसी को इन्कार नहीं कि यह कथन उन्होंने मर्दों के वचनों की तरह अक्षरक्षः पूरे सिद्ध कर दिखाये। कहा और कर के दिखा दिया।

गुरु जी के उपासक और सिंघ किस मिट्टी के बने हुए थे, किस प्रकार की सच्चाई, दलेरी और श्रद्धा उन के दिलों में अपने गुरु जी के लिये थी, हम उस का कुछ वर्णन पांच प्यारों के समाचार में कर आये हैं। उन सिंघों की वीरता, उत्साह, निर्भयता, युद्ध-भावना तो उन कारनामों से भली-भांति सिद्ध हो जाती है जो गुरु जी के जीवन काल में ही उन्होंने कर दिखाये और बाद में अब तक करते चले आ रहे हैं। यहां हम केवल दो उदाहरण पेश करते हैं :

एक बार जब किसी सिक्ख ने दरबार में गुरु जी को एक बन्दूक भेंट की और गुरु जी ने उस बन्दूक का निशाना परखने के लिये किसी सिंघ की कुर्बानी मांगी, उस समय बहुत से सिंघ आगे आये और उन में से प्रत्येक यही कहता था कि गुरु जी कृपा करिये, मुझे निशाना बनाइये।

एक बार और गुरु जी ने हंसते हंसते एक सिक्ख की ओर संकेत कर के कहा कि उस को ले जा कर फांसी दे दो। इस का कोई कारण, न कोई दोष बताया। बस यही कहा कि गुरु को

उस की ज़रूरत है। उस सिक्ख ने विना हीले-हवाले अपना सिर पेश कर दिया। गुरु गोविन्द सिंघ जी बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे कि ऐसे ही मरजीवड़े और सच्चे भरोसे वाले सिंघों द्वारा ही अत्याचार पीड़ित हिन्दू जाति का उद्धार हो सकता है।

गुरु जी से धार्मिक विरोध और उन पर सैनिक आक्रमण–

क्षत्रिय कुल के राजाओं और ब्राह्मणों ने गुरु जी से क्या व्यवहार किया? वे तो ऐलानिया और खुल्लम-खुल्ला गुरु जी के उद्देश्य और उन के निज के शत्रु बन गये। ब्राह्मणों ने वर्ण-जाति की सीमायें मिटती और जनेऊ लोप होते देख कर बहुत हल्ला-गुल्ला मचाया कि इर्द-गिर्द के पहाड़ी राजाओं का धर्म ही लुट गया है, नष्ट और बरबाद हो गया है। यह कह कर उन्होंने पहाड़ी राजाओं को गुरु जी के विरुद्ध भड़काया। पहाड़ी राजे एक तो इस कारण गुरु जी पर क्रोधित थे कि वे नीची जाति वालों को ऊपर उठा कर उन के बराबर खड़ा किये जा रहे हैं और दूसरा, ईर्ष्या की अग्नि से जलते रहने के कारण उनके दिलों में यह बड़ा भारी भय था कि गुरु जी की बढ़ती शक्ति कहीं उनको जड़ से ही न उखाड़ फेंके। कुछ पहाड़ी राजाओं की गुरु जी से शत्रुता पहले से ही बन चुकी थी। अब ब्राह्मणों ने पहाड़ी राजाओं को उभारा और भड़काया कि गुरु जी हिन्दू धर्म के शत्रु हैं हम सब को मिल कर उन का ऐसा नाक में दम करना चाहिये कि उनको कहीं भी सुख का सांस न मिल सके। पहाड़ी राजाओं को भी गुरु जी ने खालसा धर्म में सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया। परन्तु अपनी कुल और जाति के अभिमान में फंसे हुए इन राजाओं ने इस बात से घृणा प्रकट की और गुरु जी का विरोध करने लगे।

हाय! हिन्दू कौम! तेरे से बड़ा कृतघ्न और कौन हो सकता

है ? तेरे से बढ़ कर अकृतज्ञता किस श्रेणी में होगी ? सच्चे राष्ट्र-भक्त का अपमान तुम से अधिक अन्य कौन करेगा ? सच्चे देश-भक्तों को दुःख और कष्ट देने में तुम से अधिक जंगली और असभ्य अन्य और कौन है ? गुरु गोविन्द सिंघ तो तुम्हारे लिये घर-बार और धन-दौलत न्योछावर करने की तैयारी कर रहे थे, यहां तक कि वे अपने आप को बलिदान करने की तैयारी में लगे हुए थे। वे तुम्हें अनादर की गहरी खड्ड में गिरे हुओं को उठा कर आकाश तक ले जाने की धुन में मग्न थे। पर उस के उलट तुम अपने स्वार्थ, द्वेष और ईर्ष्या के कारण उस के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर रहे हो। इस अकृतज्ञता, शत्रुता, द्वेष और ईर्ष्या के कारण ही तुम सदा गुलामी के पट्टे गले में डाले फिरते रहे हो।

जो होना था हो कर ही रहा। राजपूत क्षत्रियता के जबानी दावेदार और भारत के मूर्ख और असभ्य पहाड़ी राजे गुरु गोविन्द सिंघ के विरोधी बन गये। उनमें से कुछ पहाड़ी राजाओं ने मिल कर गुरु जी को कष्ट देने की तैयारियां आरम्भ कर दीं। गुरु जी का बड़ा और बलवान दिल ऐसी कठिनाइयों और कष्टों से घबराने और डरने वाला नहीं था और न ही उन को कोई हानि पहुंचा सकता था। परन्तु उनके पवित्र उद्देश्य को पर्याप्त चोट पहुंची। उस समय के क्षत्रियों और ब्राह्मणों पर पत्थर-दिली, कायरता और नीचता के जो दाग सदा के लिये लग गये, वे कभी भी उतर नहीं सकते।

पहला वार, जैसे कि ऐसी परिस्थितियों में होता है, पहाड़ी राजाओं ने यह किया कि गुरु जी को कहा कि वे उन के इलाके में से निकल जायें और आनन्दपुर छोड़ दें। उन्होंने यह मांग भी की कि गुरु जी के सिंघों ने उन की प्रजा को जो क्षति पहुंचाई

है, उसके बदले में धन-राशि दें, नहीं तो उन पर सैनिक आक्रमण किया जायेगा। गुरु जी आनन्दपुर को क्यों त्यागते जब कि उनके पिता जी ने ज़मीन मोल ले कर यह नगर बसाया था।

वे क्षत्रिय बलवीर, योद्धा गुरु, जो समूचे भारत को आंततताईओं की कारागार से स्वतन्त्र कराने की सोच रहे थे, उन राजाओं की गीदड़-भबकियां सुन कर अपना फकीरी घोंसला, भाव घर-द्वार छोड़ना कैसे सोच सकते थे? जैसे कि इस वीरता के पुंज योद्धे से आशा की जा सकती थी, गुरु जी ने राजाओं को उत्तर दिया कि धनराशि तलवार से और आनन्दपुर गोली से दिया जायेगा। यह कठोर उत्तर राजाओं को पसन्द न आया।

इस उत्तर से राजपूतों के रक्त में जोश और उफान आया और उन्होंने म्यान से तलवार निकाली और गुरु गोविन्द सिंघ जी की ओर बढ़े। कई आक्रमण किये और कई बार सेनायें चढ़ा कर लाये और हर बार जो परिणाम निकलता रहा, उस का थोड़ा सा संक्षेप वर्णन नीचे किया जाता है।

गुरु गोविन्द सिंघ जी ने हिन्दुओं के इस उजड्डता के तूफान और मुसलमानों की कट्टरता की बाढ़ में खालसा धर्म की स्थापना कर के ब्राह्मणों और मौलानों के झूठे विश्वासों और बेकार मज़हबी नियमों पर तो विजय प्राप्त कर ली थी, परन्तु भारत के मुसलमान शहनशाह की शाही फौजों को हार देनी अभी बाकी थी, जिस के लिये वे अभी योजना बना रहे थे। कई लोगों की यह राय है कि गुरु जी का संकल्प और योजनायें तो व्यर्थ स्वपनों की भांति ही थीं। इतनी बड़ी हकूमत और ताकत का बिना किसी सैनिक सामान के सामना एक बे-कार स्वप्न के सिवा और क्या हो सकता था। गुरु जी के विरुद्ध इस प्रकार कहना विचार पर निर्भर नहीं करता, प्रत्युत यह एक ऐसी आलोचना

है जिस में अधिक बल नहीं। उस समय केवल हिम्मत और हौसले की ही तो आवश्यकता थी। एशिया के सभी प्रभुत्व केवल एक एक मनुष्य की हिम्मत से स्थापित हुए थे : नादर शाह की सल्तनत, बाबर की सल्तनत, आदि। केवल मनुष्य ने कुछ और मनुष्य इकट्ठे किये, धीरे धीरे शक्ति बढ़ती गई और वह शहनशाह बन गया। इसी प्रकार गुरु जी में हिम्मत थी वीरता थी और जानें न्योछावर करने वाले सिघ भी उपस्थित थे। इस में कोई सन्देह नहीं कि वे अवश्य सफल होते, परन्तु कुछ कारण ऐसे थे कि वे अपने उद्देश्य की पूर्ण प्राप्ति अपने जीवन काल में न कर सके और अत्याचारी मुसलमानों के प्रभुत्व की जड़ को पूर्णतः न उखाड़ सके। पर वे अपने युद्धप्रिय सिघों द्वारा ऐसी ज्वाला प्रचण्ड कर गये, जिस में जल कर अत्याचारी मुगल प्रभुत्व अन्त में राख हो गया।

उन के अपने जीवन-काल में उनके उद्देश्य के पूर्ण न हो सकने के कुछ विशेष कारणों में से पहला कारण यह था कि शिवा जी की भान्ति वे चालबाज़ न थे और धार्मिक नेता होने के कारण वे छल-कपट कभी न कर सके और न ही ऐसा करना उन्होंने अपने गौरव के अनुकूल समझा। वे केवल बाहुबल से सफलता प्राप्त करना चाहते थे जो किसी सीमा तक सदैव कठिन होता है। छल, कपट, ठग्गी तो राजनीति के पैंतरे, दाव-पेच और व्यूह-रचना होती है, जिनका गुरु गोविन्द सिघ न कभी प्रयोग करना चाहते थे और न ही वे कभी प्रयोग कर सके। इस लिये उस सफलता से दूर रहे जिसे आलोचक पूर्ण सफलता कहते हैं।

दूसरा कारण यह था कि गुरु गोविन्द सिघ जी की पहाड़ी राजाओं से सुलह-सफाई न हो सकी। वास्तव में ऐसे साधन पैदा होने से पहले ही पहाड़ी राजाओं ने उनके साथ ग्रह-युद्ध

आरम्भ कर दिया। राजाओं ने गुरु जी के साथ धार्मिक विरोध के कारण युद्ध शुरू किया और गुरु जी जैसे आत्माभिमानी बलवान योद्धा के लिये इस युद्ध की ललकार को स्वीकार करने के बिना कोई और चारा ही न रहा। गुरु जी के पूरी तैयारी किये बिना पहाड़ी राजाओं ने घरेलू लड़ाई शुरू करके उनकी सैनिक शक्ति और सामान को, जो पहले ही सीमित था और हानि पहुंचाई और इस प्रकार गुरु जी की मुगल साम्राज्य के विरुद्ध सफलता को और पीछे डाल दिया।

तीसरा कारण यह था : यद्यपि बहुत साहसी और वीर और लड़ाके सिंघ गुरु जी के साथ थे, परन्तु उन को सैनिक शिक्षा का कोई अच्छा अवसर प्राप्त नहीं हुआ था, जब पहाड़ी राजाओं ने लड़ाई उन पर ठोस दी। साथ ही उनके पास पूरा सैनिक सामान और खाद्य-सामग्री भी नहीं थी। किसी देश, जागीर अथवा राज्य की आय तो थी ही नहीं। पहाड़ी राजाओं ने गुरु जी के धर्म में सम्मिलित होने के निमन्त्रण का उत्तर तलवार से दिया और समय से पहले गुरु जी और उन के सिघों को रण-क्षेत्र में निकलने के लिये विवश किया। उन्हों ने कई आक्रमण किये, जिन का विवरण इस प्रकार है :—

पहला आक्रमण :

गुरु जी पहाड़ के सीमा-प्रदेश में शिकार खेल रहे थे कि उस अवसर का लाभ उठा कर राजा आलम चन्द और राजा बलिया ने गुरु जी पर आक्रमण कर दिया। गुरु जी ने अपने मुट्ठी भर साथी सिंघों के साथ, जो शिकार में साथ थे, बड़े साहस और हिम्मत से सामना किया। थोड़ा समय बहुत जबरदस्त टक्कर हुई और राजा बलिया मारा गया और विजय गुरु जी की हुई।

दूसरा आक्रमण :

इस पराजय से क्रोधित हो कर पहाड़ी राजाओं ने सरहिन्द के सूबेदार से सैनिक सहायता प्राप्त की और आनन्दपुर पर आक्रमण कर दिया। तीस दिन तक बड़े ज़ोर-शोर से मुकावला होता रहा। इस लड़ाई में पैंदे खान द्वंद्वयुद्ध में गुरु जी का तीर कान में लगने से मारा गया। दीन बेग मैदान छोड़ कर भाग निकला। सिंघों ने रोहतक तक उसका पीछा किया। इस युद्ध में अजीत सिंघ, गुरु जी के बड़े सपुत्र ने वहुत वहादुरी दिखाई। राजा केसरी चन्द भी इस लड़ाई में मारा गया। इस लड़ाई में लोहगढ़ के किले का मुख्य-द्वार तोड़ने के लिये पहाड़ी राजाओं ने एक मस्त हाथी सेना के आगे लगाया। गुरु जी ने दुनी चन्द नामी एक खत्री सिक्ख को आज्ञा दी कि वह आगे बढ़ कर हाथी से टक्कर ले और उसे आगे वढ़ने से रोके, परन्तु वह भाग गया। फिर गुरु जी ने बचित्र सिंघ को, जो पहले लुबाना जाति का था, और जिस ने खालसा धर्म धारण कर लिया था, आगे बढ़ कर हाथी का सामना करने के लिये आगे वढ़ने का आदेश दिया। बचित्र सिंघ ने आगे बढ़ कर हाथी से टक्कर ली और उस को घायल कर के पछाड़ दिया। इस उदाहरण से उस समय के ब्राह्मणों-क्षत्रियों और गुरु जी के सिघों का अन्तर पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है। जो जाति के क्षत्रिय थे वे कितने गिर चुके थे और उनकी कितनी दुर्गति हो चुकी थी और जिन को गुरु जी क्षत्रिय बनाना चाहते थे वे किस मिट्टी के बने थे। इस जीत के पीछे गुरु जी आनन्दपुर से कूच कर के कीरतपुर चले गये और एक ऊंचे स्थान पर जा टिके।

तीसरा आक्रमण–

पहाड़ी राजाओं ने इस पराजय से लज्जित हो कर फिर सरहिंद के सूबेदार की मिन्नत की और बीस हज़ार रुपया नकद दिया। एक रिवायत के अनुसार भीम चन्द ने अपने खानदान में से एक लड़की का डोला अर्पण करके गुरु जी पर आक्रमण करने के लिये सूबेदार को फिर तैयार किया। इस समय में गुरु जी ने भी कुछ सेना तैयार की और तीन चार किले भी बनवाये, जो आवश्यकता के समय काम में लाये जा सकें। गुरु जी को हिन्द के शहनशाह के विरोध के परिणामों का भी ज्ञान था और वे जानते थे कि ये किले समय पड़ने पर कितने सहायक सिद्ध हो सकते हैं, परन्तु पहाड़ी राजाओं के विरोध ने उन की सब योजनाओं पर पानी फेर दिया। पहली लड़ाई के बाद जो बार बार आक्रमण हुए, उन्होंने गुरु जी को अपनी दशा और सैनिक शक्ति को संभालने और सम्वारने का समय और अवसर ही नहीं दिया। थोड़े से श्रद्धालु सिक्खों के अतिरिक्त उन के पास और था ही क्या ? आय का कोई साधन नहीं था। वे ही सिक्ख खाली पेट, बिना सैनिक-सामान के युद्ध करते थे और वे ही सिक्ख गुरु जी को उपहार और नज़राने दे कर हाथ बटाते थे। गुरु जी ने कुछ पठान भी मुलाज़म रख लिये थे, पर उनकी संख्या इतनी थोड़ी थी कि उन से कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता था। आखिर पहाड़ी राजाओं ने सरहिंद के सूबेदार की सैनिक सहायता से १७ मार्गशीर्ष १७५५ को कीरतपुर पर आक्रमण किया। गुरु जी ने बड़ी वीरता और साहस के साथ सामना किया। परन्तु इतनी बड़ी संख्या में सेना के साथ खुले मैदान में टक्कर लेना बहुत कठिन था, इस कारण गुरु जी आनन्दपुर के किले में चले गये।

गुरु जी के साथ फिर भी जोगा सिंघ जैसे पर्याप्त सावधान सिक्ख थे। जोगा सिंघ इस युद्ध की तैयारी के समय पेशावर में अपना विवाह अधूरा छोड़ कर गुरु जी के पास आ गया था। युद्ध की तैयारी के समय जोगा सिंघ के विवाह का मुहूर्त आ गया था। वह गुरु जी की आज्ञा ले कर पेशावर गया था। जब उस का विवाह हो रहा था, गुरु जी ने आज्ञा-पत्र भेजा कि वह तत्काल चला आये। गुरु जी की आज्ञा मिलते ही जोगा सिंघ विवाह-कार्य अधूरा छोड़ कर उसी समय चल पड़ा और अपने प्रण को निभाया। उस के पिता जी और अन्य परिवार ने यद्यपि उस को रोका, परन्तु उस ने किसी की बात की ओर कोई ध्यान न दिया और वहां से तुरन्त चल पड़ा और गुरु जी की आज्ञा का पालन किया।

कुछ दिन आनन्दगढ़ का घेरा जारी रहा। सिंघ बड़ी वीरता से लड़ते रहे। यहां से गुरु जी राजा सोहली के पास चले गये। उस ने गुरु जी को अपने पास आने के लिये निमंत्रित किया था। अंग्रेज लेखकों ने इस युद्ध की चर्चा कम की है। सब सिक्ख लेखकों ने इस की चर्चा की है।

औरंगजेब की फौज का आक्रमण—

इस के पश्चात गुरु जी दो वर्ष फिर तैयारी करते रहे। यह तो विचार में लाना ही लज्जा की बात है कि गुरु जी के उत्साह, साहस या हिम्मत में इन युद्धों के कारण कोई कमी अथवा ढील आई हो। सिक्खों का साहस, हिम्मत और अनुभव बढ़ चुका था गुरु जी भी उन को आगे बढ़ने की प्रेरणा देते थे। इस समय वे सिंघों को इकट्ठा करते रहे और आने वाले समय के लिये तैयारी में व्यस्त रहे। वे राजा सोहली के इलाके में सैर और शिकार करते रहे। फिर राजा भंवोर के निमंत्रण पर उस के

क्षेत्र में चले गये और कुछ समय वहां बिता कर रवालसर चले गये और वैसाखी का उत्सव वहीं मनाया। वहां से मंडी के राजा दोहर सेन के इलाके में चले गये और वहां एक किला भी बनाया। इस समय गुरु जी के सेवक सिक्ख कुछ भेंट और उपहार ले कर गुरु जी के पास आये थे। राह में राजा कलमोटा ने उन्हें लूट लिया। इस लिये गुरु जी ने अपने सिक्खों के ऐसे अपमान का बदला चुकाने के लिये साहबज़ादा अजीत सिंघ को भेजा। राजा कलमोटा की सहायता के लिये महंत ज्वालामुखी पांच सौ आदमी ले कर पहुंचा। इस महंत ने धार्मिक विरोध के कारण बहुत से पहाड़ी राजाओं को गुरु जी के विरुद्ध बहुत भड़काया। गुरु जी भी अपने सिक्खों और सपुत्र की सहायता के लिये पहुंच गये। राजा कलमोटा ने हार खाई। गुरु जी ने महन्त की खबर ली और सिंघों ने ज्वाला मुखी के गांव को लूट लिया।

कुछ लोग इस लड़ाई का कारण गुरु जी को समझते हैं। निष्पक्षत: पूरी सोच-विचार से यह पता चलता है कि इस में गुरु जी का कोई दोष नहीं था। इस बात में उन का पक्ष सत्य पर आधारित था और उन्होंने जो किया, ठीक किया। गुरु जी की आय का साधन और सैनिक भंडार तो केवल सिक्ख ही थे। यदि उन पर भी रास्ते में डाका डाल कर लूट लेने पर गुरु जी चुप साध लेते तो फिर उन के पास आता ही कौन, उन को क्या सहायता पहुंचती और वे इतना काम भी कैसे करते? गुरु गोविन्द सिंघ जी का उस राजे पर आक्रमण और भविष्य में ऐसा साहस करने से रोकने के लिये डांटडपट करना उचित और स्पष्ट बात थी। इस पर किसी प्रकार का किंतु करना अनुचित प्रतीत होता है। संवत १७५८ के वैसाख मास में गुरु जी आनन्दपुर आये। पहाड़ी राजाओं ने जो आनन्दपुर को लूट कर बरबाद किया था, उस की दुबारा मुरम्मत करवाई। चारों पुत्रों को

अमृत छका कर खालसा बनाया। किले ठीक किये। संवत १७५६ में अलग अलग स्थानों की सैर करते हुए गुरु जी कुरुक्षेत्र के मेले के समय वहां पहुंचे।

अन्त में वे फिर आनन्दपुर लौट आये और जंगी तैयारियों में व्यस्त हो गये। सिक्ख गुरु जी को सच्चा पातशाह कहने लगे और गुरु जी दूर-पास 'सच्चा पातशाह' के नाम से ही प्रसिद्ध हो गये। यह कोई नया पद नहीं था। पहले गुरुओं के सिक्खों ने भी कई बार इसी नाम से गुरु साहबों को सम्बोधन कर के सम्मानित किया था। परन्तु अब इस नाम का ज़ोर-शोर से प्रयोग होने लगा। पहाड़ी राजाओं को तो गुरु जी का तेज-प्रताप पहले से ही कांटे की भांति चुभता था और इस सच्चे पातशाह के नाम से वे बहुत जलते थे। उन्होंने अपना अस्तित्व मिटता जान कर गुरु जी का अस्तित्व मिटाने का फ़ैसला किया और कमर बांध ली। उन्होंने परामर्श किया कि गुरु जी के विरुद्ध औरंगज़ेब को भड़काया और उत्तेजित किया जाये और गुरु जी पर सम्मिलित सैनिक शक्ति से आक्रमण किया जाये। यह पक्का परामर्श और निर्णय कर के एक दूत औरंगज़ेब के पास भेजा, जिस ने शाही दरबार में पहुंच कर औरंगज़ेब को भड़काया और कहा कि जिस सिक्खों के गुरु तेगबहादुर को उस ने कत्ल करवाया था उस के पुत्र गुरु गोबिन्द सिंघ ने अपने सिक्ख इकट्ठे कर के बड़ी शक्तिशाली सेना बना ली है, और उन का एक नया धर्म बना कर वह सिक्खों को मुसलमानों से लड़ाने की पूरी तैयारी कर रहा है। वह स्वयं बादशाह बन बैठा है। वह शाही लिबास पहनता है। सब डाकू और लुटेरे उसके खालसा धर्म में शामिल हो कर उस के मुरीद बन गये हैं। दिन प्रति दिन उस की ताकत बढ़ रही है। यदि इस फूट रहे स्रोत को अभी बंद न किया गया तो फिर यह बाढ़

बन जायेगा और उस को रोकना कठिन हो जायेगा। देर लग जाने से उस पर काबू पाना कठिन हो जायेगा। औरंगज़ेब यह सब कुछ सुन कर भड़क उठा और उस का साम्प्रदायक और जनूनी खून उबलने लगा। उस ने सब पहाड़ी राजाओं का गुरु विरुद्ध होना अहोभाग्य समझा और गुरु गोबिन्द सिंघ के अस्तित्व को मिटाने का दृढ़ इरादा बना लिया।

चौथा आक्रमण–

औरंगज़ेब ने वाज़ीद खान सूबेदार सरहिंद को ताकीदी हुक्म भेजा कि गुरु जी को पकड़ कर दरबार में हाज़िर किया जाये। दिल्ली से अमीर खां दस हज़ारी, निजावत खान और वहीद खान सिपहसालार, सूबेदार सरहिंद को सहायता के लिये भेजे। यह सेना मुख्य राजा, अजमेर चन्द के साथ भेजी गई और पहाड़ी राजाओं की सेना भी साथ शामिल हो गई। १७ फागुन १७५६ को इस सम्मिलित सेना ने आनन्दपुर को घेर लिया। गुरु गोबिन्द सिंघ जी के पास बहुत थोड़ी सेना थी। इस लिये खुले मैदान में इतनी बड़ी सेना से टक्कर नहीं ली जा सकती थी, जिस कारण वे आनन्दपुर से बाहर न निकले। पांच दिन बहुत भयानक युद्ध हुआ। बहुत से सिंघ शहीद हुए, परन्तु सिक्खों ने भी शत्रुओं को बहुत क्षति पहुंचाई। छटे दिन गुरु जी ने किले से बाहर आ कर बड़े ज़ोर से आक्रमण किया और सरदार अज़ीम खान नाम का एक सिपाहसालार और पायंदे खान को गुरु जी ने अपने हाथों से लड़ाई में मारा। हरी चन्द जसवालिया गुरु जी के एक मुलाज़िम मामू खान के हाथों मारा गया। राजा अजमेर चन्द घायल हुआ और अन्त में शाही फौज हार गई। सिक्खों ने शाही फौज का रोपड़ तक पीछा किया और जीत गुरु जी को हुई।

पाँचवाँ आक्रमण—

यह पराजय औरंगजेब के लिये बहुत लज्जाकारी हुई और उस ने गुरु जी के विरुद्ध एक बहुत बड़ी फौज भेजने का निर्णय किया। लाहौर और काशमीर के सूबेदार को भी आज्ञापत्र भेजे गये कि वे सरहिन्द के सूबेदार से मिल कर गुरु जी को रण-क्षेत्र में पछाड़ें और जीता पकड़ कर उस के सामने उपस्थित करें। ज़रा देखिये एक कोने में बैठ कर भक्ति करने वाले फकीर दरवेश का साहस, वीरता और हिम्मत। सारे हिन्दुस्तान का उत्तरी भाग उसके विरुद्ध जंग करने के लिये निकला है। आखिर सूबा दिल्ली, सरहिन्द, लाहौर और काशमीर की सम्मिलित सेना गुरु जी के विरुद्ध कूच कर के आई। दिल्ली से जफर बेग, लाहौर से दिलावर खान और सफदर खान मैदान में आये। गुरु जी को इस टिड्डी-दल सेना की चढ़ाई का समाचार मिला तो उन्होंने भी अपने सिंघों को ललकारा और आवश्यक सामान इकट्ठा किया।

कहा जाता है कि गुरु जी ने दस सहस्र सिंघ इस धर्म युद्ध के लिये एकत्र किये। अजीत सिंह बड़े साहवजादे को केसगढ़ की रक्षा के लिए नियत किया और साथ दो हज़ार फौज दी। माहिर सिंघ और शेर सिंघ को एक हज़ार के साथ लोहगढ़ के किले में रखा। आलम सिंघ और सुकेत सिंघ को तीन हजार सिंघों के साथ दमदमा में स्थित किया और उदय सिंघ को अगम पुर में। यह विभाजन ठीक प्रतीत नहीं होता क्योंकि बड़ी लड़ाई आनन्दपुर के मैदान में हुई और ये सब उस में शामिल थे। सम्भव है ये सव बड़ी टक्कर के समय आनन्दपुर आ गये हों। खैर, गुरु जी स्वयं आनन्दपुर में ही थे और आनन्दपुर को शाही सेना ने चारों ओर से घेर लिया। बड़ी भारी जंग हुई। सिंघ बड़ी बहादुरी से लड़े

और कई बार मुस्लमानों के छक्के छुड़ाये और मुंह फेर दिये। सिंघ जान तोड़ कर लड़े, परन्तु मुस्लमानों को हर बार ताज़ादम सैनिक सहायता मिल जाती थी। उन्हों ने बड़े ज़ोर से आक्रमण किया। ऐन सम्भव था कि मुसलमान आनन्दपुर में घुस जाते कि उस समय अजीत सिंघ मैदान में कूद पड़े। गुरु जी ने भी नाज़ुक मौका देख कर आप धावा किया। बहुत ही भयंकर तथा रक्त-रञ्जित युद्ध हुआ। सिक्खों ने आगे बढ़ कर हमले किये। आखिर अज़ीम खान और दिलावर खान जैसे शाही अफसर मारे गये और संध्या के करीब शाही फौज के पैर उखड़ गये और मैदान से भाग निकली। उस दिन मैदान सिक्खों के हाथ रहा।

दूसरे दिन युद्ध फिर भड़का। गुरु जी दमदमा में थे जब ज़बरदसत खान ने गोला उस ओर चलाया। गुरु जी तो बच गये परन्तु कुछ सिक्ख जो गुरु जी के पास खड़े थे शहीद हो गये। कुछ दिनों तक इसी तरह ज़ोर से हमले होते रहे, जिन को सिक्ख पूरी हिम्मत से रोकते रहे। परन्तु आखिर मुट्ठी भर सिक्ख उस टिड्डी दल फौज से कितनी देर टक्कर ले सकते थे। जब सिक्खों की संख्या कम हो गई तो वे आनन्दपुर के दरवाज़े बन्द करके अन्दर बैठ गये। शाही फौज ने सिक्खों के लिये बाहर से खाद्यसामग्री आनी बन्द कर दी। एक रात अवसर पा सिक्खों ने शाही फौज पर छापा मारा। काफी खलबली मची। शाही लशकर कुछ पीछे हट गया। राजा डडवाल और राजा जसवाल मारे गये। कुछ शाही रसद और सामान सिक्खों के हाथ आया। शाही सेना और सहायता की प्रतीक्षा में वहां ही टिकी रही। अन्त में सब ओर से फौज इकट्ठी कर के और राजपूतों को भी शामिल करके औरंगज़ेब ने वहां बैठी पहली फौज के लिये और सहायता भेजी।

छटा आक्रमण और गुरु जी के दो पुत्रों की कुरबानी :

चैत्र सम्वत १७६१ को शाही सेना ने आनन्दपुर को फिर घेरा डाल दिया। सिक्खों ने बड़े धैर्य और साहस से घेरे के दुःखों और कष्टों को झेला। जब खाने के लिये कुछ न रहा तो सिंघों ने भूखे मरने से लड़ कर मरने को अच्छा समझा। गुरु जी थोड़ी देर और घेरे में रहना चाहते थे, परन्तु कई एक सिक्ख इस पर राज़ी न थे। जो सहमत नहीं थे, गुरु जी ने उन को कहा कि यदि वे आज्ञा का पालन नहीं करना चाहते तो वे लिख दें कि वे गुरु के सिक्ख नहीं। कुछ एक लिख देने के लिये तैयार हो गये और उन्हों ने लिख भी दिया। कितने ही दृढ़-विश्वासी डटे रहे। गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने एक बहुत ही शानदान कारनामा कर दिखाया। प्राण देना तो स्वीकार, परन्तु सिक्खी से इन्कार करना कठिन सिद्ध कर दिया और सिक्खों में खालसा धर्म तथा सिक्खी की भावना को प्राणों से भी प्रिय और मूल्यवार दिखा दिया।

पहाड़ी राजाओं ने एक ब्राह्मण द्वारा गाय की सौगन्ध और आटे से बनी गाय की आकृति के साथ संदेश भेजा और प्रेरणा की कि यदि वे आनन्दपुर खाली कर के छोड़ जायें तो उन का पीछा नहीं किया जायेगा। यह बिल्कुल धोखा था। गुरु जी अपने परिवार और साथियों के साथ किले से बाहर निकल कर कीरतपुर की ओर चल पड़े। शाही फौज ने आनन्दपुर को लूट कर गुरु जी का पीछा किया और अपने इकरार और कसमों को तोड़ दिया। दूसरे दिन गुरु जी सरसा नदी के किनारे कंवलसर पहुंचे। नदी में प्रबल बाढ़ आई हुई थी। पीछे शाही सेना चली आ रही थी, अब गुरु जी ऐसे घिर गये जैसे ट्रांसवाल के युद्ध में

जनरल कराऊंजो चार हज़ार बोयरों के साथ अंग्रेज़ी फौज के असंख्य सिपाहियों के घेरे में आ गया था। एक ओर नदी थी दूसरी ओर पर्वत। फिर अन्त में उस को अपने आप को अंग्रेज़ों के हवाले करना पड़ा। ऐसी ही दशा गुरु जी की थी। आगे नदी फुंकारती और उत्ताल तरंगें उछल रही थीं। कहर के जाड़े में पीछे से शाही फौज तेजी से पीछा करती आ रही थी। गुरु जी के लिये एक और कठिनाई थी कि उनके साथ उन का परिवार था जिस में छोटे बच्चे भी शामिल थे। कुछ सिक्खों ने हिम्मत की और गुरु जी के परिवार और बच्चों को पार ले गये। मुस्लमानों ने पीछे से हमला कर दिया। गुरु जी के जो सिंघ बचे थे डट कर खड़े हुए, परन्तु टक्कर के लिये ताकत न होने के कारण और थोड़ी संख्या होने के कारण वे बिखर गये।

गुरु गोबिन्द सिंघ अपने दो बड़े सपुत्रों और चालीस बचे हुए साथियों के साथ चमकौर की एक कच्ची गढ़ी में दाखिल हो गये। सिक्खों ने इस गड़बड़ी में गुरु जी के दो महलों (पत्नियों) को दिल्ली पहुंचा दिया। गुरु जी की माता ने अपने दो मासूम पोत्रों के साथ अपने पुराने रसोइये गंगा राम ब्राह्मण के घर पनाह ली। उसका समाचार आगे अलग लिखेंगे। यहां हम आप को केवल चमकौर के मैदान में गुरु जी के कारनामे दिखाना चाहते हैं, जिन की मिसाल सारे संसार के इतिहास में कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती।

गुरु जी अपने चालीस साथियों के साथ चमकौर की कच्ची गढ़ी में, जो वास्तव में एक कच्ची हवेली मात्र थी, दाखिल हुए और शाही फौज तथा हिन्दू राजाओं की सेना, जो गुरु जी का पीछा करती आ रही थी, अच्छी तरह जानती थी कि गुरु जी के पास अब कोई सेना नहीं है और गिनती के कुछ ही साथियों के

साथ वे एक कच्ची हवेली की चार-दीवारी में एक शेर की भांति घिरे हुए हैं। ऐसे सुनहरी मौके वे गुरु जी का पीछा नहीं छोड़ना चाहते थे और आसानी से उन को जीते जी कैद करने का अवसर खोना नहीं चाहते थे। शाही फौज ने आ कर उस कच्ची गढ़ी को घेरा डाल दिया।

पाठक स्वयं इस नाजुक समय का अनुमान कर लें। एक ओर शाही लशकर के लाखों सैनिक और दूसरी ओर केवल चालीस असहाय थके-टूटे और भूखे सिंघ! क्या कोई सारी दुनिया के इतिहास के पृष्ठ पलट कर दिखा सकता है कि किसी सेनापति, सिपाहसालार, जरनैल या बादशाह ने केवल चालीस मनुष्यों से, लाखों की संख्या में शाही फौज से टक्कर ली हो अथवा उनके सामने रणक्षेत्र में डटने का साहस किया हो और फिर ऐसी फौज के घेरे से निकल गया हो? ऐसा उदाहरण संसार के इतिहास में बिल्कुल नहीं मिलता और न ही मिलेगा।

गुरु गोबिन्द सिंघ जी कायर, डरपोक, भगौड़े अथवा बुज़दिल नहीं थे जो जान बचाने के लिये वहां से निकले। वे केवल इस लिये (खालसा जी की आज्ञा मान कर) वहां से बच कर निकल गये कि वे अपने उद्देश्य और धार्मिक कर्त्तव्य को पूरा करने के लिये संघर्ष को जारी रख सकें और इस्लामी राज्य के विरुद्ध विद्रोह की प्रचंड ज्वाला नये सिरे से भड़का सकें। यदि वे घबराये होते, कायर या साहसहीन होते और अपने प्राणों के प्रिय समझते तो वे अपने दो पुत्रों को साथ ले भागते। नहीं, नहीं, उन्होंने दोनों पुत्रों को स्वयं युद्ध के लिये भेज़ कर अपनी आंखों के सामने शहीद करवाया और अपने पुत्रों के शहीदी-रक्त से उस प्रेम संदेश अथवा खालसा धर्म के प्रतिज्ञापत्र पर गवाही अंकित की, जिसे वे सुस्ती की मारी, कायर, लज्जा-हीन, कृतघ्न कौम के लिये लाये थे, और पीछे गढ़ी से बाहर निकले। उन्होंने

उस प्रतिज्ञा-पत्र पर अपने दो युवा पुत्रों के शहीदी खून से हस्ताक्षर किये और दो नन्हें निर्दोष बच्चों के बलिदान से उसकी पुष्टि की।

कौन ऐसा कायर है जिस के दिल में रक्त हो, कौन ऐसा धैर्यहीन है जिस की आंखों में दृष्टि हो, कौन ऐसा कुष्ट-मस्तिष्क है कि जिस के दिमाग में गर्व हो और फिर वह गुरु गोबिन्द सिंघ पर कायरता, बेहिम्मती या स्वार्थ का दूषण लगाये? संसार में किसी ने ऐसा साहस, ऐसी निर्भयता, ऐसा भव्य और निर्भय साहस आज तक नहीं दिखाया। जरमनी, रूस और आसट्रिया के शहनशाहों ने लाखों की सेना की उपस्थिति में अपने आप को नैपोलियन के हवाले किया और इस में कोई बुराई नहीं समझी। मिसर के इस्लाम ने नैपोलियन के सामने हज़ारों की संख्या में अपने आप को हवाले किया और इसमें कोई बुराई नहीं समझी। वर्तमान समय की लड़ाई में कराऊंजी जैसे मनचले बोयर जैनरल ने कई तोपों और चार हज़ार सैनिक पास होते हुए भी अपने आप को अंग्रेज के हवाले कर दिया। गुरु गोविन्द सिंघ जी के साहस के साथ ज़रा न्याय करो कि केवल चालीस आदमियों के साथ जब वे चमकौर की गड़ी में शाही फौज के घेरे में आ गये तो शाही फौज के सिपाहसालार ने पैग़ाम भेजा कि अब आप अपने आप को फौज के हवाले कर दीजिये और अपने खालसा धर्म को छोड़ दीजिये तो गुरु जी ने अपने आप को उनके हवाले नहीं किया। उनके सुपुत्र ने इस पैगाम का उत्तर अपनी कृपाण के साथ दिया। गुरु जी ने अपने एक सिक्ख द्वारा उत्तर भेजा कि अकाल पुरुष की आज्ञा हमें अपने आप को शत्रु के हवाले करने की नहीं, वरन् लड़ मरने को है। अकाल पुरुष की आज्ञा हमें धर्म छोड़ने की नहीं, प्रत्युत धर्म का प्रचार करने की और फैलाने की है।

गुरु जी के पास केवल चालीस जानें ही बाकी थीं। फिर भी उन चालीस के साथ उन्होंने अपने कथन के अनुसार 'चिड़ियों से मैं बाज तुड़ाऊं, सवा लाख से एक लड़ाऊं' सारा दिन शाही फौज से डट कर टक्कर ली। क्या यह कहना सत्य नहीं कि ऐसा महापुरुष, वीर योद्धा (संत-सिपाही) जमाने की आंख ने अभी तक नहीं देखा? सारी कौमें अपने बहादुरों और शहीदों पर जितना गर्व करें और सनमान करें, उचित है; पर जो गर्व हिन्दू जाति को गुरु गोविन्द सिंघ जी पर है उसका मुकाबला सारे संसार में और विशाल जगत में कोई कौम नहीं कर सकती।

गुरु जी चमकौर की गढ़ी मे घिरे हुये सारा दिन अपने चालीस जवानों को लड़ाई के मैदान में भेजते हैं। हर अवसर और स्थान पर सहायता के लिये स्वयं तलवार लेकर पहुंचते हैं और तीक्ष्ण तीरों से सहायता करते और आगे बढ़ते शत्रु को पीछे धकेलते हैं। गुरु गोविन्द सिंघ जी अपनी आंखों के सामने अपने प्रिय पुत्रों को अपने उद्देश्य पर प्राण न्योछावर करते देख कर उफ नहीं करते, शोक नहीं करते, आंसू नहीं बहाते, दुःख नहीं मनाते; उद्देश्य का त्याग नहीं करते, अपितु अकाल पुरुष का धन्यवाद करते हैं।

रुस्तम की कहानी तो आप को स्मरण होगी, जब उसने अपने पुत्र का भूल से वध किया और पीछे पता लगने पर वह कैसे रोता, पछताता, गिड़गिड़ाता और मूर्छित हो जाता था। नैपोलियन जैसा वीर भी रूस के युद्ध में अपने एक बहादुर जरनैल की मौत पर कैसे विरलाप करता है और आंसू गिराता है। राम चन्द्र अपने भ्राता लक्षमण के मूर्छित होने पर रोते नहीं थकते थे और हनुमान को पहाड़ से संजीवनी बूटी लाने के लिये कहने को विवश थे। परन्तु गुरु गोबिन्द सिंघ जी ही थे कि अपने बड़े बेटे

का बलिदान देकर साहस नहीं खोया। वह महाबली अपने कार्य में रत रहा। बड़े पुत्र अजीत सिंघ की शहीदी के बाद दूसरा बेटा, जिस की आयु अभी उस समय चौदह-पन्द्रह वर्ष थी, पिता जी के सामने आ कर पूछता है पिता जी अपने भ्राता का बदला लेने के लिये मुझे भी शत्रु से युद्ध करने की आज्ञा दीजिये तो गुरु जी अपने पुत्र की बाल्यावस्था और अपने वात्सलय को भुला कर उसकी निश्चित मृत्यु को भी प्रत्यक्ष देखते हुये कहते हैं कि हां बेटा, जाओ और अपने रक्त से मेरे प्रतिज्ञा-पत्र (खालसा धर्म के सिद्धान्तों का हस्तलेख) को पूरा करो जिस से मैं तुम्हारे और तुम्हारे भ्राता के रक्त से हस्ताक्षर कर के उसको मुकम्मल करूं और मेरा उद्देश्य और प्रण सफल हो।

पुत्र युद्ध-क्षेत्र में जाने से पहले पानी की मांग करता है और पिता कहता है कि अब तुम्हें यहां पानी की आवश्यकता नहीं। जाओ, तुम्हारा पानी वह खून है जो अपनी शहादत द्वारा तुम बहाओगे। जाओ, रणभूमि में जाकर शहादत का शरबत पिओ। तुम्हारा प्यासा रहना इस बात का सबूत होगा कि खालसा धर्म अपने धर्म के शत्रुओं के खून का प्यासा है। जिस रास्ते से तुम्हारा भ्राता स्वर्ग पधारा है, उसी रास्ते से तुम भी जाओ। आज्ञाकारी वीर सपुत्र अपने गुरुदेव पिता के उद्देश्य के पूरा और आज्ञा का पालन करने के लिए तलवार खेंच कर रण-क्षेत्र में पिता जी की आंखों के सामने कूद पड़ा और अपने प्रिय भ्राता की भान्ति अपना रक्त अत्याचार से पीड़ित हिन्दू कौम की रक्षा के लिए बहा दिया। क्या गुरु गोविन्द सिंघ जी कायर और डरपोक थे? नहीं, कदापि नहीं। वह मुंह ही काला है और उस मुंह में जलती राख पड़े जिसमें से ये शब्द निकलें। यदि वे गढ़ी में से निकले तो इस आशा से कि दुनिया उम्मीद पर ही कायम है। 'जब तक

स्वास तब तक आस'। वे इस आशा और इस उत्साह भरे दिल से निकले कि देश और कौम की कुछ और सेवा करने का इश्क उनमें था और उस सेवा के इश्क की चिंगारी ने उनके जोश और दिल की धड़कन में कोई कमी नहीं आने दी थी और इन्हें कायम रखा था। यदि वे अपनी रक्षा चाहते थे तो क्या उनको अपने पुत्र प्रिय नहीं थे और वे उनकी रक्षा नहीं चाहते थे? यदि वे अपनी जान बचा कर निकल सकते थे तो क्या वे अपने पुत्रों के प्राण बचाने के लिए उन को साथ लेकर नहीं निकल सकते थे? नहीं, उन्हों ने तो स्वयं ही अपने पुत्रों का बलिदान ऐसे आलोचकों और जबानदराजों के लिये दिया था कि संसार यह न कहे कि गुरु ने अपने प्यारे सिंघ तो शहीद करवा दिये और अपने पुत्रों को छाती से लगाये रखा।

संध्या तक सिंघ बड़े जोश से लड़ते रहे और पैंतीस उस युद्ध में शहीद हो गये। केवल पांच दया सिंघ, धरम सिंघ, मान सिंघ, संगत सिंघ आदि बाकी रह गये। पाठक ज़रा देखें कि केवल छः आदमियों का जत्था है, पर शाही फौज उनको पकड़ नहीं सकी।

रात के अन्धेरे में हवेली का द्वार बन्द किया जाता है। गुरु जी के रोब और भय के कारण किसी को इस कच्ची हवेली में घुसने का साहस नहीं होता। वे बेजोड़ बहादुर, अनुपम साहसी और परम उत्साही रण-भूमि लताड़ते हुये अपने पुत्रों के मुख और अपने शहीद प्यारों के हाथ चूमते हुये निकल जाते हैं और अपने पुत्रों के शवों के साथ अपने प्यारे सिंघों के शव भी वहीं छोड़ जाते हैं। गुरु जी की कौन सी प्रिय वस्तु थी जो उन्हों ने छुपा कर रखी हो और कौम पर कुरबान न की हो?

चमकौर की रण-भूमि से निकल जाना, विपत्तियाँ और नन्हें निर्दोष बच्चों का कत्ल :

प्रश्न उत्पन्न होता है कि गुरु जी वहां से निकले कैसे ? कहा जाता है कि बाकी बचे हुये साथी सिघों ने शोर मचाया कि हिन्दुओं का पीर निकला जा रहा है। इस से शाही फौज में गड़बड़ और खलबली मच गई। बहुत हलचल मची, तो मौका ताड़ कर गुरु जी अन्धेरे में गढ़ी से बाहर निकल गये और नंगे पैर ज़खमी दिल से जंगल का राह लिया।

गुरु जी की कहानी यहां छोड़ कर हम पाठकों को नन्हें निर्दोष बच्चों की दर्दभरी और दिल को कम्पा देने वाली कुरबानी का हाल सुनाते हैं। जब आनन्दपुर से निकलते ही शाही फौज ने गुरु जी का पीछा किया तो गुरु जी के कुछ सिक्ख गुरु जी के दो महलों (पत्नियों) को सरसा नदी से पार करा कर दिल्ली की ओर ले गये। गुरु जी की माता जी ने रोपड़ के इलाके के खेड़ी गांव में अपने एक ब्राह्मण रसोइये गंगा राम के घर में आश्रय लिया। उनके साथ गुरु गोबिन्द सिंघ जी के दो नन्हे बच्चे भी थे। माता जी के पास हीरे-जवाहरातों का एक डिब्बा भी था, जिस के लालच ने ब्राह्मण की आंखें और मन बदल दिये। वह नमक-हराम हो गया। उस ब्राह्मण की पत्नि ने उसे बहुत समझाया, परन्तु उस नमक-हराम ने अपनी सारी पुरानी सेवा और भावना पर पानी फेर दिया और बुरे बोलों पर उतर आया। वास्तव में हीरों की चमक ने उसकी आंखें लालच से अन्धी कर दी थीं।

उस गंगू ब्राह्मण ने सरहिंद के सूबेदार के नायब नवाब जानी खान के पास चुगली की कि गुरु गोबिन्द सिंघ के छोटे बच्चे उस के घर में आश्रय ले रहे हैं। ब्राह्मण एक ऐसी

श्रेणी में से हैं जो सदियों से हिन्दू जाति के शरीर से जोंकों की भांति खून पीते आ रहे हैं और उस खून से अपना निर्वाह करते हैं। ये अपने स्वार्थ और पेट के लिये राजा, देश, राष्ट्र और देश-वासियों के साथ ठगी करने में देर नहीं लगाते। भारत का समूचा इतिहास इन ब्राह्मणों की ठगियों, धोखेबाज़ियों, नमक-हरामियों और खुद-गरज़ियों से भरपूर है। न इन को भीख मांगने और न हाथ फैलाने से लज्जा आती है। ये न किसी के किये काम और न की गई भलाई से कृतज्ञ होते हैं। अस्तु, भाव यह कि उस ब्राह्मण की चुगली के कारण नवाब ने उन बच्चों को माता जी के साथ पकड़ लिया और सरहिन्द पहुंचा दिया। बाद में नवाब को ब्राह्मण की नीचता के कारण का पता चल गया तो उसने सारा धन-माल, हीरे-जवाहर, जिन को देख कर ब्राह्मण का दिल बेईमान हो गया था, उस से छीन कर अपनी तिजोरी में डाल लिये। इस सेवा का बदला उस ब्राह्मण देवता को यह मिला कि उस की जान बख्श दी गई।

गुरु जी के दो बच्चे जो सूबेदार के पास भेजे गये उन में से एक का नाम ज़ोरावर सिंघ और आयु नौ वर्ष थी और दूसरे का नाम फतह सिंघ और आयु सात वर्ष थी। वहां ले जा कर उन दोनों भाईयों को उनकी दादी समेत किले के एक बुर्ज में कैद कर दिया गया। यह बुर्ज अब तक चंडाल बुर्ज या ठण्डा बुर्ज के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ दिनों के बाद सूबेदार ने उन बच्चों को अपने समक्ष कचहरी (दरबार) में बुलाया और उन्हें इस्लाम कबूल करने और मज़े से शाही ठाट-बाट से जीवन बिताने का प्रस्ताव किया। इस को अस्वीकार करने पर तलवार से कत्ल किये जाने की धमकी दी।

प्रिय पाठको ! क्या आप को पता है उन मासूम नन्हे बालकों

ने इस का क्या उत्तर दिया ? उन्होंने वही उत्तर दिया जो गुरु जी के पुत्रों की शान के अनुकूल और उचित था और जो गुरु जी की इज्जत तथा मान को चार चांद लगाने वाला था और जिस उत्तर की इतनी छोटी आयु वाले बच्चों से कभी आशा नहीं रखी जा सकती थी। उत्तर यह था कि हम गुरु गोबिन्द सिंघ जी के जिगर के टुकड़े हैं, शहीदों के सिरताज, पितामह के पौत्र और आंखों के तारे हैं। हम में हमारे पिता-पितामह का रक्त जीवित है। हम इस्लाम को घृणा की दृष्टि से देखते हैं और हम अपने खालसा धर्म को अपने प्राण बचाने के मोल पर बेचना नहीं चाहते। यदि प्राण जाते हैं तो जायें, परवाह नहीं, परन्तु अकाल की आज्ञा का उल्लंघन करके हम देश और धर्म के शत्रुओं का दीन अपनाने के लिये कभी तैयार नहीं। बड़े बच्चे ने साहस और निर्भयता से भाषण दिया और साथ ही गर्ज कर कहा कि इस्लाम में प्रवेश पा कर भी यदि हम मौत से बच नहीं सकते और फिर यदि हमने मरना ही है तो फिर हमें अपने पिता जी के उद्देश्य के लिये मरना ही उचित है। इस लिये उस उद्देश्य के लिये मरने को हम तैयार हैं।

ऐसे नन्हें और मासूम बच्चों को ऐसी खरी खरी, खुली, झिझक रहित बातें सुन कर सूबेदार हैरान रह गया और क्रोध में आ कर दोनों के सिर तलवार से उड़ाने की आज्ञा दे दी।

सारी दुनिया बेदर्द नहीं होती और न ही सारे दिल ही काले होते हैं। नवाब शेर मुहम्मद खान कोटली ने सूबेदार से इन बच्चों का अपराध पूछा और कहा कि कसूर हो पिता का और सजा पुत्रों को दी जाये, यह किधर का इन्साफ और कहां की शरह है। संभव है कि सूबेदार इन निर्दोषों का खून न ही करता, परन्तु प्रचलित कहावत है कि उसके दीवान सुच्चा नन्द खत्री नें, जिस की गुरु जी से कुछ निजी अनबन थी, कहा :—

"काले ज़हरीले सांप को देखते ही मार देना चाहिये, उसके बच्चों को चुग्गे की बांह में पालना अक्लमंदी का काम नहीं, आखिर भेड़ियों के बच्चे भेड़िये ही होते हैं। इन बच्चों को बचाना अनुचित है।"

हे भारत भूमि ! तेरी सन्तान की यह दशा और करतूत है ! अपने ब्राह्मण बेटे (गंगू) की करतूत तू ने देखी ही है, अब खत्री-पुत्र की करतूत भी देख ! दीवान की शत्रुता पिता से और बदला लेते हैं निर्दोष बच्चों से ! हे भारत भूमि ! तुम्हें ऐसी स्वार्थी और कमीनी सन्तान ने पीड़ित कर रखा है। हे भारत भूमि ! तेरी ऐसी आचरणहीन ईर्ष्यालु सन्तान ने तेरा सत्यानाश कर के दुःखी किया है। जब तेरे अपने बेटे भाईयों के खून के प्यासे हों, बदले की भावना से अपने ही भाईयों का लहू पिये तो फिर गिला किस पर किया जाये और फिर खेद किस बात का। जब तेरी सन्तान ही आपस में कट मरने के लिये तैयार हो और एक दूसरे के खून की प्यासी हो, तो तेरी रक्षा कौन करेगा ? तूने अपने दो ऊंची जाति वाले पुत्रों—ब्राह्मण और खत्री—का हाल तो देख ही लिया। बेचारे और छोटे भाई, शूद्र का हाथ गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने इस लिये पकड़ा था कि वह तुम्हारी रक्षा कर सके। परन्तु यह बड़े भाई इस दुनिया में उसे कैसे उभरने देंगे ? हे भारत भूमि ! तू परमात्मा से अपनी सन्तान के लिये प्रार्थना कर कि वे परस्पर प्रेम करना सीखें और एक दूसरे के लिये सद्भावना उत्पन्न करें और भाई भाई की तरह मेल मिलाप से रहें।

सूबेदार ने दो दिन बाद बच्चों को फिर दरबार में बुलाया और दीन कबूल करने के लिये प्रेरित किया और बहुत सा इनाम जागीर देने के चकमें और ऐश्वर्य का जीवन बिताने के जवानी चित्र उनके सामने प्रस्तुत किये। परन्तु ज़ोरावर सिंघ ने पहले

दिन वाला ही उत्तर दिया कि वे चार दिन की ऐश और झूठे जीवन के लिये अपना धर्म नहीं बेचेंगे। हम गुरु गोविन्द सिंघ के बेटे हैं और मृत्यु से नहीं डरते और न ही हमें मृत्यु का भय दिखाओ। जो जी में आये तुम कर देखो। खेद है तुम पर, यदि तुम ने अपने दिल का अरमान न निकाला और धिक्कार है हम को यदि हम ने मौत का सामना हंसी-खुशी से न किया।

अन्त में निर्दय और बेदर्द सूबेदार ने उन बच्चों को जीते-जी दीवार में चुनवा देने की आज्ञा दी। दोनों भाईयों के इर्द-गिर्द दीवार बनाई जाने लगी और वे हंसते हंसते खुशी से मृत्यु का स्वागत करते अडोल रहे। उनके होंठ नहीं कांपे, उन की आंखों से आंसू नहीं बहे, उन की टांगें नहीं लड़खड़ाईं, उनके चिहरे नहीं पीले पड़े, उनके माथे पर पसीना नहीं आया। वाह! वाह! कितना साहस और कितनी दलेरी, कितनी हिम्मत, कितना जिगरा और कितना बल, शक्ति और जोश! पाठक भी अपने दिल को टटोलें। वे शांत, अडिग और अडोल रहे।

यह हिम्मत, यह रूह, यह खून, यह प्रेम के आवेश की बेपरवाही उनको किस ने दी थी? प्यारे पिता गुरु गोविन्द सिंघ जी ने।

जब दीवार ज़रा और ऊंची होती है और छोटे भाई के चेहरे पर कष्ट का चिन्ह दिखता है तो बड़ा भाई ललकार कर कहता है कि फतह सिंघ! कहो, वाहिगुरु जी का खालसा वाहिगुरु जी की फतह। खबरदार, तुम्हें अपने पिता गुरु गोबिन्द सिंघ जी की कसम, अपनी माता जी के दूध की सौगंध यदि तुम घबराओ और वह संभल जाता है। दीवार छाती तक पहुंच गई और सांस घुटने लगा। ऐसे कष्ट के समय फिर दीन कबूल करने और दुनियां के सुख प्राप्त करने का लालच दिया जाता है

और अस्वीकार करने पर मृत्यु का भयंकर चित्र दिखाया जाता है। परन्तु उनकी ओर से उत्तर मिलता है कि हमें दीवार से पार स्वर्ग दिखाई देता है और इस दुःख की हमें रंचक मात्र भी परवाह नहीं। हमें खालसा धर्म जीवन से अधिक प्यारा है और हम अकाल पुरुष की आज्ञा का पालन करेंगे।

अंत में दीवार सिर तक पहुंच गई और नन्हें निर्दोष बच्चे सदा की नींद सो गये और अपनी मातृ-भूमि भारत की गोद में सदा के लिये शांति से लेट गये। वे दुनिया छोड़ गये, परन्तु सदा के लिये अपना नाम स्थिर कर गये और खालसा धर्म को उजागर कर गये। वे मासूम बच्चे दुनियां पर प्रकट कर गये कि वह कौम सदा ही जीती रहती है जिस में ऐसे वीर बालक उत्पन्न होते हैं। वह धरती पावन-पवित्र है जिस की गोद में ऐसे सुपुत्र पलते हैं। कहां वे तिरस्कृतजन जो कुछ टकों के लिये अपने धर्म को तिलांजलि दे देते हैं और अपना सम्मान गंवाते हैं? कहां वे डींगें हांकने वाले, जो स्त्री के लिये धर्म त्याग देते हैं? कोई मुहम्मदी जमात में शामिल होता है और कोई ईसा के टोले की रौनक बढ़ाता है।

हे मेरे देशवासियो! हम वतनों! ये ही दो बालक थे जिन्होंने अपने पिता के प्रेम-संदेश और आज़ादी की दस्तावेज़ पर अपने रक्त से गवाही लिखी। इन्हों ने सच्चे विश्वासी सपूत और आज्ञाकारी होने का सुबूत दिया। कृष्ण ने जवान और बलवान हो कर अपने बाप के शत्रुओं से बदला लिया। उस का मुकाबला और तुलना हम गुरु गोबिन्द सिंघ जी के इन नन्हें निर्दोष बच्चों की वीरता और हिम्मत के साथ कैसे कर सकते हैं! पिता ने यद्यपि आज्ञा नहीं दी फिर भी वे पिता जी के उद्देश्य और मिशन के लिये कुर्बान हो गये। कृष्ण जी जैसे जवान

तथा बलवान चाहे वे नहीं थे, परन्तु साहस और हिम्मत उन से बढ़ कर दिखलाते हैं। इन मासूम बच्चों को शहीद करने में मुस्लमानों ने ऐसे अत्याचारों से कोई कम अत्याचार नहीं किये जो उन्होंने खुद अपने पैगंबर के मासूम नातियों पर करबला के जंग में किये थे। शीआ मुस्लमान आज तक रो-पीट कर और बाकी मुस्लमान दिल के दर्द द्वारा उनकी याद ताजा रखते हैं, परन्तु सिक्खों ने उन बच्चों की कुर्बानी और दुःख को बड़े अच्छे ढंग से और साहस के साथ सहारा।

जब गुरु गोबिन्द सिंघ जी की माता ने अपने नन्हें पौत्रों की दर्दनाक वार्ता सुनी तो उस असह कष्ट की चोट से उनकी आत्मा भी स्वर्ग सिधार गई। वे यों कहती रहीं कि मेरे प्रिय लाडले बच्चो, मेरे लालो और पौत्रो, मेरे नौनिहालो, जरा ठहरना, मैं तुम्हें लोरियों और थपकियों से सुलाने के लिये तुम्हारे पास उड़ कर आ रही हूं। वह कैसा वक्त और कैसा भयानक समय होगा, जिस का समाचार सुन कर मन बेचैन हो जाता है और कलेजा मुंह को आता है और दिल खून के आंसू बहाने लग जाता है। पता नहीं कितना दुःख, कितनी चिन्ता और कितनी पीड़ा होती है! ईश्वर तेरी इच्छा सदा पूरी होती है, निरंकार तेरी मर्जी सर्वदा अमिट और अटूल है।

गुरु गोबिन्द सिंघ जी का चमकौर से निकलना और बाद के समाचार–

प्रिय पाठको! ये दर्दनाक दृष्य और गुरु जी के चार पुत्रों की शहीदी की झांकी तो आप देख चुके। अब पिता की दर्द-कहानी सुनियें। अंधेरी रात्रि में गुरु जी नंगे-पांव निकल पड़े। अंधेरे में कांटे और झाड़ियां दीख नहीं पड़ती थीं और उन से

वचा भी कैसे जा सकता था। पैर कांटों से छलनी हो गये और खून बह रहा था। फिर भी वे रक्त-रंजित पैरों से सूर्य निकलने तक चलते रहे।

शाही फौज ने अंधेरे में उनका कुछ दूर तक पीछा किया, उन्होंने समझा कि गुरु गोबिन्द सिंघ समाप्त हो गया। सूर्य निकलते ही शवों के ढेरों में से गुरु जी के शव को पहचानने और खोजने का यत्न किया गया। उन की लाश न मिलने के कारण फौज प्रत्येक दिशा में उन को पकड़ने के लिये चल पड़ी।

अब दिन चढ़ आया था और अपने पीछे लगी आ रही सेना का उन्हें अनुमान था। गुरु जी घने जंगल में एक स्थान पर दो ईंटों का तकिया बना कर लेट गये। थके हुए थे और कई रात्रियों का उनींदा और बे-आरामी थी। कुछ नींद आ गई। रात को भी उसी स्थान पर टिके। कुछ खाया पिया नहीं। इस स्थान पर आज कल गुरद्वारा बना हुआ है।

यहां से रात्रि के अंतिम चरण में चल कर कसबा माछीवाड़ा के पूर्व की ओर दिन के समय एक बाग में टिके रहे। इस उपवन में गुरु जी की याद में 'चरन कंवल' के नाम से एक यादगार बनी हुई है। वहां दो पठान भाई नबी खान और ग़नी खान अपने बाग में सैर के लिये आये तो उन्होंने गुरु जी को पहचान लिया। गुरु जी के पास वे घोड़े बेचा करते थे। गुरु जी के वस्त्रों और पहरावे से उन्होंने जान लिया कि वे रण-क्षेत्र से निकल कर आ रहे हैं। यद्यपि वे मुसलमान थे, परन्तु वे गुरु जी के कृतज्ञ थे और गुरु जी से पर्याप्त लाभ उठा चुके थे। उन्होंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया। नमक-हराम नहीं बने और न ही गुरु जी के उपकारों को भुलाया। उन्होंने कृतघ्नता के कलंक से अपने आप को बचाया। उन्होंने गुरु जी का भेद खुलने न दिया। उन्होंने

फौज को खबर न दी, प्रत्युत अपने संरक्षण में उन्हें बहलोलपुर तक पहुंचा दिया।

यहां पर रात्रि के अंधेरे में बिछड़े तीन सिक्ख, जिन्होंने शोर मचाया था कि गुरु निकल गया, फौज की गड़गड़ में से निकल आये थे। मुस्लमानी भेष में गुरु जी की खोज करते करते वे इस स्थान पर गुरु जी से आ कर मिल गये। इस क्षेत्र में गुरु जी की खोज करती करती फौज का एक दस्ता भी आ निकला।

गुरु जी ने यहां गुलावा सिंघ के घर में विश्राम किया। वह गुरु जी को बहलोलपुर के काज़ी पीर मुहम्मद (या मीर मुहम्मद) के घर पहुंचा आया। ये काज़ी गुरु जी के बचपन के मित्र थे। उन्होंने मानवता तथा प्रेम के कर्त्तव्य का पूर्णतः पालन किया।

काज़ी पीर मुहम्मद के घर पर परामर्श हुआ और निर्णय लिया गया कि गुरु जी मुस्लमान पीर की पोशाक पहन लें और 'उच्च के पीर' बन जायें। काज़ी और गनी खान उन का साथ दें और इस प्रकार गुरु जी को 'उच्च के पीर' प्रकट करके उन को मालवा देश पहुंचा दिया जाये। उस समय की रीति थी कि पीर जी को चारपाई पर बैठ कर लोग एक गांव से दूसरे गांव ले जाते थे। इस योजना के अनुसार कार्य किया गया और साथी तीन सिक्खों ने भी पूरे मुस्लमानों वाली पोशाक पहन ली। गुरु जी ने नीले रंग के वस्त्र पहन लिये और उन को चारपाई पर बैठा कर उच्च का पीर मशहूर करते और गांव गांव फिराते वे मालवा देश की ओर चल पड़े।

कितने शुभ थे वे लोग जो गुरु जी को इस प्रकार ले गये ! गुरु गोविन्द सिंघ जी ने बड़ी हिम्मत और साहस से

काम लिया और मुस्लमान के घर शरण ली। यह बात बड़ी आश्चार्यजनक प्रतीत होती है और प्रश्न पैदा होता है, ऐसे संकट और जोखिम के समय गुरु जी ने मुस्लमानों से संरक्षण क्यों प्राप्त किया, जहां खतरा अधिक था और सहायता की आशा बहुत कम ? कारण यह प्रतीत होता है कि गुरु जी बड़े नाड़ी-परीक्षक और समय को समझने वाले थे और उस समय उस इलाके में आस पास उन्हें कोई अपना सिक्ख-सेवक दिखाई नहीं दिया, जहां वे जा के संरक्षण प्राप्त करते। हिन्दुओं की कायरता और स्वार्थ पर उन्हें भरोसा नहीं रहा था। सचमुच यदि वे किसी खत्री अथवा ब्राह्मण के यहां पनाह लेते तो वह अवश्य ही उन्हें खत्म करने के लिये ज़हर मिला कर शरबत पीने के लिये पेश करता। गुरु गोविन्द सिंघ जी ने अपनी तजरबाकार आंखों से देख लिया था कि हिन्दू भरोसे के योग्य नहीं हैं।

गुरु जी का प्रयोग ठीक निकला और मुस्लमानों ने उन्हें संरक्षण दिया और अन्त में मालवे के क्षेत्र तक ले ही गये। मुस्लमान पीर के भेष में घुंगराली गांव पहुंचे और वहां से झंडा निस्तरी से अपने साथी सिंघों के लिये अस्त्र-शस्त्र मोल लिये। वहां से गांव हेहर महंत कृपाल दास के डेरे पहुंचे। उस समय के गद्दीदार ने उन को अपने डेरे में रहने न दिया। कहा कि बादशाह के बागी को वह अपने डेरे में रहने नहीं दे सकता। प्रिय पाठक ज़रा महंत का साहस भी देख लें।

वे रायकोट के रईस राय कल्हा के निवास-स्थान जटपुरा में पहुंचे। उसने गुरु जी का बहुत आदर सत्कार किया, यद्यपि वह भी मुस्लमान ही था। वहां सिक्खों ने गुरु जी को घोड़े और अस्त्र-शस्त्र भेंट किये। यहीं गुरु जी को छोटे पुत्रों और माता जी की शहीदी की खबर मिली, जिस को उन्होंने बड़े शांत-चित्त और

साहस से सुना और ईश्वर की इच्छा पूर्ण होने पर ईश्वर का धन्यवाद किया। गुरु जी ने वचन किया कि एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा कि खालसा ईंट से ईंट वजा कर अपने मासूम निर्दोष भाईयों का वदला लेगा। यह भविष्यवाणी के रूप में सिक्खों को अपने गुरु की ओर से वसीयत थी, जो उन्होंने पूरी कर दिखलाई।

शेखूपुरा, धनौला और नामगराह गांवों में से जाते हुए अगहन, संवत १७६१ को गुरु जी दीना पहुंचे। दशा फिर संभली और मालवे के कुछ लोगों को सिंघ वना कर शस्त्र-वस्त्र इकट्ठे किये और सिंघों को दिये। सिंघों से उपहार प्राप्त किये। इस स्थान से एक पत्र औरंगज़ेब वादशाह को लिखा, जो 'ज़फरनामा' के नाम से प्रसिद्ध है। इस पत्र को कुछ फारसी न जानने वाले सिक्खों ने गुरुमुखी अक्षरों में लिख कर बहुत कठिन बना दिया है। इस से यह समझ पड़ता है और पता चलता है कि औरंगज़ेब ने कसमें खा कर गुरु जी को अपने दरवार में बुला भेजा और उन के सम्मान का वचन दिया और इकरार किया। उस के उत्तर में गुरु जी ने वड़े जोशीले और अनोखे ढंग से पत्र लिखा और औरंगज़ेब के चरित्र को भली प्रकार नंगा किया और उसके मज़हवी फरेव की नकाव उतारी। वड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा कि तेरे कौल-इकरार पर हमें कोई भरोसा नहीं। तू तो बेईमान और बे-दीन है और ऐसे बे-दीन के वायदे पर विश्वास करना उचित नहीं। साथ यह भी लिखा कि वह अपने बलात्कार और अत्याचार से वाज आ जाये, नहीं तो खुदा की दरगाह में उसे कोई उत्तर नहीं सूझेगा और उस के दुष्कर्मों की कोई सफाई नहीं हो पायेगी। साथ यह भी लिखा कि अव वह स्वयं दुनिया के साथ अधिक लगाव नहीं रखते, पर उस को ठीक करने के लिये सिंघ सूरमें सदा तैयार-वर-तैयार वढ़ते तेज के साथ विचरेंगे

और उसके राज्य की जढें उखाड़ने में लगे रहेंगे। सिंघ उस से बदला ले कर और उस के अत्याचारों का हिसाब चुका कर ही सुख का सांस लेंगे।

इस पत्र का विषय इस बात को भली भांति सिद्ध करता है कि गुरु गोबिन्द सिंघ जी अनोखे वीर, हद-दर्जे के निर्भय थे। उन्होंने बादशाह औरंगज़ेब के मुंह पर खरी और सच्ची बात सुनाने में रंचक-मात्र भी भय या संकोच नहीं दिखाया। दीने से चल कर कई गांवों में से होते हुए वे कोटकपूरा पहुंचे। राय कपूरा ने गुरु जी की बहुत सेवा की और बड़ा सम्मान किया। बहुत से घोड़े, नकदी और अस्त्र-शस्त्र भेंट किये। परन्तु गुरु जी की, कोटकपूरे में विश्राम करके शाही फौजों से टक्कर की तैयारी करने की इच्छा पूर्ण न हुई। राये कपूरा इस बात को न माना और वह आप भी इस में शामिल होने के लिये तैयार न हुआ। उस से निराश हो कर गुरु जी आगे गांव ढिलवां कलां पहुंचे, जहां पृथी चन्द सोढी खत्री की सन्तान में से कौल साहब निवास रखता था। वे गुरु जी से बड़े प्रेम-भाव से मिले और गुरु जी को कहा कि अब नीला पहरावा उतार देना चाहिये। गुरु जी ने नीले कपड़े उतार कर आग में डाल दिये। गुरु जी ने ये कपड़े अग्नि में क्यों जलाये ? इस लिये कि सिक्ख इन को अपने पास रख के इन की पूजा न करने लगें।

गुरु जी का यह विचार बहुत अच्छा और दूरदर्शिता भरपूर था, परन्तु सिक्ख तो उन के उपकारों के नीचे दबे हुए थे, उनकी यादगारों और उन की निशानियों को अपने पास संभाल के रखने से कैसे रुक सकते थे। कितने ही चिन्ह उन्होंने संभाल रखे थे, जैसे निशान साहब, चोला साहब, जो आज कल गुरुओं की यादगारी वस्तुओं में शामिल हैं। पर शोक कि इन निशानियों

की एक तरह से पूजा की जाती है और उन को जीविका कमाने का साधन बनाया जाता है। स्मृति-चिन्हों को संभालना अपने पूर्वजों के सम्मान, उपकार और धन्यवाद के लिये आवश्यक था।

इस स्थान पर वे सिक्ख, जो आनन्दपुर में युद्ध समय गुरु जी का साथ छोड़ गये थे, वापस आ गये। जब वे अपने घरों को लौटे तो उनके सम्बन्धियों तथा परिवारों ने उन को बहुत लज्जित और अपमानित किया कि उन्होंने ऐसे नाजुक समय अपने गुरु का साथ छोड़ा था और मुख मोड़ कर आ गये थे। उनका अपने घरों तथा गांवों में टिकना कठिन हो गया और वे अपने परिवारों और बरादरी की नज़रों में गिर गये। विवश हो कर उन्हें अपने गुरु की शरण में लौटना पड़ा।

इस से स्पष्ट सिद्ध होता है कि खालसा धर्म का प्यार और गुरु गोविन्द सिंघ जी का सत्कार प्रत्येक हृदय में घर कर चुका था और उनके दिल प्रेम और श्रद्धा से धड़क रहे थे और सब गुरु जी के मिशन की बढ़-चढ़ कर सेवा करनी चाहते थे। गुरु जी का उद्देश्य लोकप्रिय हो रहा था।

इस समय सरहिन्द के सूबेदार को पता चला कि गुरु गोविन्द सिंघ जी ढिलवां कलां नगर के पास हैं और बहुत से सिक्ख उनके पास फिर इकट्ठे हो गये हैं। सूबेदार कुछ तो अपने गुनाहों के भय से और कुछ औरंगज़ेब को आज्ञा का पालन करने के लिये गुरु जी को पूर्णतः समाप्त करने या कम से कम कमज़ोर करने के लिए चल पड़ा। जब गुरु जी को इस बात का समाचार मिला तो वे भी टक्कर लेने के लिए तैयार हो गये। जो भी सिक्ख उन्हें मिल सका, उसको अपनी छोटी सी सेना में शामिल कर लिया। गुरु जी खिदराणा के रेतीले टीलों में मोरचे बना, सूबेदार सरहिन्द

के आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगे। आखिर वज़ीर खान, सूबेदार सरहिन्द गुरु जी का पीछा करता वहां पहुंचा और माघ की पहली तिथि सम्वत १७६२ को जबरदस्त टक्कर हुई और जम कर लड़ाई हुई। सिंघ बड़े जोश से, वीरता के साथ जानें तोड़ कर लड़े और थोड़ी देर में ही शवों के ढेर पर ढेर लग गये। सिक्खों ने यहां पानी अपने अधिकार में कर लिया। मुस्लमान फौजों को पानी न मिलने के कारण बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ा। उन के सैनिक प्यास से मरने लगे। कितने ही लड़ने से मुंह मोड़ गये और कितने तो लड़ने के योग्य ही न रहे। वज़ीर खान ने पानी पर अधिकार जमाने के लिये कई बार आक्रमण किया, परन्तु हार खाई और पीछे हटना पड़ा। अन्त में वज़ीर खान के सिपाही प्यास के मारे रण-क्षेत्र से भाग निकले। सिंघों ने तीन-चार मील तक उनका पीछा किया। मुस्लमान फौज की बड़ी क्षति हुई और वे पराजित हो कर सरहिन्द लौट गये। जीत गुरु जी की हुई। इस के बाद गुरु जी का निर्जन जंगलों में पीछा करना और भी कठिन हो गया और सूबेदार ने और पीछा करने का इरादा छोड़ दिया।

इन घटनाओं से भली भान्ति सिद्ध होता है कि गुरु गोबिन्द सिंघ जी अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिये सदा तत्पर रहते थे और उचित अवसर की ताक में रहते थे। चमकौर की गढ़ी से निकल आना किसी भय तथा कायरता के कारण नहीं था, अपितु उद्देश्य की पूर्ति के लिये, संघर्ष को जारी रखने और सफलता प्राप्त करने के विचार से अत्यंत आवश्यक था। गुरु जी तो अपना जीवन कौम को अर्पण कर चुके थे और इस उद्देश्य के लिये ही अपना जीवन भेंट करना चाहते थे। अभी बहुत से कार्य करने बाकी थे। धार्मिक उद्देश्य भी पूरा करना था। यह बात विशेषतः

याद रखने वाली है कि राय कपूरा जिसने गुरु जी के साथ मिल कर मुसलमानों के विरुद्ध लड़ना अस्वीकार किया था, मुसलमानों के पक्ष से गुरु जी पर आक्रमण में शामिल हो कर लड़ा। गुरु जी को हिन्दुओं से सहायता तो क्या मिलनी थी। उलटा विरोध और कष्ट ही मिलता रहा, क्योंकि हिन्दू तो परमात्मा को भूल कर पीठ फेर चुके थे। वे परमात्मा से मुंह मोड़ कर स्वार्थ में निमग्न हो चुके थे। उनमें राष्ट्र-भावना का चिन्ह भी बाकी नहीं था और न ही उसकी गंध शेष थी। उन्हों से गुरु जी को क्या आशा हो सकती थी ?

प्रतीत होता है कि उस समय के हिन्दू भी बुद्धि के अन्धे और मस्तिष्क के कुष्टी थे। गुरु जी का उद्देश्य पूर्णतः स्पष्ट और डंके की चोट से प्रकट था। फिर भी हिन्दू गुरु जी का विरोध ही किये जाते थे और उलटा शाही फौजों से मिल कर उन पर आक्रमण करते थे, शत्रुओं के साथ मिल कर तलवार उठाते थे।

जब मुस्लमान फौज रणक्षेत्र से भाग गई, तो गुरु जी स्वयं रण-क्षेत्र में अपने सिक्खों की लाशों के पास पहुंचे और उनके मुखों से अपने रुमाल से खून पोंछा और उनकी वीरता की प्रशंसा की और वरदान दिये। शाबाश वीरो ! तुम तलवार के रास्ते स्वर्ग में जा पहुंचे हो। महां सिंघ माझे के एक सिंघ के शरीर में अभी कुछ श्वास बाकी थे। गुरु जी ने उसके मुख में पानी डाला। उसने अपनी आंखें खोलीं और गुरु जी को अपने सामने देखा। गुरु जी ने प्रसन्न होकर उसे वर मांगने के लिये कहा तो उस ने विनती की, 'यदि आप प्रसन्न हुये हैं तो माझे के सिक्खों का वह बेदावा फाड़ दीजिये, उनका दोष क्षमा कर दीजिये।' गुरु जी ने महां सिंघ की इस प्रार्थना को स्वीकार किया और वह बेदावे का कागज़ कमरबन्द से निकाल कर फाड़ दिया और शहीद होने वाले सिंघों

को फिर से खालसा धर्म के साथ जोड़ लिया।

महां सिंघ का यह कार्य बहुत ही प्रशंसनीय है क्योंकि वह अपनी शहीदी के अन्तिम श्वासों में अपने भाईयों और अपने क्षेत्र वासियों की शुभ इच्छाओं की पूर्ति करके प्राण त्यागता है। महान् हैं वे पुरुष जो अपने देश वासियों की भलाई और गौरव के लिये अपने प्राणों को न्योछावर कर जाते हैं। जो देश तथा राष्ट्र में ऐसे पवित्र विचारों पर चला, वही देश उन्नति की शिखरों पर पहुंचा, उसी देश ने सम्मान और सत्कार प्राप्त किया। सफलता ने प्रत्येक क्षेत्र में उनके पांव चूमे। बलिदान के बिना इस संसार में कभी किसी राष्ट्र तथा देश ने न उन्नति की है और न ही उसका काम सम्पूर्ण हुआ है। राष्ट्रीय कार्यों में बलिदान की सदा, प्रत्येक समय, प्रत्येक काल तथा प्रत्येक देश में आवश्यकता रही है और रहेगी। इस के बिना कोई राष्ट्र बड़ा नहीं कहला सकता और न ही बड़ा बन सकता है। बलिदान उन्नति के प्राण हैं, बलिदान उच्चता का निर्वाण है। राष्ट्रीय सम्मान का साधन बलिदान है, कुरबानी है। गुरु जी ने अन्तिम पहर तक सिक्खों का अन्तिम संस्कार किया और फिर आगे चले गये।

इस स्थान पर इन शहीदों की स्मृति में एक सरोवर बना है, जिसका नाम मुक्तसर अर्थात मुक्ति अथवा निजात का तालाब रखा गया और यहां शहादत प्राप्त करने वालों को 'मुक्ता' अर्थात मुक्ति प्राप्त कह कर सम्मानित किया गया। इस सरोवर के चारों ओर एक बड़ा कसबा भी आबाद हो गया। इसके पीछे गुरु जी बाजीदपुर पहुंचे परन्तु उस गांव के लोगों ने उनको अपने गांव में ठहरने नहीं दिया। इस जंगल में कुछ बराड़ सैनिकों ने वेतन के लिये झगड़ा किया। परन्तु गुरु जी के पास भूख के सिवा और है ही क्या था। इन दिनों कई बार दो-दो दिन सारे साथी सिंघों को

भूखा रहना पड़ता। वेतन कहां से आता ? इसी समय एक श्रद्धालु सिक्ख की ओर से आर्थिक सहायता पहुंच जाने पर वेतन बांट दिया गया, परन्तु दीवान सिंघ नामक सिक्ख ने वेतन लेने से इनकार कर दिया। एक ब्राह्मण फकीर को जो जन्म से ही मुस्ल-मान बन चुका था, अमृत छका कर सिंघ सजा दिया गया और उसका नाम अजमेर सिंघ रख दिया गया।

तदंतर गुरु जी तलवंडी पहुंच गये। वहां पर गुरु जी के महल (पत्नियां) भी दिल्ली से आ पहुंचे। कुछ दिन यहां ठहरने के बाद गुरु जी भटिंडा और दमदमा पहुंच गये। इस स्थान पर गुरु जी ने काफी समय निवास रखा। आम ख्याल है कि क्योंकि गुरु जी ने यहां दम लिया और विश्राम किया, इस लिये इसका नाम दमदमा साहिब पड़ गया। कुछ एक का विचार है कि गुरु जी के महल यहां आ कर मिले। यहां से ही भाई दया सिंघ और भाई धरम सिंघ औरंगज़ेब के पास गुरु जी का जवाबी पत्र (ज़फरनामा) लेकर गये और फिर उत्तर लेकर आये, जिस में औरंगज़ेब ने बड़े नरम ढंग से गुरु जी को दिल्ली आने के लिये आमन्त्रित किया। पहले तो गुरु जी दिल्ली जाने के लिये तैयार हो गये, परन्तु फिर यह सोच कर कि औरंगज़ेब के इकरार और वादों का तो कोई भरोसा ही नहीं और अभी उन्हों ने पर्याप्त और कार्य करने हैं, उन्होंने जाने का संकल्प बदल दिया। अच्छा अवसर देख कर गुरु जी एक बड़े आवश्यक काम में लग गये।

एक रवायत यह भी है कि जो पत्र गुरु जी ने औरंगज़ेब को भेजा वह यहां लिखा। उस में उन्होंने बड़े स्वाभिमान और दृढ़ता से लिखा। गुरु जी ने बड़े साहस और निर्भयता से औरंगज़ेब को बहुत फिटकारा और बुरा-भला कहा। गुरु जी ने स्पष्ट लिखा कि खुदा का कहर तुम पर पड़ेगा। खुदा को शहनशाह दिल्ली

की परवाह और भय नहीं। गुरु नानक देव जी का निर्मल पंथ सर्वश्रेष्ठ है। उन्होंने संकेत किया कि हम अपना कार्य सफलता से निभा चुके हैं और हमारा अब संसार के साथ कोई मोह और सम्वन्ध नहीं और हम अपने अन्त समय को शांति से प्रतीक्षा कर रहे हैं और हमें अकाल पुरुष के अतिरिक्त अन्य किसी का भय नहीं। दीनों और अत्याचार-पीड़ितों की आहें कभी व्यर्थ नहीं जायेंगी और कयामत के दिन तुम्हें तुम्हारे अत्याचारों, बलात्कारों और गुनाहों की सज़ा अवश्य मिलेगी और हम देखेंगे कि तू अपने कुकर्मों की सफाई कैसे पेश करेगा? गुरु जी को औरंगज़ेब ने दूसरी बार भी निमंत्रित किया पर वे नहीं गये।

गुरु ग्रन्थ साहिब का फिर लिखवाना–

गुरु जी ने दमदमा के स्थान पर ग्रंथ साहिब को फिर लिखवाया और इस में अपने पिता, गुरु तेग़बहादुर जी की वाणी भी अंकित करवाई। इस का नाम दमदमा साहब वाली बीड़ पड़ गया। कई लोगों का विचार है कि लिखते समय गुरु जी ने एक दो स्थानों पर कुछ परिवर्तन भी किये, जैसे कि पहला भजन था: 'कहु कबीर जन भए खलासे' और इस के स्थान पर 'कहु कबीर जन भए खालसे' लिखवाया। परन्तु इस के लिये भी कोई विश्वास-योग्य युक्ति उपस्थित नहीं। इस ग्रंथ की नकल करवानी परमावश्यक थी और इस के एक से अधिक कारण थे। करतारपुर वाले धीरमल्ल की संतान ग्रन्थ साहब की बीड़ नहीं दे रही थी और छपाई का कोई रिवाज नहीं था। गुरु जी इस में अपने पिता जी की वाणी शामिल करना चाहते थे। पहले युद्धों में विरत रहने के कारण गुरु जी को समय नहीं मिला था और अब कुछ थोड़ा अवकाश मिलने पर गुरु जी ने इस ग्रन्थ को लिखवाया।

कई लोगों का विचार है कि दशम ग्रन्थ का विशेष भाग भी इसी स्थान पर तैयार हुआ, परन्तु दूसरे विचार के लोग इस को अस्वीकार करते हैं। पर मानने या न मानने के लिये पर्याप्त प्रमाण उपस्थित नहीं। हां, यह अनुमान अवश्य है कि कुछ अवकाश का समय होने के कारण गुरु जी ने इस के लिखने की ओर भी कुछ न कुछ ध्यान दिया होगा। पर इस में पूर्णतः कोई संदेह नहीं कि इस के 'बचित्र नाटक' भाग की रचना गुरु जी ने इस स्थान पर ही की और 'दशम ग्रंथ' को सम्पूर्ण किया। बचित्र नाटक में गुरु जी ने अपने से पहले नौ गुरुओं के जीवन और कारनामों का वर्णन किया है। फिर अपने साथ घटे समाचार लिखे हैं। ईश्वर की महिमा के गुण गाये हैं। इस बात पर विशेष बल दिया है कि जो भी उन्होंने किया है, स्वयं नहीं किया है, प्रत्युत उस अकाल पुरुष की आज्ञा का पालन मात्र किया है।

शेष समय में गुरु जी यहां धर्म-प्रचार ही करते रहे और अपनी संगत को नये सिरे से इकट्ठा करने के यत्न किये। परन्तु बहुत अधिक सिक्ख एकत्र न हो सके।

गुरु गोबिन्द सिंघ जी का दक्षिण की ओर प्रस्थान--

गुरु गोविन्द सिंघ जी दमदमा साहब से अपने उद्देश्य का दूसरे प्रांतों में प्रचार करने के लिये दक्षिण की ओर गये। वे राजपूताने में से गुज़रे। उस ओर जाने का कारण भी यह था कि वे राजपूत राजाओं और राजपूत प्रजा का ध्यान खेंचने के लिये उनके समक्ष अपना उपदेश रखना चाहते थे। जिस जिस स्थान में भी राजपूताने में से निकलते हुए गुरु जी ठहरे, वहां के निवासियों ने गुरु जी का बहुत सत्कार किया। बड़ी इज्जत और शान-मान से उन की आवभक्त की और उन के उपदेश को बड़ी श्रद्धा से और प्रेम से सुना। एक स्थान पर महंत चेत राम दादू

पंथी से मेल हुआ। उस ने गुरु जी का बहुत सम्मान किया और यहां हुई वार्त्तालाप का वर्णन भी आम पुस्तकों में अंकित है।

रास्ते में कार्तिक १७६३ विक्रमी की पूर्णमाशी को पुष्कर राज का मेला देखा। जब गुरु जी अजमेर गये थे तो एक श्रद्धालु सिक्ख ने उनकी स्मृति में एक घाट बनवाया और उस का नाम गोबिन्द घाट रखा। बघौर के इलाके में तम्बू लगा कर ठहरे हुए थे कि वहां औरंगज़ेब के मरने का समाचार मिला। वह संवत १७६४ में मरा। उस की मौत का समाचार सुन कर गुरु जी कुछ देर चुप-चाप, गंभीर और सोच में रहे। उन की वार्त्तालाप अथवा चेहरे से किसी प्रकार की प्रसन्नता का कोई चिन्ह नहीं दिखाई दिया था।

गुरु गोबिन्द सिंघ और बहादुर शाह—

औरंगज़ेब के मरने के बाद तख्त के लिये उसके पुत्रों में खूब तलवार चली और जबरदस्त जंग छिड़ी। उस का पुत्र बहादुर शाह औरंगज़ेब के मरने के समय काबुल में था। अज़ीम शाह ने अपने छोटे भाई काम बख्श को धोखे से बुला कर अपने पिता के पदचिन्हों पर चलते हुए म्यान से तलवार खेंच कर मुराद की भांति, निर्दोष को कत्ल कर दिया। बहादुर शाह का मुकाबला एक कड़े शत्रु से पड़ गया और उस को भय था कि कहीं उस की भी दारा शिकोह वाली दशा न हो जाये। उस ने मुकाबले की कड़ी तैयारी की। बहादुर शाह ने इस समय गुरु गोबिन्द सिंघ जी से भी सहायता मांगी।

अब तक सिक्खों का एक बड़ा सैनिक फिरका अस्तित्व में आ चुका था। सिक्खों की शक्ति का लाभ उठाने का साधन उस को गुरु गोबिन्द सिंघ ही दिखाई दिये। इस में उस ने, हो सकता है कि, यह भी सोचा हो कि यदि वह सफल हो गया तो

पीछे गुरु जी उस का विरोध भी नहीं करेंगे और इस इरादे का भी किसी को सन्देह नहीं था कि गुरु जी इस्लाम की अत्याचारी हकूमत का सफाया करने पर तुले हुए हैं। उस ने दो हिन्दू दीवान गुरु जी के पास सहायता के लिये भेजे। गुरु जी ने भी प्रत्येक पक्ष से सोच कर उस की सहायता करनी उचित समझी। उस समय किसी हिन्दू से सामने का तो प्रश्न ही न था। गुरु जी ने यही उचित समझा कि सिक्खों को केन्द्र से दूर रखने से यह अच्छा होगा कि बनने वाले सम्राट के साथ मिल कर किसी अच्छे अवसर की प्रतीक्षा की जाये और सिक्खों को नियमित सैनिक शिक्षा, सैनिक साधनों और अस्त्र-शस्त्रों से लैस और तैयार किया जाये। इन विचारों से गुरु जी ने उस की सहायता करनी स्वीकार की। जब गुरु जी उसके पास पहुंचे तो उस ने गुरु जी से बड़े सम्मान सहित बरताव किया। आखिर गुरु जी ने बहादुर शाह का साथ दिया। आगरे के पास दोनों भाईयों, बहादुर शाह और आज़िम शाह के बीच जो बड़ी जंग हुई, उस में गुरु जी भी अपनी खालसा सेना के साथ शामिल हुए। यह कथा प्रचलित है, कि हाथी पर सवार आज़िम शाह को गुरु जी ने तीर मार कर गिरा दिया। इस बात में कोई सन्देह नहीं कि गुरु जी ने उस को मारने का यत्न किया हो।

चाहे आज़िम शाह गुरु जी के तीर से मरा अथवा किसी और के तीर से, इस में कोई सन्देह नहीं कि बहादुर शाह की जीत में गुरु जी का बहुत बड़ा योगदान था और इस के बदले में वह गुरु जी को आगरा दरबार में ले आया। गुरु जी कुछ समय आगरा में रहे।

बहादुर शाह जब दक्षिण के अभियान पर गया तो गुरु जी भी उस के साथ दक्षिण को गये। दक्षिण में जाने से पहले अपनी

धर्म-पत्नी सुन्दरी जी को एक पुत्र गोद में लेने की आज्ञा दी, जिस का नाम अजीत सिंघ रखा। बहादुर शाह के साथ मथुरा, भरतपुर, जयपुर होते हुए गुरु जी उज्जैन पहुंचे। बहादुर शाह ने गुरु जी को एक बड़ी सेना का सेनापति बना कर मरहटों के विरुद्ध भेजना चाहा। जिस का अर्थ यह था कि वह गुरु जी को मरहटों से टकरा कर अपना उल्लू सीधा करना चाहता था। परन्तु गुरु जी को इस प्रकार की नीति का अच्छा ज्ञान था और ऐसी चाल को अच्छी तरह समझते थे। इस लिये उन्होंने मरहटों के विरुद्ध जाना पसन्द न किया।

बन्दे को प्रतिकार के लिये तैयार करना–

गुरु जी बहादुर शाह से दूर हो गये। गुरु जी वहां से चल कर कई स्थानों की यात्रा करते नान्देड़ पहुंच गये। वहां एक साधु नारायण दास अथवा माधोदास बैरागी रहता था, जिस को गुरु जी मिले। उस में क्षत्रियों जैसी प्रवृत्ति देखी। गुरु जी ने अनुमान किया कि उस में कुचले जा रहे हिन्दू-धर्म के लिये बलिदान देने की भावना, स्वाभिमान और प्रेम का आवेग विद्यमान था। उस को अपना सेवक बनाया*, परन्तु अमृत न छकाने का कारण

---

*माधो दास को गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने अमृत का दान देकर उसका नाम बंदा सिंघ रखा और बहादुर की उपाधि दी। इस संबंध में डा. गंडा सिंघ जी ने अपनी पुस्तक "बंदा सिंघ बहादुर" में कुछ हवाले इस प्रकार दिये हैं—

अहमद शाह बटालिया :—पस हमांगाह ओ रा पाहुल दादा सिंघ करद वा बा-खुद ब-डेरा आवुर्द (फिर वहीं उसको पाहुल दे कर सिंघ बना दिया और अपने साथ डेरे में ले आये)।—ज़िक्रे गुरुआं, इबतिदाए सिंघां आदि, पृष्ठ ११

(शेष देखो पृष्ठ २१० पर)

यह प्रतीत होता है कि गुरु जी अपने पीछे गुरु नानक देव जी की गद्दी पर गुरु बैठने की पद्धति को बन्द करना चाहते थे। इस से परिवार और सिक्खों में फूट पड़ती थी और धड़ा-बन्दी बढ़ती थी। उन के पीछे किस किस प्रकार की शक्ति, साहस और विचारधारा के पुरुष गुरु बन बैठे। इस से खालसा पन्थ में फूट की बहुत आशंका थी और गुरु जी ने यही विचार बनाया कि अपने बाद इस पद्धति को समाप्त किया जाये और किसी को गुरु न बनाया जाये और उन के उद्देश्य में कोई विघ्न न पड़े।

माधोदास को इस लिये पाहुल न दी गई कि वह गुरुभाई

(पृष्ठ २०९ के फुटनोट का शेष)

अली-उ-दीन, मुफती :—बंदा-ब-इस्तमाए-ईं माअनी अज दिलो जान इरादतमंद शुद व पाहुल ग्रिफता मुस्ताद हंगामा ओ मुहारका गरदीद (बंदा यह सुन कर तन मन से चेला बन गया और पाहुल लेकर जंग के लिये तैयार-बर तैयार हो गया।)—इबारत नामा पृष्ठ ३९

कन्हैया लाल :—बावजूदे कि अव्वल वुह खानदानि बैराग का चेला था, इस सिलसिले से अलहदा होकर गुरु गोबिन्द सिंघ का चेला बन गया और पाहुल लेकर गुरु का सिख हुआ।—तारीखे पंजाब, ५६

इसी प्रकार गणेश दास बडेहरा, वख्त मल्ल, ज़काउल्ला, गुलाम हुसैन खान, इरादत खान, फारैस्टर, जेमज़, ब्राऊन, मैक्रेगर, मुहम्मद लतीफ, श्रद्धा राम फिलौरी आदि।

डा. गंडा सिंघ के उपर्युक्त हवालों के अतिरिक्त ज्ञानी सोहन सिंघ सीतल ने अपनी पुस्तक "बंदा सिंघ शहीद" के पृष्ठ १२-१३ पर कितने और मुस्लमान और अंग्रेज़ लेखकों के हवाले भी दिये हैं जिन से सिद्ध होता है कि बंदा सिंघ को श्री गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने खंडे की पाहुल प्रदान की।—(प्रकाशक)

का दावेदार न बने। यदि पाहुल ही न होगी तो वह खालसे की गुरुआई पर अधिकार नहीं जतला सकेगा और न ही खालसा उसके ऐसे दावे को स्वीकार करेगा। अन्त में उसका नाम बन्दा रख कर उसको सरहिन्द की ओर भेजा और वहाँ तैयार हो गया। बहुत से सिक्खों को हुक्मनामे लिखे गये कि वे बन्दे का साथ दें और उसके साथ मिल कर अत्याचारियों को उनके कर्मों का फल चखायें। गुरु जी ने कुछ मुखिया सिक्खों को उसकी संगत और सहायता के लिये साथ भेजा।

गुरु जी ने बन्दे को भेजते समय उस से पांच वचन लिये : (१)वह ब्रह्मचारी रहेगा, (२) झूठ कभी नहीं बोलेगा,(३) अपना धर्म या गद्दी नहीं चलायेगा, (४) गुरुगद्दी लगा कर नहीं बैठेगा और (५) सब सिक्खों को अपने भाई समान समझेगा।

सिक्खों को हुक्मनामों द्वारा सूचित किया कि वे बन्दे के साथ मिल कर उसका पूर्णतः साथ दें और सहयोग करें। गुरु जी ने उसको अपनी तलवार प्रदान की। बन्दे ने अपना कार्य गुरु जी के जीवनकाल में ही आरम्भ कर दिया और सफलता प्राप्त की।

सरहिन्द को लूटने और बरबाद करने का समाचार जब गुरु जी को मिला तो उन्हों ने कोई प्रसन्नता प्रकट नहीं की। यह कार्य उन के उद्देश्य के अनुसार बहुत बड़ी भूल थी। जो मनुष्य इन सांसारिक सुख और खुशियों का स्वादन करने के लिये नहीं अपितु संसार के भले और अधिक अच्छा बनाने के लिये दुःख और कष्ट सहारने के लिए भेजा गया हो उसको ऐसी तुच्छ सफलता से क्या सुख और प्रसन्नता हो सकती थी।

वास्तव में सच्चाई तो यह थी कि गुरु गोविन्द सिंघ जी यह दर्शाने के लिये आये थे कि बलिदान और कष्टों के खमीर से सुख और शांति का शरीर तैयार होता है। बन्दे की सफलता का

दृश्य और सन्तोष-जनक कार्यवाही देखने का अधिक समय गुरु जी को न प्राप्त हुआ और परमात्मा की ओर से उनको वह बुलावा आ पहुंचा जिसके लिए प्रत्येक को सब समय तैयार रहना चाहिए ।

गुरु गोविन्द सिंघ जी नांदेड़ के इलाके में गोदावरी नदी के तट पर सुंदर प्राकृतिक दृश्यों में अपना तम्बू लगा कर टिके हुये थे। थोड़े समय में उन्हों ने एक भूमि का टुकड़ा मोल ले कर एक मकान बनवा लिया। अफज़ल नगर अथवा अबचल नगर (अविचल) इसका नाम रखा, जहां आजकल इसी नाम का एक गुरुद्वारा स्थित और प्रसिद्ध है। यहां गुरु जी पर्याप्त समय तक रहे और हर ओर से काफी सिक्ख-सेवक यहां आकर इकट्ठे हुये। यहां गुरु जी का समय प्रातः काल भजन-कीर्त्तन में व्यतीत होता, दोपहर को लंगर में भोजन करते, जिसमें सब गरीबों को भी भोजन कराया जाता था। दोपहर के पीछे ग्रंथ की कथा सुनते और कभी कभी शाम को शिकार खेलने निकलते। गुरु जी क्षत्रिय मर्यादा पुरुषोत्तम थे और अपने खालसा के सामने सदा मिसाल कायम करते कि किस प्रकार खालसा को अपना जीवन ईश्वर-भक्ति, निर्धनों और अनाथों की सहायता,क्षत्रियता और वीरता के कार्यों में लगाना चाहिये। यहां ही गुरु जी को समाचार मिला कि १३ ज्येष्ठ, सम्वत १७६४ को बन्दे ने सूबेदार सरहिन्द का युद्ध-क्षेत्र में वध करके ज़बरदस्त बदला लिया है। यह सुन कर खिक्खों ने खुशी मनाई, परन्तु गुरु जी ने बड़े धैर्य और गम्भीरता से कहा कि जो अकाल पुरुष की आज्ञा थी वही हुआ है और किसी प्रकार की प्रसन्नता प्रकट नहीं की। जो दुःखों की कोई परवाह नहीं करता था, कठिनाईयों, कष्टों और विपत्तियों से घबराता नहीं था, वह ऐसी तुच्छ सफलता पर कैसे प्रसन्न हो

सकता था। गुरु जी तो दिल में दर्द रखने वाले और नेक-दिल इनसान थे। वह किसी का खून बहाने और सर्वनाश से किस प्रकार खुश हो सकते थे। हां; कर्त्तव्य की पूर्ति और बात है और कर्त्तव्य ने गुरु जी को विवश किया कि वे अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये ऐसे कठिन और भयानक ढंग अपनायें।

गुरु गोबिन्द सिंघ जी पर घातक हमला--

बहादुर शाह दक्षिण के युद्ध से निपट कर अहमदनगर को जीत कर नांदेड़ के पास से गुजरा और गुरु गोबिन्द सिंघ जी को मिला। उस ने गुरु जी को साथ ले जाने की कोशिश भी की, परन्तु गुरु जी ने इन्कार कर दिया।

*बहादुर शाह को गुरु जी की मौजूदगी शुरू से ही कांटे की तरह चुभती थी। वह भली प्रकार जानता था कि गुरु जी का उद्देश्य क्या है। वह दिल से चाहता था कि जब भी अवसर मिले, गुरु जी को समाप्त कर दे। जब तक गुरु जी का अस्तित्व कायम था, उसके दिल में सहम तथा खटका ही लगा हुआ था। उसके इस सहम और खतरे को सरहिन्द में बन्दा बहादुर के कारनामों और सिक्खों के विद्रोह ने और भी मज़बूत कर दिया था। इसी कारण वह जैसे कैसे गुरु जी का खतरा अपने सर से टालने के लिए तत्पर हो गया। इस लिए उस ने एक कुयोजना तैयार की। वह आप तो वहां से चला गया, परन्तु एक तुरकज़ादे मुस्लमान को, जो गुरु जी का सेवक था, यह कह कर उकसाया कि गुरु गोबिन्द सिंघ उसके बाप-दादा का कातिल है और बाप-दादा के

---

*इतिहासकारों ने लिखा है कि गुरु गोबिन्द सिंघ जी पर कातिलाना हमले का षड़यंत्र सूबा सरहंद की ओर से किया गया।

(प्रकाशक)

खून का बदला लेना मुसलमान का प्रथम कर्त्तव्य है। उसे यह कह कर शर्मिन्दा किया कि तुम इतने निर्लज्ज हो कि अपने बाप-दादा के हत्यारे की सेवा करते हो। इस तरह उसे भड़का कर गुरु जी के वध के लिए तैयार किया और उसे काफी इनाम देने का लोभ तथा वचन भी दिया। इस आदमी का नाम गुलखान था, जो अपने भाई अता-उल्ला खां के साथ गुरु जी की सेवा किया करता था और वह पेंदे खां की औलाद थे, जो गुरु जी के हाथों युद्ध में मारा गया था।

एक गहरी साजिश गुरु जी के विरुद्ध अपना काम कर गई। गुरु जी को उस मुलाजिम के ऊपर विश्वास था।

गुल खां ने ४ भाद्रों १७६४ विक्रमी को गुरु गोविन्द सिंघ जी को बिल्कुल अकेले सोये हुए देख कर उन के पेट में कटार घोंप दी। गुरु जी घाव लगते ही सावधान हो गये और एक हाथ से घाव को दबा कर दूसरे हाथ में तलवार ले कर अपने कातिल पर ऐसा भरपूर वार किया उसे वहीं ढेर कर दिया। ज़ख्म बेशक गहरा नहीं था लेकिन नाज़ुक जगह पर अवश्य था। सिक्ख इकट्ठे हो गए। योग्य जर्राह बुलवा कर मरहम पट्टी की गई और ज़ख्म सी दिया। कुछ ही दिनों में घाव भरने लगा और स्वस्थता के चिन्ह दिखाई देने लगे। गुरु जी ने एक दिन कमान से तीर-अन्दाज़ी के निशाने का यत्न किया तो ज़ोर लगाने के कारण घाव फिर ताज़ा हो गया। सूजन हो गई। घाव को ठीक करने की पूरी कोशिश की लेकिन ठीक न हो सका और दशा दिन-ब-दिन बिगड़ती ही गई।

गुरु जी ने अपने शत्रु अथवा विरोधी श्रेणी के पठान के हाथों घायल हो कर अपने प्रेम-सन्देश और देश की स्वतन्त्रता की सनद की सम्पूर्णता पर अपने गर्म और ताज़ा रक्त के साथ

हस्ताक्षर किए। 'अखर अखर सारो हो लिखत समाप्त' के शब्द तक गुरु जी ने अपने खून की लाल स्याही के साथ ही लिखे, जिस वसीयत या राष्ट्र की आज़ादी की सनद को गुरु जी ने अपने सारे आराम, सुख और खुशियों के बलिदान की स्याही में अपने जिगर का खून पानी को जगह मिला कर देश-भक्ति के कागज़ पर राष्ट्र-प्रेम की कलम के साथ लिखना आरम्भ किया था। अपनी कौम के लिए ही उन्होंने कहा था :

"कभी हम और तुम भी थे आशनां,
तुम्हें याद हो कि न याद हो।"

भाव कि कभी मेरा तेरा भी सम्बन्ध था, तुम्हें याद है कि नहीं। और दिलदारी के साथ लिखा था :

"कितना हवाबि हस्ती का दरिया रवां रहे,
अफसोस मैं न रहूं और जहां रहे।"

भाव यह कि पानी के बुदबुदे के अस्तित्व की नदी कब तक बहेगी ? अफसोस मैं रहूं या न रहूं, परन्तु जहां कायम रहे।

इस तोशे को गुरु जी ने अपने दो बड़े पुत्रों और पांच प्यारों के खून से समाप्त किया और इस पर अपने दो छोटे पुत्रों, मासूम बेटों की कुर्बानी के लहू के साथ गवाही लिखवाई और अपने बलिदान के साथ इस की समाप्ति की।

इस वसीयत का आदि तथा अन्त लहू के साथ लिखा गया। गुरु तेग बहादुर के शहीदी खून के साथ इस वसीयत का आरम्भ हुआ था, गुरु जी के जवान बच्चों के खून से इस का विषय (मजमून) लिखा गया, दो मासूम बच्चों के शहीदी खून से गवाही हुई और गुरु जी के अपने खून के साथ इस की इति हुई।

खालसे के शहनशाह और सच्चे पातशाह के मर्सीए का केवल शीर्षक ही रक्त के साथ नहीं लिखा गया था, उस का सम्पूर्ण दृष्टिकोण, प्रत्येक अक्षर व प्रत्येक पंक्ति रक्त ही के साथ लिखी गई। और लिखी भी ऐसे रक्त के साथ गई, जो कभी भी नहीं सूखेगा और दुनिया के अन्त तक ताज़ा रहेगा।

गुरु जी के घावों के पुनः ताज़ा हो जाने के पश्चात् जितना भी प्रयास उन्हें ठीक करने के लिये किया गया, वह उतने ही खराब होते गए और अन्तिम समय करीब आ पहुंचा।

गुरु जी ने पांच पैसे और नारियल मंगवा कर प्रचलित परम्परा के अनुसार ग्रन्थ जी के आगे रखे, माथा निवाया और खालसे को कहा कि हमारे बाद खालसे के गुरु केवल ग्रन्थ जी होंगे। यह एक ऐसा युगो युग अटल गुरु होगा जो परलोक तक तुम्हारा मार्ग दर्शन करेगा, सदा तुम्हें उपदेश, आत्मिक शान्ति वा प्रकाश प्रदान करेगा। आप ने हमारे पश्चात, किसी भी अवस्था में और किसी भी विपत्ति में किसी मनुष्य को अपना गुरु स्वीकार नहीं करना! सिवाए पूर्ण परमात्मा और इस ग्रन्थ के, किसी के आगे भी अपना शीश नहीं झुकाना और न ही किसी और के सिक्ख सेवक बनना।

अन्तिम उपदेश में गुरु जी ने सिक्खों को आदेश दिया कि वे सदा दृढ़-विश्वासी, पक्के इरादे वाले और उन्नति की ओर अग्रसर रहें। जहां भी पांच सिक्ख एकत्र होंगे, वहीं उन में गुरु गोविन्द सिंघ जी खुद मौजूद होंगे। किसी को खालसा धर्म में प्रवेश करने के लिये अमृत पिलाने का अधिकार केवल पांच सिंघों को ही होगा।

गुरुगद्दी के सिलसिले का अन्त–

गुरु बनाने की प्रथा का अन्त कर के गुरु जी ने बहुत बड़ा काम किया।

गुरु जी बहुत ही अनुभवी, दूर-द्रष्टा अथवा पारदर्शी थे। वह सलीके वाले व निपुण थे। समय की नब्ज की पहचान रखते थे। इसी लिए उन्होंने बड़ी सूझ-बूझ, सुघड़ता व दूर-दृष्टि से इस सिलसिले को समाप्त करके खालसा धर्म को आने वाली अधोगति से बचा लिया। यही कारण है कि तीन सौ साल के बाद भी खालसा धर्म, जहां तक इस के मूलभूत आदर्शों का सम्बन्ध है, अभी तक विशेष कर खालिस अथवा शुद्ध ही है।

पांच सिक्खों को ही अमृत संचार का अधिकार देना, धार्मिक भाईचारे की परम्परा की नींव और नवीन बरादरी की स्थापना थी। इस ढंग से गुरु-डंम और पराधीनता जैसे बुरे और भयानक रोग, जिस की उदाहरणें हिन्दुओं में आम देखी जाती थीं और जो ब्राह्मणी-धर्म की शिक्षा ने पैदा किये थे, का समूल नाश करना था। यह एक ऐसा उद्देश्य था जिस के लिये गुरु जी सारी ज़िन्दगी ही जूझे और किसी भी तरह इस ओर से असावधान नहीं हो सकते थे।

गुरु जी का अन्तिम समय–

ग्रन्थ साहिब को गुरु पद पर आसीन करने के दूसरे दिन १५ कार्तिक, १७६५ संवत को गुरु जी ने स्नान कर के शस्त्र-वस्त्र सजाए और शब्द-कीर्तन के उपरान्त बिस्तर पर लेट गये और वाणी सुनते सदा के लिये इस संसार से "वाहिगुरु जी का खालसा, वाहिगुरु जी की फतह" बुला कर अपनी ज्योति अकाल पुरख में लीन कर गये। सिक्खों ने गुरु जी के शरीर को अग्नि-

कुण्ड में रख कर आहुति को सम्पूर्ण कर दिया। मुसीबत में फंसी हिन्दू जाति के लिए भेजा हुआ व्यक्ति, जिस की रौशनी में हिन्दू-जाति ने दुबारा देखना शुरू किया, जिस की गरमायश से उनके वीरान बागों के सूखे, मुरझाए और कुमलाये पौधों में दुबारा फिर से हरियाली अथवा रौनक पलट आई, काल के अन्धेरे में सदा के लिए छिप गया। राष्ट्र के लिये वह आशाओं की किरण, देश-प्रेम की वह कड़कती बिजली, भारत-भूमि की देश-भक्ति की बूंदों से भरपूर वह मेघ, जिन से हिन्दू-जाति के जलते हृदयों और शरीर को ठण्डक मिलनी थी, उसे काल की अन्धेरी भारत के नभमण्डल से उड़ा कर ले गई। वह दरिया, जिस के निर्मल जल की लहरों से भारतवर्ष के उजड़े हुये खेत, वृक्ष अथवा बूटे फिर से हरा-भरा होने को लालयित रहते, तेज़ बाढ़ बन कर वह गया। वह महान् आत्मा जो निर्जीव हो चुकी हिन्दू-जाति को पुनःजीवित करने आई थी, संसार से लोप हो गई। वह प्रेम से देदीप्यमान दिल, जो हिन्दू-जाति के लिये जिगर का लहू पी कर भी, उसकी भलाई अथवा उन्नति के लिये तड़पता था, हमेशा के लिए ठण्डा हो गया। देश का सच्चा प्रेमी, हिन्द-वासियों का सच्चा मित्र और हमदर्द, ग़म बंटाने वाला, शुभचिंतक और सच्चा अथवा पवित्र मार्ग-द्रष्टा, नेता व जरनैल आखिर चला गया। पर अपनी अस्थियों की खाद और अपने रक्त के पानी के साथ राष्ट्रीय पौधे की कलम लगा गया, जो फूटी, बढ़ी, फूली और फल लाई।

जिस प्रेम भरे दिल से गुरु साहिब ने काम किया, जिस सच्ची तथा दिली-लगन से वह निरन्तर प्रयत्नशील रहे, जिस दर्द भरे दिल से उन्होंने अपने मिशन का आरम्भ और प्रचार किया, जिस जोश तथा उत्साह में उन्होंने अपने परिवार और

अपने खून की गरमायश और लहू वहाया, वह सब प्रयत्न सफल हुये। उन्हें अपना उद्देश्य और सफलता प्राप्त हुई। उन्होंने वह सब कुछ कर दिखाया, जिस सब का उन्होंने अपने मन में संकल्प धारण किया। खालसा जी ! क्या गुरु जी की सफलता की जीती जागती गवाही आप मौजूद नहीं हो ? गुरु साहिब को अन्तिम समय भाव कि ज्योति जोत समाने के समय, पूर्ण भरोसा तथा तसल्ली थी कि वह अपने काम कर चले हैं, अपने कर्त्तव्य पाल चले हैं। जिस फर्ज़ की अकाल पुरुष ने उन्हें आज्ञा दी थी, उसे उन्होंने अधूरा या बीच रास्ते में नहीं छोड़ा था। वह अन्तिम समय हर प्रकार से प्रसन्न तथा शान्त थे और किसी भी तरह की उदासी या गमी उनके चेहरे पर नहीं थी।

शिवा जी मरहट्टा गुरु जी का समकालीन ही था। शिवा जी को जो सफलता प्राप्त हुई उसके साथ मुकाबला और तुलना करके यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि गुरु जी को कामयाबी हासिल नहीं हुई। परन्तु यह निर्णय बिल्कुल ही निर्मूल और अनुचित है। ऐसा निर्णय लेने से पहले सभी घटनाओं पर चिन्तन करना और उन्हें गहराई से जांचना अति आवश्यक है, जिन के बिना सही निष्कर्ष निकालना असम्भव है।

शिवा जी जो काम करता था उसमें राष्ट्रीय भलाई तो शामिल थी, पर उसकी सारी शक्ति तथा यत्न के पीछे स्वार्थ और निजी प्राप्ति की भावना ही समाई हुई थी। गुरु गोबिन्द सिंघ जी का उद्देश्य निरोल निष्काम था। अपने लिये राज-सत्ता और शक्ति प्राप्त करने के लिये जिहाद करना अलग बात है, और इस नीयत से आन्दोलन करना और क्रान्ति लाना कि हिन्दुस्तान, हिन्दू जाति और सारे राष्ट्र को ही आज़ाद करवाया जाये और देश के शत्रुओं को देश में से निकाल दिया जाये,

बिलकुल ही अलग बात है।

शिवा जी अपने लिये युद्ध कर रहा था और गुरु जी दूसरों के लिये। शिवा जी का मनोरथ राज-काज और राज-सत्ता प्राप्त करना था, चाहे उसके निजी शक्ति प्राप्त करने से राष्ट्र को भी लाभ पहुंचता था, परन्तु गुरु जी का मिशन राजनीतिक तथा धार्मिक शक्ति जागृत करके राष्ट्रीयता पैदा करना था और देश की आजादी प्राप्त करना था।

शिवा जी के लिये राजनीतिक शक्ति हासिल करने के लिये रणनीति और राजनीति का सारा भण्डार, झूठ, फरेब, ठगी जैसे हथियार उसके पास बहुत थे, परन्तु गुरु जी के लिये मजहबी पेशवा और धार्मिक नेता होने के नाते शिवा जी वाले भण्डार बिल्कुल ही बन्द थे। गुरु जी निजी बाहुबल के साथ सीधी टक्कर और जम कर की लड़ाई द्वारा सफलता चाहते थे। शिवा जी की जीतों से उनके इर्द-गिर्द के लोगों की भीड़ अपने आप खींची चली आती थी। गुरु गोविन्द सिंघ जी को जीतें प्राप्त करने के लिये आदमी पैदा करने पड़ते थे, उन्हें प्रेरित करना और तैयार करना पड़ता था। शिवा जी की विरोधता हिन्दू जाति की ओर से रंच मात्र भी नहीं हुई थी, परन्तु गुरु जी की अत्याधिक हुई।

गुरु जी ऐसे कारणों के बावजूद भी सफल रहे, वह आशावान और सफल ही ज्योति ज्योत समाये। अपने कर्त्तव्यों का पूरी तरह पालन करके गये। वह जिस फसल को अपने दिल के खून से तैयार कर रहे थे, उसे हरी-भरी और लह-लहाती छोड़ कर गये। यह खेत प्रफुलित और हरा-भरा ही चला आ रहा है और उनके अहसानों तले हिन्दुओं की गरदनें हमेशा ही झुकी और नीची रहेंगी।

गुरु जी के विशेष गुण—

इतना कुछ लिखने पर भी अगर हम गुरु जी के विशेष गुण अंकित न करें तो हमारा कर्त्तव्य अधूरा रह जायेगा। पिछले पन्नों पर जो समाचार हम लिखते आ रहे हैं उनमें ही जो गुण तथा विशेषतायें हम देख चुके हैं, केवल उन्हीं का वर्णन यहां करेंगे। अभी तक उनके गुणों को लिखने की ओर किसी ने प्रयत्न या ध्यान नहीं किया, परन्तु पंजाब के सभी वासी उनसे अच्छी तरह परिचित हैं। मेरी यह पहली कोशिश है कि मैं उनके गुण लिखने के लिए कलम चला रहा हूं और यदि कहीं मैं कोई गल्ती कर जाऊं तो आशा है कि उसे दृष्टि-विगत कर दिया जाएगा। कहीं कहीं इस विषय में कई शब्दों की दुहराई या उनमें भिन्नता, रंगत में अन्तर है तो उसके सिवा कोई चारा नहीं, क्योंकि इस विषय पर अभी तक किसी ने कलम ही नहीं उठाई और अब तक पीछे की लिखी घटनाओं से निष्कर्ष निकालते समय सम्भव है कि किसी विचार या शब्दों की घटा-बढ़ी हो जाये।

गुरु गोबिन्द सिंघ जी सच्चे त्यागी थे और निष्काम देश-भक्त। कृष्ण और भीष्म ने महाभारत में उपदेश करते कहा है कि सब से बड़ा त्यागी पुरुष वह होता है जो दूसरों की भलाई के लिए अपने प्राण त्यागता है और गुरु जी ने दूसरों के हित के लिए न केवल अपने प्राण ही त्यागे बल्कि उन्होंने सब कुछ, जो कुछ भी इस दुनिया में उनका था, और जो किसी इन्सान के पास हो सकता है, वह देश-भक्ति में लगा दिया। जो पाई-पैसा उनके पास आया, सारा राष्ट्र के नाम अर्पण किया। अपना सारा कुटम्ब राष्ट्र पर न्योछावर कर दिया। अपने पांच प्यारे, कौम पर बलिदान कर दिये। अपनी शक्ति तथा बाहुबल को राष्ट्र के नाम लगा दिया। अपनी दिमागी शक्ति राष्ट्र के लिये लगाई। उभरने वाले साहित्य की रचना की और राष्ट्र में नया जीवन

श्रौर साहस पैदा किया। अपने सुख-चैन को राष्ट्र के हित में बलिदान किया। अपने जिस्म के लहू को राष्ट्र पर न्योछावर किया। कौन सी चीज थी जो राष्ट्र के नाम अर्पण नहीं की? कौन सी चीज़ थी जो कौम से छुपा कर रखी? इसी कारण भारतवर्ष में सब से बड़े त्यागी गुरु गोविन्द सिंघ जी ही थे।

त्याग, जो कुछ पास हो, उसको कुर्बान कर देने को कहते हैं। बुद्ध का त्याग था, भीष्म का त्याग भी था। बुद्ध का त्याग संसार के दुःख क्लेश श्रौर तकलीफों से उपराम होकर, भय के कारण था। भीष्म का त्याग स्वार्थ के कारण अपने पिता की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए था।

परन्तु गुरु गोविन्द सिंघ जी का त्याग महात्याग था श्रौर केवल कौम श्रौर देश के लिए था। यह पहला त्याग है जिसे सच्चा त्याग कहा जा सकता है। त्याग यह नहीं कि किसी के पास कुछ हो भी न श्रौर आलस्य वश कोई काम भी न किया जाये श्रौर त्यागी कहलाने लग जाये। त्यागी वास्तव में वह पुरुष है जो अपने पास जो कुछ है उसे कुर्बान कर दे, किसी पर न्योछावर कर दे। भूखों नंगों का त्याग 'त्याग' नहीं कहला सकता। गुरु गोविन्द सिंघ जी ने इतने बड़े त्याग किये श्रौर वह भी निःस्वार्थ श्रौर निष्काम किये। जहां तक उनके अपने स्वयं का सम्बन्ध है, उनके किसी भी त्याग में स्वयं या स्वार्थ का कोई अंश नहीं था। सब कुछ दूसरों की भलाई के लिए ही था। सारे बलिदान केवल पैरों तले रौंदी श्रौर कुचली जा रही हिन्दू जाति के उद्धार श्रौर सुधार तथा प्रफुल्लता के लिये ही थे।

यदि गुरु जी चाहते तो गुरु पद पर विराजमान हो कर हर प्रकार का आराम, सुख, चैन, ऐश, धन, दौलत से माला-माल होकर खुशहाल जीवन व्यतीत कर सकते थे, लेकिन उन्होंने किसी

भी चीज़ की इच्छा या परवाह नहीं की। न धन, न दौलत, न आराम, न शोभा, बात यह कि किसी चीज़ ने भी गुरु जी के दिल में वह स्थान प्राप्त नहीं किया जो दुखियारी हिन्दू जाति और हिन्दू धर्म की रक्षा की भावना ने किया। न कभी किये काम का फल मांगा, न किसी से अपने काम की बड़ाई तथा प्रशंसा की इच्छा की। गुरु जी ऐसे निष्काम देशभक्त थे कि किसी भी शाबाशी या प्रशंसा के मुहताज नहीं थे। गुरु जी का त्याग सच्चे त्याग की उपमा बन गया है। यही उनकी सब से बड़ी उपमा है।

एक ही व्यक्ति में सारे गुण मिलने असम्भव हैं, परन्तु गुरु जी हर ओर से योग्य थे। उच्चकोटि के कवि, धार्मिक नेता, धर्म सुधारक, पारदर्शी सिपाहसालार, भाव फौजी जरनैल। कवि भी ऐसे थे कि कविता में विषय वस्तु और उद्गार अनेक प्रकार के थे। बड़ी सुधी और तीक्ष्ण बुद्धि वाले सुधारक थे, जो बुनियादी कमज़ोरी की जड़ को पहचानते और पकड़ते थे अथवा उसे जड़ से ही उखाड़ देते थे। धार्मिक नेता ऐसे हरमन-प्यारे कि उनके अनेक सिक्ख सेवक उन पर से प्राण न्योछावर कर गये। रण-क्षेत्र के अद्वितीय और निडर सेनापति। दूरदृष्टि वाले सूझवान। सच्चे देश-भक्त, कौम पर से अपना आप लुटा देने वाले, सब कुछ बलिदान कर देने वाले सच्चे आशिक, अनथक राष्ट्र-निर्माता, शहीदों में शहीदों के सिरताज।

कृष्ण जी, राम चन्द्र जी और शंकर अपनी जगह बड़े आदमी थे और उन्होंने भी अपनी अपनी जगह और समय बहुत ऊंचे और बड़े काम पूरे किये। परन्तु गुरु जी का स्थान उन सब से कहीं विशेष है। गुरु जी इन सब से राष्ट्रीय क्षेत्र में बहुत आगे निकल

गए और इन सब को पीछे छोड़ गये, जब कि समय के लिहाज से वह उन सब से काफी बाद में कार्य क्षेत्र में आये थे। कृष्ण जी राजाओं अथवा रजवाड़ों के मन से कायरता को निकालने का बीड़ा उठाते हैं, पर गुरु जी उन प्राणियों को ऊंचा उठा रहे थे और उन में हिम्मत अथवा बल भर रहे थे जो सदियों से रौंदे जाने के कारण मिट्टी में मिल कर मिट्टी हो चुके थे। उन्होंने कभी स्पप्न में भी नहीं सोचा था कि वह ऊंचा देख सकेंगे और सर ऊंचा कर के चल सकेंगे, या फिर रण-भूमि में वह ऐसे कौतक दिखाएंगे और ऐसा शौर्य दिखा कर ऐसी प्राप्तियां करेंगे कि अर्जुन के कारनामे भी भूल जाएंगे। गुरु जी ने फौजी असले के बिना ही सारे भारतवर्ष की मुग़ल सरकार का मुकाबला करके दिखाया।

वह ऊंचे साहस वाले और पक्के इरादे वाले थे। पिता जी के शहीद हो जाने के पश्चात जिस उद्देश्य की उन्होंने कल्पना की और प्रण किया, उसे अन्तिम श्वासों तक निभाया। कोई भी समय ऐसा दिखाई नहीं देता उनके जीवन में, कोई महीना, कोई सप्ताह या कोई दिन जब उन्होंने अपने उद्देश्य से मुंह मोड़ा हो। सारा जीवन वह उसी लग्न में लगे रहे। जो भी धुन उन्होंने धारण की, अन्त तक उसी धुन के धारणी रहे। किसी परिस्थिति में भी उस धुन को अपनी आंखों से ओझल नहीं होने दिया। कोई कष्ट, कोई रंज, कोई चिन्ता, कोई भी सख्ती और मुश्किल या कठिनाई उनकी चिन्तन-शक्ति पर बोझिल न बन सकी और न ही उनके मस्तिष्क पर भी भारी हो सकी।

पाठकगण स्वयं ही अनुमान लगा लें कि एकांतवासी फकीर और एकांतवासी सन्त के पास क्या कुछ रसद अथवा जंगी सामान हो सकता था! आमदनी के कौन से साधन हो सकते थे और

कितना धन हो सकता था! पर किसी भी विचार, कमी या अभाव ने उन के विश्वास और उत्साह में किसी भी किस्म का व्यवधान खड़ा नहीं किया। पुत्रों की शहीदी जैसा बलिदान भी उन्हें ग़मगीन न कर सका और न ही उन्हें अपने उद्देश्य से गिरा सका। माता,पिता,पुत्र और पत्नी,भाव कि किसी की भी जुदाई ने उनकी हिम्मत नहीं तोड़ी। वह अडोल ही रहे। वह स्थिर रूप से प्रभु-भक्ति में लीन, मग्न और मानव जाति का उत्थान करने के मद में मस्त ही ज्योति जोत समाये।

गुरु गोविन्द सिंघ जी हिमालय पर्वत की तरह अचल और अडोल थे। सब कुछ गंवा कर, दाव पर लगा कर देश की स्वाधीनता के लिये किये संग्राम में बड़ी से बड़ी कुर्बानी दे कर भी उन्होंने न थकावट महसूस की और न ही विश्राम या दम लेने की इच्छा प्रकट की। घर घाट गंवा कर, सारा साज़ो-सामान लुटा कर और वतन से बिछुड़ कर जब भी थोड़ी सी फुर्सत मिली, आराम की सांस लेने का अवसर आया, फिर अपना कार्य आरम्भ कर दिया। दु:खों, मुसीबतों, कठिनाइयों और मायुसियों से गुरु जी का साहस बढ़ता, स्वभाव में और ही रंग चढ़ता, चेहरे पे लाली आ जाती। अन्तिम समय तक गुरु जी ने अपने मिशन को अपने सामने रखा और रंचक-मात्र भी इधर-उधर न होने दिया।

गुरु गोविन्द सिंघ जी तो महाबली थे, उन्होंने कभी एक कदम भी पीछे नहीं किया। वह बड़े बहादुर, निडर और उच्च इरादे वाले थे। सिक्खों के छोटे से दल के साथ, जिन के पास न खाने के लिये पर्याप्त राशन था, न पूरे शस्त्रादि थे, शाही फौजों का मुकाबला करते रहे। फिर हर समय दल के अग्रणी रहे।

विश्व के इतिहास में उन्होंने एक मिसाल कायम कर दिखाई

और सिद्ध कर दिया कि वह कितने बड़े दलेर और दृढ़ इरादे के मालिक थे। वह ऐसे रण-बांकरे थे कि केवल चालीस सिक्खों के साथ ही चमकौर की कच्ची गढ़ी में लाखों की गिनती में शाही-फौज के घेरे में होते हुए भी हथियार नहीं डाले और डटे रहे और आखिरी सिक्ख की शहीदी तक मुकाबला किया।

गुरु जी रण-भूमि में एक निपुण सेनापति की तरह अपनी कौम का नेतृत्व करते थे। यही कारण था कि कई बार सिक्खों के छोटे से दल से ही शाही सेनाओं को पराजित कर सके। वह बहुत निडर थे और किसी खतरे की परवाह नहीं करते थे। वह आप कृपाण लेकर हर दिशा में हर समय बिजली की तरह चमकते अथवा गरजते थे। वह बड़े चुस्त, फुर्तीले और जोशीले थे। जिधर आवश्यकता होती तुरन्त पहुंचते।

वह बड़े परिश्रमी थे और हद दर्जे के साहसी थे। आलस्य उन्हें नाम-मात्र भी नहीं था। कष्ट और विपत्तियों से सदा बेपरवाह और बेलाग रहते। बड़े स्वाभिमानी और खुद्दार योद्धा थे। कौम के प्रति दिल में दर्द रखते थे। अपनी आंखों के सामने चार पुत्रों की, भारत माता के लिए बलिदान के अग्नि-कुंड में आहुति दे दी।

घर-बार से दूर, अकेले घूमते हुए, देश और अपने प्रिय सिक्खों से बिछड़ कर भी अपने किसी काम द्वारा या कोई शब्द कह कर कौम को कभी भी निराश या मायूस नहीं किया।

वह समय की सरकार के आगे बिल्कुल नहीं झुके। दो बार पत्र द्वारा बादशाह ने निमन्त्रण दिया, परन्तु उस के निमन्त्रण को ठुकरा दिया और उस के पास जाने से इन्कार कर दिया। गये नहीं, अपनी खुद्दारी अथवा स्वाभिमान को पूरा निभाया। अपने विचार बड़ी दलेरी और साहस के साथ, किसी लिहाज़

के बिना प्रकट करते थे। उन्होंने कभी भी कोई झिझक महसूस नहीं की थी। औरंगजेब के दो पत्रों का उत्तर फारसी में बड़ी जोशीली कविता में दिया और साफ खुल्ले शब्दों में उसके जबर-जुल्म और पापों कुकर्मों को नंगा किया। उस को चेतावनी दी कि प्रलय (कयामत) के दिन उस को भी अपनी काली करतूतों का हिसाब खुदा के घर देना पड़ेगा और उस दरबार में खुदा के आगे उसकी कोई भी चालाकी या मक्कारी नहीं चलेगी। उस समय वह कौन सी सफाई पेश करेगा? उसे अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया कि जो खालसा जन्म ले चुका है वह उस से हिसाब चुकता कर के ही दम लेगा, उस को छोड़ेगा नहीं।

गुरु जी कभी भी कोई काम जल्दी में नहीं करते थे। हर काम को शुरू करने से पहले हर पहलू पर अच्छी तरह जांच-पड़ताल अथवा विचार कर लिया करते थे।

यह उनकी दीर्घ-दृष्टि और चिंतन का ही चमत्कार था कि खालसा धर्म को ठोस और दृढ़ आदर्शों पर ऐसी नींव रखी कि वह तलवारों की छांव में, तोपों की भारी मार के आगे, इस्लामी राज्य के उभरते हुए जोश, जुल्म और ज्यादती के आगे असहनीय और अनिर्वचनीय कष्टों में भी छांगे हुए वृक्ष की तरह बढ़ता ही गया। हर प्राणी, जिस ने (अमृत) पाहुल प्राप्त की, उस में अपने तेज प्रताप ऐसे से गुण भरे और उस की ऐसी काया कल्प कर के नवीन व्यक्तित्व पैदा कर दिया कि वह मृत्यु से ठट्ठा करने लगा और सर तली पे रख रणभूमि में नाचने लगा। जहां गुरु जी का पसीना बहता वहां सिक्ख लहू बहाते। सिक्खों में पुरुषार्थ और हिम्मत की ऐसी फूंक मारी, ऐसी जीवन-ज्योति प्रज्वलित की कि एक एक सिक्ख हजारों का मुकाबला करने लगा। ऐसे कौमी परवाने पैदा किये कि उन्हें अपने जीवन के सुख, अपने

परिवारों के मोह-प्यार भी कुर्बानी की राह से न रोक सके और न कोई दुनियावी सुख या चिन्ता उन के इरादों के आगे खड़ी हो सकी। गुरु जी ने फौलादी रंग दे कर, सर्व-लोह की पाहुल पिला कर, फौलादी इरादों वाले फौलादी इन्सान पैदा किये, जो हर मुसीबत और हर तकलीफ को इस फौलादी शक्ति के साथ हंसते हंसते स्वीकार करने लगे। उन सिंघों को अपने अस्तित्व और मिशन का ऐसा पाठ पढ़ाया और ऐसा मन्त्र दिया कि वह राष्ट्रीय-कर्त्तव्य का अजपा जाप ही करने लग गये। उन्हें अपमान की खाई में से निकाल कर ऊंचा स्थान दिया। गुरु जी के तप तेज के सूर्य के आगे ब्राह्मणों के और पण्डितों के मंडलाते बादल काफूर हो गये। ब्राह्मणों और पण्डितों से कुछ भी न हो सका, कोई हील हुज्जत न कर सके। यह सब कुछ किसी जल्दबाजी का नतीजा नहीं, बल्कि इस की नींव दीर्घ सोच-विचार और गहरे चिन्तन पर रखी गई थी।

गुरु जी हर कार्य को पारदर्शी दृष्टि से परख कर करते थे। आने वाले समय का पहले ही नाप तोल कर लेते थे। यही कारण था कि दूर-दृष्टि के साथ खालसा धर्म में ऐसी कमियां न आने दीं, जिन के कारण खालसा धर्म पतन की ओर जाये, अपमानित अथवा बेइज्ज़त हो या अपने ऊंचे आदर्शों से गिर कर अपनी बरादरी को धब्बा लगाये। यही बड़ा कारण है कि समय चक्र के बावजूद भी खालसे में अभी भी जोश और जान बाकी है। गुरु जी ने दूर-अन्देशी से यह अनुभव कर लिया था कि उन का उद्देश्य फल लायेगा। वह कभी भी निराश न हुए और अन्तिम समय तक उत्साहित विचरते रहे और ज्योति जोत समाये।

विरोध और बदले की उफानों के आगे गुरु जी चट्टान की तरह दृढ़ हो कर डटे। गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने राम राय की

धर्म-पत्नी की शिकायत पर उस इलाके के मसन्दों को इकट्ठा किया और गिरे हुए आचरण वाले और बुरे जीवन वाले दोषियों को गर्म तेल में फेंक कर जला दिया। इसी कारण मसन्दों को खालसा धर्म में शामिल नहीं किया और उन के प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

गुरु जी बलवान तथा बहादुर थे और बहादुरी अथवा दलेरी के कामों की सराहना करते थे। गुरु जी बहुत परिश्रमी थे और अपने सिक्खों सेवकों में कठिन साधना अथवा सिखलाई के लिये शौक व लगन पैदा करते थे।

गुरु जी का जैसा शरीर मज़बूत था उतना ही उनका दिल भी मज़बूत और उदार था।

जब कोई सेवक सिक्ख घोड़ा या शस्त्र भेंट करता, तो गुरु जी अति प्रसन्न होते थे। शिकार में काफी समय और दिलचस्पी इस लिये लेते थे ताकि सिक्खों को शस्त्र-विद्या का ज्ञान, आदत और अभ्यास हो जाए। इस बात की फौजी दल को बहुत आवश्यकता होती है।

गुरु जी बहुत ही योग्य और नियमबद्ध प्रबन्धक थे। वह सभी मामलों का अच्छा और पूरा प्रबन्ध करना जानते थे। आमदनी व खर्च ऐसे सुचारु रूप से चलते थे कि थोड़े से सिक्खों, उपहारों से ही अच्छी सेना, शाही मुकाबले अथवा देश की स्वाधीनता के लिए तैयार कर ली थी। थोड़े से खर्च के साथ ही सिक्खों की इतनी बड़ी जमात (संगत) को नियन्त्रण में रखते थे। बात यह कि वह हर पहलू से पूरा और निपुण प्रबन्ध रखते थे।

गुरु जी की वाणी और शब्दों में चुम्बक-सा आकर्षण अथवा मिशरी सी मिठास थी। वह जो भी आज्ञा सिक्खों को देते,

सिक्ख हर समय उसे सहर्ष मानने के लिये उपस्थिति रहते और उनके वचनों पर अपने प्राण न्योछावर करने को सदा तत्पर रहते। सिक्खों में गुरु जी के वचनों के प्रति अगाध श्रद्धा थी। यह केवल कहने मात्र की वात नहीं, बल्कि इतिहास साक्षी है कि वह गुरु जी के वचनों पर प्राणों की वलि देते रहे और सर्वस्व लुटाते रहे। इस का गहरा भेद इस बात में था कि गुरु जी अपने सिक्खों को पुत्रों से भी ज्यादा प्यार करते थे और सभी के साथ एक जैसा वर्ताव करते थे। उन की नज़र में सभी एक समान थे और किसी भी किस्म का भेद-भाव नहीं था, और हर एक सिक्ख के दिल में यह बात घर कर चुकी थी। गुरु जी मृदुभाषी, मीठे स्वभाव वाले और सहानुभूति पूर्ण वर्ताव वाले थे। गुरु जी मानवता के सच्चे प्रेमी और आशिक थे।

गुरु गोविन्द सिंघ अत्याचारी और जाविर मुस्लिम सरकार के विरुद्ध क्रांति करते हुए भी कई मुस्लमानों में हरमन प्यारे थे। काफी गिनती में मुस्लमानों ने उन्हें सर आंखों पर विठाया और उनकी विपत्ति के समय में सहायता की। उन्होंने उन्हें 'उच्च का पीर' वना कर, हर तरह से आपदाएं मोल ले कर और अपने प्राणों की वाजी लगा कर अत्यन्त नाज़ुक समय में खतरे से वाहर किया।

गुरु जी श्रेणियों में बंटी मानवता से काफी ऊंचे थे। वह प्रत्येक प्राणी के साथ विना किसी भेद-भाव के प्रेम, मुहब्बत, दया अथवा उदारता से व्यवहार करते। वह इतने सहानुभूति पूर्ण स्वभाव वाले थे कि शत्रु भी उनके साथ प्यार की भावना को दिल से नहीं निकाल सके।

हातिम (दानी) से वढ़ कर उदार चित थे। प्रत्येक की ज़रूरत पूरी करते थे। जो दूसरों की आवश्यकताओं को पूरा

करे वह उदारचित दानी। गुरु जी ने देश की जरूरत पूरी करने के लिये अपने परिवार और प्यारे सिक्खों तक के प्राण न्योछावर कर दिये। गुरु जी से बड़ा उदारचित कौन हो सकता है ? गुरु जी का लंगर हर गरीब अमीर के लिए बिना जाति भेद-भाव के खुला रहता था और उस लंगर में से अभ्यागतों अथवा जरूरत-मंदों को उन की आवश्यकता के अनुसार सदा भोजन और वस्त्र मिलते रहे।

गुरु जी के स्वभाव में हास्य-रस और व्यंग भी था। एक बार एक सिंघ ने शेर का शिकार कर के उस की पूरी खाल सर समेत गुरु जी को भेंट की। गुरु जी ने उस खाल को गधे के ऊपर चढ़ा कर उसे गांव की आबादी के नजदीक छोड़ दिया। लोग उसे देख कर घबरा गये। कोई ऊपर छत पर चढ़ गया तो कोई छिप गया और किसी ने घर का दरवाज़ा बन्द कर लिया। गांव में हाहाकार मच गई और लोगों के सांस सूख गये। जब गधे ने रेंगना शुरू किया तो सब के दिलों से सहम भाग गया। जिन के चेहरों का रंग उड़ गया था, हंसने लगे। यह दिल्लगी और मजाक अपनी ही तरह का था, पर था अर्थ भरपूर। सिक्खों को इस तरह यह सबक सिखाना था कि यदि शेरों वाला रूप सजाया है तो अन्दर से भी शेर ही रहना। अगर अन्दर से शेर न रहे और वास्तविकता प्रकट हो गई तो लोग आप से डरेंगे नहीं अपितु आप पर हंसेंगे।

गुरु जी बहुत प्रसिद्ध विद्वान और विद्वानों के गुणग्राहक भी थे। उन्हें विद्या और साहित्य से अत्याधिक प्रेम था और इस के अध्ययन का उन्हें काफी शौक था। इस ओर उन्होंने काफी समय, रुचि, परिश्रम अथवा धन खर्च किया। भारतवर्ष के योद्धाओं, वीरों, बहादुरों के जीवन-चरित्र, कारनामे और युद्ध वार्ताएं पढ़ने

सुनने की गुरु जी को बहुत लगन थी। कविता और कवियों का, गुरु जी बहुत सम्मान करते थे। बहुत से कवि (जिन की संख्या आम तौर पर बावन बताई जाती है) अपने दरबार में मुलाज़िम रखे हुए थे। वीर रस की कविता बहुत पसन्द करते थे। फारसी और अरबी भाषा के अच्छे विशेषज्ञ थे। संस्कृत को काफी समझते और जानते थे। पुरानी पुस्तकों और धार्मिक ग्रन्थों, छः शास्त्रों, उपनिषदों और पुराणों से भली प्रकार परिचित थे।

गुरु जी प्रभु-भक्ति और भजन-बन्दगी में सदा ही लीन रहते और सिखों को भी लगाए रखते। प्रति दिन ग्रन्थ जी की कथा होती थी और गुरु जी उस में उपस्थित रहते और ध्यान से सुनते। सुबह शाम जपुजी, रहिरास का पाठ करते। गुरु जी अपने धर्म अथवा नियम के बड़े पक्के थे और दृढ़ विश्वासी थे। मूर्ति पूजा व श्राद्ध आदि के सख्त विरोधी थे।

गुरु जी सत्य के प्रेमी, सत्य धारणी, सत्य के खोजी, सत्य प्रचारक, सत्य के प्रेरक, सत्य के उपासक और सत्य के ही पुजारी थे। अपने सारे जीवन में आप ने अपने उद्देश्य और नित्य कर्मों में सत्य का साथ नहीं छोड़ा, चाहे वह रण-भूमि में ही क्यों न हों। वहां भी कोई काम, कोई हरकत, कोई नीति ऐसी नहीं जो सत्य के बिना हो। न ही दैनिक जीवन में ही सत्य को छोड़ा। कई बार लोगों ने गुरु जी को करामात दिखाने की प्रार्थना की, लेकिन गुरु जी ऐसे ईश्वर, प्रेमी और विश्वासी थे कि वह केवल एक ही उत्तर देते कि मनुष्य कोई करामात नहीं कर सकता। करामात केवल ईश्वर के अधिकार में है और उसी की शक्ति है।

आगरे में एक अवसर पर गुरु जी से पूछा गया कि करामात है या नहीं ? (कहते हैं कि बहादुर शाह ने यह प्रश्न किया। कुछेक का विचार है कि बहादुर शाह के किसी मन्त्री ने यह

पूछा था।) गुरु जी ने उत्तर दिया कि आदमी कभी कोई करामात नहीं कर सकता, पर हम दुनिया में तीन चीज़ों को करामात मानते हैं :—

(१) प्रथम लोहा। सर्व लोह की करामात ऐसी करामात है कि संसार भर की वस्तुएं इस से प्राप्त हो सकती हैं। जो मांगो सो ही इस से मिलता है। शाही ताज और राज्य इसी के द्वारा ही मिलता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सब कुछ इसी से ही प्राप्त हो सकता है। जो कहीं भी न मिलता हो सर्व लोह की शरण में आ कर मिल सकता है। यही इन्सान की उन्नति और बुलन्दी की सीढ़ी है। जो इस की आराधना करते हैं वह चारों पदार्थ प्राप्त करते हैं।

गुरु जी की सर्व लोह से भावना शस्त्रों की थी। जो भी कौम और जाति शस्त्रधारणी होती है और शस्त्र की सच्ची पूजा करती है, विश्व भर की समस्त अमूल्य वस्तुएं और सौभाग्य उनके चरणों में उपस्थित रहते हैं। धरती, दौलत, ताज-तख्त, राज-भाग, इज्ज़त-मान, सुख-आराम, शानो-शौकत, सब उस का पानी भरते हैं और सेवा में हाज़िर रहते हैं। स्वर्ग के किवाड़ भी उन के लिये हमेशा खुले रहते हैं। जिस की तेग़ (तलवार) उसी की देग़ (देगची)! मुक्ति इस तरह आसान है क्योंकि आदमी जंग में मर कर सीधा परम आनन्द को प्राप्त होता है। सभी देशवासी उसका सम्मान करते हैं। वह वीर पुरुष शहीद बन जाते हैं और देश-प्रेमी अथवा पुजारी हो जाते हैं। यह सब लोहे की करामातें हैं जिन की ओर गुरु जी ने इशारा किया था।

वर्तमान काल में लोहे ने तो और भी प्राप्तियां की हैं, और भी अनेक काम किये हैं जो उपरोक्त करामातों से किसी तरह भी कम नहीं। लोहे के बने इंजन हवा में उड़ते और सैंकड़ों को साथ ही उड़ा रहे हैं। लोहे की कृपाओं से हज़ारों मशीनें अथवा

कारखाने चलते हैं, जो मानवता के लिये आवश्यक वस्तुएं सस्ती और सुथरी देते हैं। यह लोहा सोने से कम कीमती नहीं, अपितु उस से भी अधिक गुणकारी और लाभदायक सिद्ध हो रहा है। यह शताब्दि तो लोहे का युग है।

(२) दूसरी करामात गुरु जी ने शौर्य या बल बताई। संसार में वीरता ही राज्य करती है। निर्बल और कमज़ोर पुरुष सदा बहादुर और बलवान के नौकर और गुलाम ही होते हैं। सारी प्रकृति में यह नियम है कि कमजोर बलशाली के अधीन रहते हैं, चाहे बाहुबल हो चाहे दिमागी बल। शक्ति को सदा ही नायकत्व, बड़प्पन और ताज प्राप्त हुआ है। यही नियम प्रकृति के हर क्षेत्र में लागू है। कीड़े-मकौड़ों, पशु-पक्षियों से ले कर जंगली जानवरों तक सारे ही बल के आगे सर झुकाते हैं। सारे इन्सान भी ताकत के आगे ही झुकते हैं। राष्ट्र इस बल से ही नया जीवन लेते हैं। इस बल के सहारे ही कौमें बढ़ती, फूलतीं, जीतीं और प्रवाण चढ़ती हैं। बल ही के साथ शत्रु को दण्ड दिया जाता है और काबू किया जाता है। सारे चमत्कार ही दुनिया में इस बल के हैं। बलहीनों का अपमान और दुर्दशा होती है। बलवान आत्मा के लिए बलवान शरीर की आवश्यकता है और बलवान जिस्म बलवान रूहों के बिना निर्जीव है। बल किसी भी तरह की करामात से कम प्राप्ति नहीं करता।

(३) तीसरी करामात गुरु जी ने धन को कहा है। धन के भी अद्भुत करिशमे और प्राप्तियां हैं। संसार में जिस चीज़ की ज़रूरत हो, धन द्वारा मिल जाती है। कोई आवश्यकता नहीं जो धन द्वारा पूरी न हो सके। कोई भूख नहीं जिसे यह दूर न करे। कोई काम नहीं जो इससे सम्पन्न न हो। अगर धन पास न हो कोई पास फटकने नहीं देता। इस लिए इस की करामात भी पहली दो

चीज़ों से किसी भी तरह कम नहीं।

गुरु जी का जीवन बहुत ही सरल तथा सपाट था। वह हर एक को सप्रेम व सहर्ष मिलते थे। सारी मानवता से प्यार करते थे। प्यार उनका प्रचार था। प्यार के साथ उन्हें इश्क था। उनकी समस्त रचना और जीवन उद्देश्य का प्रमुख तत्व 'प्रेम' था, जिसे उन्होंने इन अक्षरों में लिख कर ऊंची आवाज में कहा :

साचु कहो सुन लेहु सभै
जिन प्रेम कीयो तिन ही प्रभ पायो ॥

गुरु जी ने यही उपदेश दिया और आजीवन इसे अपनाया और प्रचारा। सब से बड़ी बात कि गुरु जी में किसी भी तरह की कोई त्रुटि नहीं थी। न प्रशंसा की चाह, न किसी अपमान का भय। वह बड़े शेर-दिल और विशाल हृदय थे। पहाड़ी राजाओं ने हमेशा कष्ट दिया, आक्रमण किये, पर जब उन्होंने सहायता मांगी तो उनके सभी दोष अपराध भुला कर उनकी सहायता की, सैनिक सहायता दी और वह भी शाही सेना के विरुद्ध। जब बहादुर शाह जागीर देने लगा तो गुरु जी ने अपने आदर्शों व उद्देश्यों के ऊपर जागीर कुर्बान कर दी और उस की जागीर लेने से इन्कार कर दिया। वह पीड़ित हिन्दू जाति के सच्चे दर्दमन्द और शुभ-चिन्तक थे।

अलग अलग विषयों पर गुरु गोबिन्द सिंघ जी के विचार—

गुरु गोबिन्द सिंघ जी अवतारवाद के पक्ष में बिल्कुल नहीं थे। वह अवतारों के अस्तित्व को बिल्कुल ही नहीं मानते थे। उनके विचारानुसार दुनिया में ईश्वर का कोई अवतार नहीं हो सकता।

दशम ग्रंथ में कृष्ण, रामचन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा आदि २४ अवतारों का उल्लेख मौजूद है और इसी कारण कुछ लोगों का यह मत है कि गुरु जी उन अवतारों को स्वीकार करते हैं जिनका अपने ग्रंथ में उन्होंने उल्लेख किया है। और अगर वह उन अवतारों को न मानते तो उनका ज़िक्र ही न करते और न ही उनकी प्रशंसा करते।

यह दलील ठोस नहीं है। किसी चीज़ की प्रशंसा करना ही अपने आप उसको अवतार कैसे सिद्ध कर सकता है। इन कविताओं में कहीं भी सिद्ध नहीं होता कि गुरु जी ने उनको अवतार स्वीकार किया हो। गुरु जी ने एक इतिहासकार के नाते उन अवतारों की प्रचलित कथा को देश भाषा में अंकित किया। उनके शौर्य और बहादुरी के प्रसंगों को बड़ी जोशीली भाषा में, अपने सिखों में वीरता का संचार करने के लिए अंकित किया। इस से यह निष्कर्ष कैसे निकल सकता है कि गुरु जी उन्हें अवतार मानने लग पड़े और कृष्ण और रामचन्द्र आदि को गुरु जी ने अवतार कबूल कर लिया। इन दलीलों और अंदाज़ों पर वाद-विवाद में जाने का क्या लाभ जब गुरु जी ने स्पष्ट तौर पर ही ऐलान कर दिया कि ईश्वर का बिल्कुल ही कोई अवतार नहीं हो सकता। दो तरह के लिखित विचार हैं, एक वे जिन में इशारा मात्र या उनके भाव से अवतारवाद का खण्डन है और दूसरा सीधा खण्डन।

पहली प्रकार की पंक्तियों में से नमूने के लिए कुछ निम्न-लिखित हैं—

(१) अकाल उस्तति (जापु साहिब) में लिखते हैं—

नमसत्वं अकाले ॥

(भाव नमस्कार है उसको, जिस पर काल का असर नहीं।)

नमस्तं अजनमे ॥ (उसे नमस्कार है जो जन्म नहीं लेता।

(२) एक और जगह कहा है—अजन्म है। (उस का शरीर व जन्म नहीं, उसका वरण नहीं है।)

(३) केते कृष्ण से कीट कोटै उपाए ॥
उसारे गड़े फेर मेटे बनाए ॥ (९६)

(कृष्ण जैसे लाखों करोड़ों कोड़े पैदा किये, फिर बनाए फिर मिट्टी में मिला दिये।)

तेतीस सवैय्यों में लिखते हैं—

(४) काहूं लै ठोक बधे उर ठाकर,
काहूं महेश कौ ईश बखानयो ॥ (१२)

(किसी ने पत्थर का ठाकुर गले में बांध लिया और किसी ने महेश को ईश्वर कह दिया।)

काहूं कहयो हरि मन्दर मैं हरि,
काहूं मसीत के बीच प्रमानयो ॥१२॥

(कोई परमेश्वर को मन्दिर में मानता है तो कोई उसे मस्जिद में बताता है।)

काहूं ने राम कहियो कृष्णा कहूं,
काहूं मनै अवतार न: मानियो ॥१२॥

(कोई कहता है कि राम और कृष्ण ही ईश्वर के अवतार हैं, पर कोई इन्हें ईश्वर अवतार नहीं मानता।)

फोकट धरम बिसार सबै
करतार ही कउ करिता जीय जानयो ॥१२॥

(मैंने इन सभी भूठे धर्मों को भुला दिया है और केवल सृष्टि कर्त्ता को ही ईश्वर मानता हूं।)

(५) जौ कहौं राम अजोनि अजै अति,

काहे कौ कौशिल कुख जयो जू ॥१३॥

(यदि आप राम को न पैदा होने वाला और न ही शरीर धारण करने वाला मानते हो तो फिर वह कौशल्या के पेट में कैसे आ गया ?)

काल हूँ कान्ह कहै जिह कौ,

किह कारण काल के दीन भयो जू ॥१३॥

(जिस को काल नहीं नाश कर सकता, उसे मौत का डर क्या ?)

(६) क्यो कहो कृष्ण कृपा निध है,

किह काज ते बाधक बाण लगायो ॥

अउर कुलीन उधारत जो

किह ते अपनो कुल नास करायो ॥

आदि अजूनि कहाइ कहो

किम देवकि के जठरंतर आयो ॥

तात न मात कहै जिह को

तिह कियो बसुदेवहि बाप कहायो ॥१४॥

तुम लोग कृष्ण को बाणों का माहिर कहते हो तो फिर वह शिकारी के हाथों क्यों मारा गया ? अगर वह लोगों की कुलों को तारने वाला है तो अपनी यादव कुल का नाश उसने क्यों करवाया ? जिसका आदि नहीं और जो जन्म में नहीं, वह देवकी के गर्भ में कैसे आ गया ? जिस का कोई माता पिता नहीं, उसका पिता वसुदेव कैसे हुआ ?

(७) जाल बधे सब ही मृत के
कोऊ राम रसूल न बाचन पाए ॥
अंत भरे पलताए पृथी पर
जे जग मैं अवतार कहाए ॥
रे मन इलैल केल ही काल के
लागत काहि न पाइन पाए ॥२३॥

सभी ही मृत्यु के जाल में बन्धे हुये हैं, कोई राम रसूल नहीं बच सकता। जिन्होंने अवतार होने का दावा किया वह अन्त पछता कर मर गये। हे मन! तू अकेला ही अकाल पुरुष के चरण शरण क्यों नहीं जाता ?

(८) मै न गनेसहि पृथम मनाऊं ॥
किशन बिशन कबहूं न धिआऊं ॥
कान सुने पहिचान न तिन सों ॥
लिव लागी मोही पग इन सों ॥
महा काल रखवार हमारो ॥
महा लोह मैं किंकर थारो ॥४३४-३५॥

(कृष्ण अवतार)

मैं गणेश, कृष्ण और विष्णु पहले कभी नहीं मानता। उनकी आराधना नहीं करता। मेरी लिव केवल परमात्मा के साथ लगी हुई है। महा काल प्रभु ही मेरी रक्षा करता है और सारे कष्टों से बचाता है।

(९) कृष्ण ने राक्षसों को नष्ट किया और अनेक अच्छे

काम किये। अपने आप को ब्रह्म भी कर दिखाया लेकिन फिर भी वह परमात्मा नहीं हो सकता। जो आप काल के वश में था और मृत्यु के मुंह में जा गिरा वह दूसरों को मरने से कैसे बचा सकता है। स्वयं डूबता दूसरों को क्या तारेगा। केवल ईश्वर ही सर्व शक्तिमान है, वही जन्म देता और वही विनाश करता है।

(१०) परमात्मा का कोई शरीक (सांझीदार) नहीं, न मित्र न विरोधी। उसे उपमा की भूख नहीं, और न ही निन्दा या कुवचनों से नाराज़ होता है। तो फिर वह कृष्ण का अवतार कैसे हो सकता है? जिसका कोई मां-बाप नहीं, जिसकी कोई सन्तान नहीं, वह देवकी के पेट में कैसे आया?

देवी-देवता—

जैसे गुरु जी अवतारों के विरुद्ध थे और उन्हें बिल्कुल नहीं मानते थे, वैसे ही वह देवी देवताओं को भी नहीं मानते थे, न ही किसी देवी देवता को पूज्य समझते थे।

(१) राम रहीम के नाम लेने से मुक्ति नहीं मिलती। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चन्द्रमा आदि सब ही कालवश हैं।

(२) कृष्ण औ बिशन जपै तोहि कोटिक
राम रहीम भली बिधि धिआयो ॥
ब्रहम जपिओ अरु संभु थपिउ
तिह ते तुहि को किनहूं न बचायो ॥
कोई करी तपसा दिन कोटिक
कहूं न कौडी को काम कढायो ॥
कामकु मन्त्र कसीरे को काम न

काल को घाउ किनहूं न बचायो ॥९७॥(१)

(बिचित्र नाटक)

तुमने कृष्ण विष्णु करोड़ों की पूजा की, राम और रहीम की भी उपासना की, शिव और ब्रह्मा की भक्ति भी की, पर इनमें से तुम्हें कोई भी न बचा सका। तुमने सब की करोड़ों दिन करोड़ों बार ही प्रार्थना की परन्तु इनमें से किसी ने भी कौड़ी जितना काम भी न संवारा। दुनियावी लोभ की खातिर कई तन्त्र-मन्त्र किये, परन्तु मृत्यु के वार से तो कोई उपाय भी न बचा सका।

जब गुरु जी अपने आप को एक मामूली इन्सान और बहुत ही आधीन समझते थे, यह कैसे हो सकता था कि किसी देवी देवता को बुरा समझते। लोगों ने जिसे चाहा देवता बना लिया, जिसे चाहा अवतार बना कर पूजने लग गये। इस अन्धेरगर्दी में गुरु गोबिन्द सिंघ जी का अवतार बनना कोई अजीब बात नहीं थी। पर उन्होंने बड़ी दूर दृष्टि से इसका विरोध तथा खण्डन किया और अपने आप को एक नम्र सेवक से ऊपर कोई भी स्थान अपनी जिह्वा से नहीं दिया। मुहम्मद खुदा का हबीब, मूसा खुदा का नबी और महबूब, ईसा खुदा का इकलौता पुत्र, कृष्ण स्वयं भगवान, बुध भी परमात्मा, परन्तु गुरु जी ने अपने आप को अकाल का (घमण्ड रहित) सेवक और मामूली इनसान ही कहा है।

जो हम को परमेसर उचरि हैं॥
ते सब नरक कुण्ड महि परि हैं॥
मो को दास तवन का जानो॥
या मैं भेद न रंच पछानो॥ (३२)

मै हउ परम पुरख को दासा ॥
देखन आयो जगत तमासा ॥३३॥ (६)
(बिचित्र नाटक)

मुझे परमेश्वर कहने वाला नरक कुण्ड में पड़ेगा। मुझे सभी लोग परमात्मा का केवल सेवक ही समझें। इसमें रंच मात्र भी सन्देह न समझें कि मैं ईश्वर का दास हूं और जगत का तमाशा देखने आया हूं।

यही कारण है कि यह सच्चा गुरु संसार के सारे मार्गदर्शकों और नायकों से ज्यादा चमकता है।

इन प्रमाणों से यह भी पर्याप्त सीमा तक अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है कि गुरु जी वेदान्त के उस मसले को भी नहीं मानते थे जो कहता है कि जीव और ब्रह्म एक ही हैं। वह जीव और परमात्मा को अलग अलग ही मानते थे। जीव तो कर्त्ता, कादर, करतार की कृति है, समान कैसे या एक कैसे हो सकती है।

मूर्ति-पूजा–

जब गुरु जी देवी देवताओं और अवतारों के अस्तित्व को ही नहीं मानते थे तो फिर उनकी पूजा का सवाल कैसे पैदा हो सकता है। वह मूर्ति पूजा के सख्त विरुद्ध थे। वह कबरों, शमशानों और मकबरों की पूजा को भी पाप समझते थे।

इस के बारे में भी उनकी रचना में काफी प्रमाण मिलते हैं :

(१) फोकट धरम भयो फल हीन
जु पूज सिला जुगि कोटि गवाई ॥
सिध कहाँ सिल के परसे बल
बृध घटी नव निध न पाई ॥

आज ही आज समो जू बितिओ
नहि काज सरयो कछु लाज न आई ।।
श्री भगवन्त भजयो न अरे जड़
ऐसे हीं ऐस सु बैंस गवाई ।।२१।।

(तेतीस सवैये)

पाखण्ड धर्म तो निष्फल है। यदि पत्थर की युगों तक करोड़ों साल भी पूजा की तो अपना समय ही बर्बाद किया। पत्थर पूजने से कुछ भी प्राप्त नहीं होता। शक्ति और प्रगति का नाश होता है और परमानन्द की प्राप्ति भी नहीं होती। हे मूँर्ख ! तूने सारा समय मूर्ति पूजा में नष्ट कर दिया। तुम्हें शर्म नहीं आती, हे जड़ ! भाव हे बुद्धू ! तूने ईश्वर को तो याद ही नहीं किया और बुत्त ही पूजता रहा है। इस तरह तूने सारी आयु ही व्यर्थ गंवा दी है।

(२) काहे को पूजत पाहन कउ
कछू पाहन मै परमेसर नाही ।।२०।।

(तेतीस सवैये)

पत्थरों को क्यों पूजते हो ? इन्हें पूजने से परमेश्वर नहीं मिलता। उस परिपूर्ण परमेश्वर को पूजो जिसकी पूजा से सारे दुख दूर हो जाएं। धोखे के धर्म से कोई फल नहीं। केवल परमेश्वर का नाम लो।

(३) जौ जुग तै कर है तपसा
कछ तोहि प्रसन्न न पाहन कै है ।।
हाथ उठाए भली बिध सो
जड़ तोहि कछू बर दान न दै है ।।

यदि तुम युगयुगान्तरों के अन्त तक भी पत्थर की पूजा करते रहो तो भी पत्थर की प्रसन्नता प्राप्त नहीं हो सकेगी। हे मूर्ख! यह निर्जीव वस्तु तुम्हें कुछ भी नहीं दे सकेगी। यह भ्रम तुम्हें कैसे हो गया कि मूर्ति तुम्हारी रक्षा करेगी? हे बेसमझ मनुष्य इस बात का भरोसा रख कि इस झूठे धर्म से तुम अपनी इज्जत बर्बाद करोगे।

(४) पखाण पूज हों नहीं॥
न भेख भीज हों कहीं॥
अनंत नाम गाए हों॥
परम पुरख पाइ हों॥३५॥ (६)

(बिचित्र नाटक)

मैं मूर्ति पूजक नहीं, और न ही किसी भेस को ही मानता हूं। सर्वव्यापी परमात्मा की सेवा में सदा रहता हूं और उसकी रोशनी प्राप्त करता हूं।

(५) ता कौ करि पाहन अनुमानत॥
महा मूढ़ कछ भेद न जानत॥
महादेव को कहत सदा सिव॥
निरंकार का चीनत नहि भिव॥१६॥

(कबियो बाच बेनती चौपई)

महादेव को शिव कहते हैं और निरंकार को जानते नहीं। लोग उसे पत्थरों के बुत में पूजते हैं और वह परमात्मा के भेद को नहीं जान सकते।

वाहिगुरु—

वाहिगुरु शब्द से सिक्ख गुरुओं का भाव परमात्मा अकाल पुरुष से है, जो इन्सान का शुद्ध-सच्चा मार्गदर्शक और सृष्टि का रचियता है। गुरु गोविन्द सिंघ जी ने इसी भावना में वाहिगुरु शब्द का प्रयोग किया है।

आदि अंत एकै अवतारा ॥
सोई गुरु समझिओ हमारा ॥६॥
(कबियो बाच बेनती चौपई)

तीर्थ—

अमृतसर को सिक्खों का पवित्र तीर्थ-स्थान निश्चित किया। गुरु जी तीर्थ-स्नान और दर्शन को कोई बहुत विशेषता नहीं देते और अमृतसर को तीर्थ स्थापित करने में वह खालसे का केन्द्र बनाना चाहते थे। अगर हिन्दू जाति भी अपने तीर्थ-स्थानों को उसी प्रकार का केन्द्र ही बनाएं तो उन्हें काफी लाभ हो सकता है। इस प्रकार के तीर्थों के दर्शन स्नान और यात्रा से कोई आत्मिक उन्नति या लाभ नहीं मानते थे।

जल कै मजनि जे गति होवै नित नित मेंडुक नावहि ॥
जैसे मेंडुक तैसे ओइ नर फिरि फिरि जोनी आवहि ॥

जल के साथ नहाने से अगर मुक्ति होती हो तो मेंढक हर समय ही नहाता है। मेंढक की तरह मनुष्य भी बार बार जन्म मरण के चक्कर काटता है।

अन्य धर्म—

सभी धर्मों की शिक्षा, पुराणों आदि और हिन्दुओं के सम्प्रदायों की शिक्षाओं और तालीम को वह धोखा ही समझते

थे और इस ठगी से बचने के लिए बार-बार अपने खालसा को चेतावनी दी।

शराब और सारे नशों से सिक्खों को मना किया। यहां तक कि तम्बाकू तक भी पीने की आज्ञा नहीं दी।

गुरु जी स्वयं शिकार खेलते थे और खालसे को भी शिकार खिलाते थे। इस के बारे में वह स्वयं लिखते हैं–

राज साज हम पर जब आयो ॥
जथा सकत तब धरम चलायो ॥
भाँति भाँति बन खेल सिकारा ॥
मारे रीछ रोझ झंकारा ॥१॥(८)

(बचित्र नाटक)

जब समय ने आज्ञा दी, यथाशक्ति धर्म चलाया और अलग अलग प्रकार के शिकार खेले। रीछ वगैरह मारे। गुरु जी की और कोई इच्छा नहीं, सिवाए इसके कि धर्म युद्ध करें। उन्हों ने एक और जगह पर कहा है कि–

अउर बासना नाहि मोहि धरम युद्ध के चाइ ॥

ईश्वर–

गुरु जी उसी को ईश्वर मानते थे जिसका वर्णन वेदों में है। परमात्मा को सदा सच्चिदानन्द, अकाल, अजन्मा, अजूनी, अमर, अभय, सर्वव्यापक, बेअन्त, अपार, अरूप, असीम,अनन्त, सर्वाधार, निरलेप, न्यायकारी कहा है। वह मनुष्य के बनाये किसी ईश्वर को नहीं मानते थे और न ही अवतार को। गुरु नानक देव जी ने जैसे अपनी रचना जपुजी के आरम्भ में मूलमन्त्र के द्वारा ईश्वर की व्याख्या की है, वैसे ही गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने जापु

साहिब के आरम्भ में ईश्वर की उपमा ऐसे की है—

चक्र चिहन अरु बरन जाति अरु पाति नहिन जहि ।।
रूप रंग अरु रेख भेख कोऊ कहि न सकत किह ।।
अचल मूरति अनभउ प्रकास अमितोजि कहिजै ।।
कोटि इन्द्र इन्द्राण साहु साहाणि गणिजै ।।
त्रिभवण महीप सुर नर असुर नेत नेत बन त्रिण कहत।।
तव सरब नाम कथे कवन करम नाम, बरनत सुमत।।१।।

जापु साहिब के इलावा चौपई (बेनती), शब्द हजारे, अकाल उस्तति, गुरु जी की विशेष रचनाएं हैं, जो ईश्वर महमा से भरपूर हैं।

इलहाम—

गुरु जी ने हमेशा ही कहा है कि वह जो कुछ भी करते हैं अकाल पुरुष की आज्ञा से ही करते हैं। लेकिन उन्होंने यह कभी दावा नहीं किया कि उन्हें किसी तरह की आकाशवाणी होती है या वही नाज़ल होती है। गुरु जी तो करामात के भी पक्षधर नहीं थे और न ही उन्होंने कभी करामात दिखलाई या उसका दावा किया। तो फिर वह आकाशवाणी—(देव-वाणी) का दावा कैसे करते ?

गुरु जी पूर्ण सत्य के उपासक अथवा धारक थे। धोखे से कोई काम करना पाप समझते थे। उनकी आत्मा महांवली थी और खालसे में राष्ट्रीयता अथवा जोश भरने के लिये पर्याप्त थी। गुरु जी किसी भी क़िस्म का फरेब या प्रपंच रचने वालों के सख्त विरोधी थे। किसी शरारती अथवा धोखेबाज़ी के ढंग से दंगे करवाने वालों की वह निन्दा करते थे।

कुछ लोग महात्माओं अथवा बड़ों के कामों को करामातों के साथ जोड़ते हैं और उनके बड़प्पन को करामातों के साथ हीमापते तोलते हैं। उन का ध्यान हम गुरु गोबिन्द सिंघ जी के कारनामों और प्राप्तियों की ओर दिलाते हैं जो कि किसी भी चमत्कार से कम नहीं। खालसा धर्म वह करामात है जिस द्वारा ऐसे कौतुक दिखे कि सारे संसार की आंखें चुंधिया गई। नपुंसिकों को मर्द बनाया, लूंबड़ियों को शेर बनाया और रसातल को ओर अग्रसर हिन्दू-जाति की काया पलट दी। खालसा, गुरु जी की जीती-जागती करामात हर समय सामने मौजूद है और किसी अन्य करामात को ढूंढने या देखने की आवश्यकता ही नहीं।

गुरु गोबिन्द सिंघ जी के भिन्न भिन्न कथन और विचार—

गुरु जी ने जो अलग अलग वचन भिन्न भिन्न समयों पर सिक्खों को उपदेश के तौर पर कहे,उनका वर्णन यहां करना काफी लाभदायक रहेगा और इससे गुरु जी के जीवन पर और भी प्रकाश पड़ेगा।

दशम ग्रन्थ के इलावा और भी दो रचनाएं प्रसिद्ध हैं। एक रहतनामा और दूसरा तनखाह-नामा। रहतनामा प्रहलाद सिंघ के प्रश्नों के उत्तर में गोदावरी के किनारे, अबचल नगर में लिखा लगता है। इस में बहुत ही मूल्यवान बातें संचित हैं, कुछ एक का यहां ज़िक्र करेंगे—

नड़ी-मार, कुड़ी-मार (लड़की को मारने वाले), मसन्दों से मेल-मिलाप, औरतों के साथ शतरंज खेलना, सर से पगड़ी उतार कर प्रसाद खाना, सिंघों के लिए वर्जित है। जो गुरु जी की शिक्षा की पालना नहीं करेगा वह मल्लेष होगा। प्रथम गुरु ग्रन्थ साहिब और दूसरे खालसे का ही सम्मान करना चाहिये। न मानने वाला नर्क-गामी होगा। सिंघों को भगवा रंग नहीं पहनना

चाहिए। कोई तावीज़-धागा न पहने। प्रभात समय नाश्ते से पहले जपुजी और शाम को रोटी से पहले रहिरास पढ़ना ज़रूरी है। इन वाणियों के पाठ के विना सुवह कोई भी काम आरम्भ न करे। अकाल पुरुष के सिवाय किसी मूर्ति या बुत्त की पूजा नहीं करनी। सिक्ख के सिवाय किसी के आगे भी प्रणाम में सर नहीं झुकाना। गुरु ग्रन्थ साहिब जी को कभी नहीं भूलना। सिक्ख के साथ धोखा नहीं करना। जो भी मस्जिद मन्दिर, कब्र, श्मशान की पूजा करता है, वह सिक्ख नहीं। जो टोपी पहनने वाले को प्रणाम या सलाम करेगा या हाथ मिलायेगा वह नर्क में जायेगा। इस का कारण शायद यह है कि उस समय मुग़ल अमीर और नवाव टोपी पहनते थे या फिर क्योंकि समय के मुस्लमान हाकिम हिन्दुओं को पगड़ी नहीं बांधने देते थे, सो टोपी पहनने वालों से ऐसे हिन्दुओं की तरफ संकेत हो।

खालसे को अपना गुरु मानो और गुरु को खालसे में ही देखो। गुरु ग्रन्थ साहिव जी के आगे माथा टेकना, किसी और के आगे नहीं।

आगे कुछ बातें तन्खाहनामे में से हैं जो कि गुरु जी ने भाई नन्द लाल के प्रश्नों के उत्तर में कहीं—

जो पांच सिक्ख किसी सिक्ख को अमृत-पान कराएंगे, परमात्मा उन पर असीम कृपायें वरसायेगा। जो सिक्ख किसी गरीव सिक्ख के लिए अपने दिल में जगह नहीं वनाता वह सिक्ख नहीं। कड़ाह-प्रसाद सभी को एक समान वांटना चाहिए। कड़ाह प्रसाद 'त्रै-भाउल' (चीनी, आटा और घी वरावर वरावर डाल कर) का वनाना चाहिए।

जो सिक्ख तावीज़ या धागा धारण करेगा और लोहे को पैर लगाएगा, वह आगे जा कर सज़ा पायेगा।

कोई सिक्ख नस्वार न ले।

जो सिक्ख लोहा पास नहीं रखते और तुर्क को प्रणाम करता है, वह निंदनीय और सज़ा का भागी है। सिक्ख को दोनों समय बालों (केसों) में कंघा करना चाहिये। सिक्ख जनेऊ न पहने, झूठ न बोले, वचन का पक्का रहे और प्रभु का नाम लिए बिना कोई कार्य आरम्भ न करे।

जो सिक्ख ज़रूरत-मन्द की सहायता नहीं करता, जो जूआ खेलता है, जो अपने गुरु की निन्दा सुनता है, वह परमात्मा से दूर ही रहता है।

फूंक मार कर आग मत जलाओ और जूठे पानी से आग मत बुझाओ।

खालसा वह है जो किसी की चुगली निंदा नहीं करता, जो युद्ध करता है और वीरता के कार्य करता है, जो किसी ख़ान, भाव मल्लेछ का नाश करता है, जो अपने उद्‌गारों पर नियन्त्रण रखता है, जो रसमों से ऊपर अथवा आज़ाद है, जो दूषणों से दूर रहता है और गुरु के वचनों पर विश्वास रखता है, जो कभी भय नहीं मानता चाहे सफल न भी हो, जो किसी को सताता नहीं, जो सारी सृष्टि को परमात्मा की बनाई हुई समझता है। जो इन विचारों के विरुद्ध कर्म करेगा, प्रभु उस से नाराज़ होगा।

गुरु जी के उद्देश्य का एक और पहलू—

एक और फिरका यह आपत्ति करता है कि गुरु नानक देव जी की भक्ति, नम्रता, सियानप, शान्ति और भजन-बन्दगी की जगह गुरु गोबिन्द सिंघ ने कौम को प्रेम अथवा प्यार की मन्ज़िल से हटा कर ख़ून बहाना सिखाया। भक्ति के दर्जे से उठा कर निर्दयता का उपदेश दिया। हिन्दुओं की दुःख सहने की महान अथवा पवित्र आदत को मिटा कर दुःख देने का आदी बना दिया। उन की नर्म स्वभाव की भावना को घातक वीरता में बदल कर ज़ुल्म का तूफ़ान खड़ा कर दिया। उनकी नम्रता

अथवा खाकसारों वाली रुचि को मलिया-मेट कर, उन्हें राष्ट्रीय गर्व और स्वाभिमान में बदल दिया। उनकी निजी नम्रता अथवा सहन-शक्ति को दबा कर उन्हें अत्याचारी अथवा खूनी बना दिया। उनकी शक्ति को गुस्से अथवा कहर में बदल दिया और उन में प्रतिशोध की ज्वाला भड़का दी। अमन-पसन्दों से लड़ाके बना दिया। यह सब कुछ गुरु जी ने अच्छा नहीं किया और शत्रुता की है।

हां आप भी ठीक कहते हैं। कृपा करके आंखें तो खोलो और चारों ओर निगाह करके देखो और ऐसे कहो कि तुम्हें सोए हुओं को जगाया, गिरतों को उठाया। मर-मिटने अथवा जलने से बचाया। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

"ना कहों अब की ना कहों तब की।
अगर न होते गुरु गोविन्द सिंघ सुन्नत होती सब की।"

इतराज़ करने से पहले हर पहलू को जांच परख लो और विचार कर लो कि संसार में वह कौन सा धर्म है जिस ने तलवार के बिना अपने पंख फैलाए हों। मूसा के युद्धों का हाल अथवा उदाहरणें गिनने के लिए और पेश करने के लिये अनगिनत कागज़ चाहिएं।

ईसा ने यद्यपि एक चपत खा कर दूसरा गाल आगे कर देने का नारा लगाया और उसका प्रचार किया, लेकिन कौन यह कह सकता है कि ईसाई-मत्त तलवार बिना ही फैला। सारे योरुप और अन्य देशों का इतिहास साफ स्पष्ट है कि ईसाई मिशनरी आगे आगे बढ़ते जाते, क्योंकि पीछे पीछे तलवार चली आती। जहां कहीं ईसाई मिशनरियों को थोड़ी सी भी तकलीफ आई तो उन की रक्षा के लिए तलवार तुरन्त मयान से बाहर निकली। योरोशलम प्राप्त करने के लिये सारे योरुप की ईसाई जमात ने

सांझा मोर्चा बनाया और जिहाद किया। यह एतिहासिक सच्चाई हमारे सामने है।

इस्लाम का क्या फुरमान था? मौत या इस्लाम, कौन सी बात? संसार का वह कौन सा हिस्सा है जहां इस्लाम की तलवार धर्म परिवर्तन के लिए मयान से बाहर नहीं आई? क्या सारे योरुप की ईसाई आबादी ने ईसा की जन्म-भूमि योरोशलम पर कब्ज़ा करने के लिए इस्लाम के साथ लगभग सात साल युद्ध में तलवार नहीं चलाई?

बुद्ध, जो चींटी को भी दुःख देना पाप समझता था, जो ब्राह्मणों के युगों में जीवहत्या और कुर्बानी देख कर बहुत नाक भौं चढ़ाता और सब जीवों के समान जीवन कायम रखने के हक को स्वीकार करता और उस का प्रचार करता था, और "अहिंसा परमोधरमः" का ढोल पीटता था, उस के शिष्यों अथवा चेलों की उन्नति क्या तलवार के बिना हो सकी? हरगिज़ नहीं।

जब बुद्ध धर्म राज-सिंहासन पर विराजमान हुआ, राजा अशोक जो ब्राह्मणों के कानून के अनुसार शूद्र ही था, ने बुध धर्म धारण कर लिया तो उसने तलवार की शक्ति से बुद्ध धर्म फैलाया, दूसरे धर्मों के प्रशंसकों के खून से तलवार रंग कर बुद्ध धर्म का घेरा विस्तृत किया।

क्या शंकराचार्य की अकेली फिलासफी ने बुद्ध धर्म को भारतवर्ष से बाहर निकाला? और अपनी युक्ति अथवा दलील-बाज़ी से बुद्ध धर्म का बिस्तर गोल किया और हिन्दुस्तान की सरहदों में से बाहर निकाल फैंका? नहीं, हरगिज़ नहीं। बल्कि राजपूत राजाओं ने फिर तलवार उठाई और उस तलवार की ही छत्र-छाया तले बुद्ध धर्म को हिन्दुस्तान से बाहर निकालने में सफल हुए। क्षत्रिय राजाओं ने शंकर मत्त फैलाने में अपनी

तलवार की प्यास बौद्धों के लहू से बुझाई।

क्या गुरु गोविन्द सिंघ जी का ही अपने उद्देश्य अथवा धर्म के प्रचार के लिये दूसरे धर्मों के मुकावले में तलवार उठाना अनुचित था? गुरु जी ने अपनी रक्षा और आपदाओं में फंसी हिन्दू-जाति की रक्षा के लिए तलवार मयान से निकाली। गुरु जी ने तलवार उन मुस्लमानों के मुकावले के लिए उठाई जिन्हें यह खुदा का हुक्म लगता था कि जो मुस्लमान नहीं वह काफिर है और काफिर को मारना सवाव, भाव पुन्य और धर्म का काम है। काफिरों की धन-माल, घर-वार, वाल-वच्चे और स्त्री मोमिनों भाव मुस्लमानों के लिये सव कुछ हलाल अथवा पवित्र है।

हिन्दुस्तान में इन मसलों का हल पहले मुस्लिम बादशाहों ने तो जो किया, वो किया ही था, परन्तु औरंगजेब ने तो प्रण ही कर लिया था कि सारे हिन्दुओं को तलवार के बल के साथ दीन में शामिल करे और वहिश्त (स्वर्ग) में हूरें (सुन्दरियां) और गुलाम हासिल करे। उस के अत्याचारों और जुल्मों की अनेक उदाहरणें पेश की जा सकती हैं, परन्तु यहां स्थान कम है, इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ साक्षी है। गांवों के गांव, कस्बों के कस्बे, शहरों के शहर,कौमों की कौमें वल पूर्वक मुस्लमान की जा रही थीं। हिन्दुओं की कश्ती इस्लामी तूफान में घिरी डगमगा रही थी और टकरा कर चकना-चूर ही होने वाली थी। तब गुरु गोविन्द सिंघ जी मैदान में निकले। न निकलते और सैनिक जत्थेबन्दी बना कर मुकावले के लिये न खड़ी करते, और लोहे का जवाव लोहे के साथ न देते तो परिणाम यह निकलता कि शान्त स्वभाव और सहन-शीलता के देवता और जीव-हत्या से कांपने वाले "अहिंसा परमो-धरमः" के पुजारी देखने नसीब न होते और तलवारों के बल से

कलमा पढ़ा कर वैसे ही मुस्लमान बना दिये जाते, जिन का दीन यह हुक्म देता था कि काफिरों के लहू से हाथ रंगने सवाब (पुन्य) और काफिरों की बेटियां, बेटे छीन कर मज़े लूटना इलाही हुक्म की पालना थी।

ज़रा सोचो तो सही, जिन को औरंगज़ेब ने मुस्लमान किया और वह भी बल-पूर्वक किया, उन्होंने कभी भी हिन्दुओं के साथ हमदर्दी की ? जब वह मुस्लमान ही ज़बरदस्ती से किये गये थे तो क्या कारण था कि उन की हमदर्दी हमेशा के लिए हिन्दुओं से टूट गई। कारण यह था, हिन्दुओं ने उन्हें दोबारा अपनाने से इन्कार किया, घृणा की और कभी अपने साथ मिलाने का हौसला न किया।

गुरु जी ने "लोहे को लोहा काटता है" के कथनानुसार इस तरह के आदमी पैदा किये जिनकी सख्त ज़रूरत थी। कृष्ण जी ने जो उपदेश अर्जुन को महाभारत की रणभूमि में किया, भीष्म ने जो युद्धिष्ठर को जीत के बाद सिंहासन-त्याग के समय किया, गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने उस का अक्षर अक्षर अपने सामने पूरा किया।

आपत्ति उठाने वाले सज्जनों, गुरु जी का मिशन बहुत ही सत्कार्य है, न कि घृणा के योग्य। उन का उद्देश्य गौरवमय है, निन्दनीय नहीं। नफरत पैदा करने वाले जितनी चाहे नुक्ताचीनी करें क्योंकि आलोचना करनी बड़ी आसान है। इस में न कोई तकलीफ होती है न कुछ खर्च होता है।

गुरु जी के उद्देश्य की कदर तो उन्हें तब ही हो सकती है अगर कोई उन का घर छीन कर मालिक बन जाए और उन्हें जंगलों में धकेल दे। उन के बेटियां, बेटे छीन कर और स्त्री को अपनी सेज का श्रृंगार बना कर रंग-रलियां मनाये। उनके बच्चों

को दासों वाली मेहनत पर लगाया जाये और उनके धन माल से गुलछरे उड़ाये जायें। उन की मुश्कें बांध कर उन्हें अपने दीन में शामिल किया जाये और उस समय वह फिर शान्ति और सहन-शीलता का उपदेश करें। तब फिर हम मानेंगे कि वह सच्चे त्यागी, पक्के ज्ञानी और पूरे रहम दिल हैं। इस इम्तिहान के बिना हम आप की शान्ति और सहन-शीलता बिल्कुल भी मानने को तैयार नहीं।

एक और भी सम्प्रदाय है जिस के लोग डींगे हांकते हैं कि हमारा हिन्दू धर्म तो परमात्मा की सारी सृष्टि के साथ मित्रता और सद्भावना सिखाता है और इसी कारण हमें हिन्दू धर्म का प्रचार करने और फैलाने के लिए तलवार की आवश्यकता नहीं,कौम तथा देश के हित में शहीद होने वालों की ज़रूरत नहीं।

चलो ठीक ही सही और वह सत्य ही कहते होंगे। पर यह बात तो तब ही पूरी होती है अगर कोई आप को दोस्त समझे, बनाये या बनने दे। अगर कोई आप को समझे ही काफिर और इस पाप के जुर्म में सज़ा मौत भी दे और सब कुछ आप से जबरदस्ती लूट ले तो फिर आप को उन की तरह का ही बनना चाहिये न कि उन्हें अपने जैसा बनाएं। श्रीमान जी, अगर कुछ और नहीं तो ऐसी परिस्थितियां अपनी रक्षा के लिये कुछ बल धारण करना, कुछ आंखें लाल पीली करना, कुछ जोश दिखाना और कुछ घूरना मनुष्य के ग़ैरतमन्द बनने के लिए बहुत ज़रूरी है।

इसी अपनी रक्षा के लिए ही गुरु गोविन्द सिंघ जी ने कौमी शहीद और धार्मिक योद्धा पैदा करने की ज़रूरत समझी और इसी लिये उन्होंने तलवार पकड़ी। अगर हमारे ऊपर पक्षपात का दोष न लगाया जाये तो हम निडर हो कर कह सकते हैं कि

उस समय अगर कोई स्वाभिमान तथा अणख वाला हिन्दू* पैदा हुआ तो वह गुरु गोविन्द सिंघ ही था। नहीं नहीं, मुस्लमानों के आठ सौ वर्षों के शासन में यदि किसी की रगों में अणख तथा गैरत के खून ने जोश मारा और उबाल खाया तो वह गुरु गोविन्द सिंघ जी का पवित्र खून ही था। गुरु जी की अनख और उनके परोपकार, नुक्ता-चीनों की नुक्ताचीनी से कहीं ऊंचे, पवित्र तथा पाक हैं।

गुरु जी की रचनाएं–

गुरु जी की प्रसिद्ध रचना दशम ग्रन्थ ही है, जिस के कुछ भाग गुरु जी के और कुछ भाग दूसरे कवियों के हैं। जो गुरु जी द्वारा रचे गये हैं उन पर श्री मुखवाक पातशाही दसवीं लिखा हुआ है। यह काफी बड़ा ग्रन्थ है, जिस के १०६६ पृष्ठ हैं। इस पर खुली विचार इस पुस्तक के आकार से बाहर है, परन्तु फिर भी उस की कुछ विशेषताओं की ओर पाठकों का ध्यान दिलाना आवश्यक लगता है। संक्षेप में इस बात की व्याख्या करनी पर्याप्त होगी कि इस ग्रन्थ में क्या क्या बड़ी बातें अंकित हैं।

दशम ग्रन्थ के कुछ भाग बहुत ही जोशीली भाषा में लिखे हुए हैं।कुछ भाग गुरु जी के नहीं,उनके दरबारी कवियों के हैं,विशेष कर अवतारों और देवी के विषय में, युद्धों से सम्बन्धित कविता और स्त्री चरित्र। गुरु जी का कलाम सारे ग्रन्थ में ही जगह जगह शामिल है। यह सारा ग्रन्थ पंजाबी भाषा तथा गुरमुखी लिपि में लिखा हुआ है जो कि काफी महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ का अंतिम भाग और ज़फरनामा, जो कि औरंगज़ेब की ओर पत्र

*गुरु गोविन्द सिंह जी खालसा थे और उन्होंने खालसे का सृजन किया। खालसा अपने आप में निराली कौम है।

है, फ़ारसी भाषा में हैं। गुरमुखी लिपि में फ़ारसी होने के कारण आसान तथा स्पष्ट नहीं लगती। इस ग्रन्थ में ईश्वर भक्ति और ईश्वर के गुण-गान और वर्णन के लिए बहुत उचित सामग्री है और बहुत मूल्यवान भाव हैं। कई मसलों पर उत्तम विचार हैं। इस ग्रन्थ के विशेष हिस्से निम्नलिखित हैं—

(१) जापु साहिब—गुरु जी का शाहकार है। गुरु नानक देव जी के जपुजी का इसे सार ही समझना चाहिये या ऐसे कहें कि जपुजी की तरह ही प्रभु उस्तति है।

(२) अकाल उस्तति—गुरु जी की अपनी रचित वाणी, जिस में प्रभु गुणगान बड़ी जोशीली भाषा में है।

(३) बचित्र नाटक—गुरु जी के शब्दों में अपनी जीवनी और पहले गुरुओं के उपदेश और कुछ समाचार हैं। गुरु जी ने अपने जन्म का कारण, जीवन उद्देश्य और लड़े युद्धों का वर्णन बड़े ही उचित शब्दों में किया है।

(४) चण्डी चरित्र पहला } इन में राक्षसों के विरुद्ध देवी
(५) चण्डी चरित्र दूसरा } के भयानक युद्धों और सफलताओं का हाल लिखा है। बहुत सी परिस्थितियां चाहे कल्पित हैं परन्तु बड़ी पुरजोश और प्रभावशाली कविता में है।

(६) चण्डी दी वार—सिक्खों में जोश भरने के लिए लिखी गई प्रतीत होती है। इसके सम्बन्ध में पहले चर्चा हो चुकी है।

(७) ज्ञान प्रबोध—ईश्वरीय ज्ञान और स्तुति से भरपूर है।

(८) चौबीस अवतार—विष्णु के चौबीस अवतारों के कारनामें कविता में बड़ी जोशीली भाषा में अंकित किये हैं, और

चण्डी चरित्र के ढंग और मनोरथ समान वैसा ही असर और प्रभाव उत्पन्न करने के लिए लिखे प्रतीत होते हैं।

(९) महिदी मीर—इस सम्बन्ध में कोई विश्वास नहीं कि किस विचार से आने वाले अमाम महिदी का वर्णन है।

(१०) ब्रह्मावतार—इसमें ब्रह्मा के सात अवतारों का वर्णन है।

(११) रुद्र याशव अवतार—इसमें शिव के अवतारों का वर्णन है।

(१२) शस्त्र नाम माल—इसमें शस्त्रों के नाम और गुण अंकित हैं। यह गुरु जी की अपनी रचना है कि नहीं, इस सम्बन्ध में मतभेद है।

(१३) श्री मुखवाक सवैये ३३—इसमें पुराणों और कुरान की शिक्षा से भिन्नता दर्शाई गई है। वेदों की शिक्षा पर भी किसी हद तक आलोचना की गई है। यहां वेदों के वह नमूने दिए गए हैं जो कि आर्य लोगों की बुनियाद पर निर्भर करते हैं।

(१४) शबद हजारे में गुरु जी ने ईश्वर की महिमा तथा भक्ति भाव का वर्णन किया है।

(१५) इस्त्री चरित्र—इस में सौत तथा विमाता का दुःख वर्णन है और त्रिया चरित्र अंकित हैं। ग्रंथ का विशेष भाग इनसे ही भरा हुआ है। इसको इस ग्रंथ में शामिल करने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी। यह गुरु जी की रचना नहीं है।

(१६) हिकायतें—फारसी भाषा में गुरुमुखी अक्षरों द्वारा

औरंगजेब को उस के दुष्कर्मों और उनके परिणामों को ज़ोरदार ढंग से विदित कराया गया है।

यह ग्रंथ गुरु जी के ज्योति ज्योत समा जाने के पीछे तैयार किया गया प्रतीत होता है। सिक्खों में इस ग्रंथ का पर्याप्त सम्मान किया जाता है, परन्तु इसका प्रचार इतना नहीं जितना आदि ग्रंथ का है। गुरु गोविन्द सिंघ जी ने भी कोई ऐसा संकेत नहीं किया कि उनके ग्रंथ का मान-सम्मान पहले गुरुओं की वाणी से अधिक हो। इस ग्रंथ को तो उनके बाद उनकी तथा उनके दरबारी कवियों की विशेष रचनाओं को एकत्र करके 'दसम ग्रंथ' का नाम दिया गया।

गुरु जी ने अपने पिता गुरु तेग बहादुर जी की वाणी को आदि ग्रंथ साहिब में अंकित कर दिया, परन्तु गुरु गोविन्द सिंघ जी ने अपनी रचना को आदि ग्रंथ में शामिल करने का बिल्कुल कोई यत्न नहीं किया।

गुरु जी के विशेष गुणों में से उनकी कविता की सुन्दरता भी एक जीती जागती मिसाल मौजूद है। वैसे गुरु जी ने काव्यमयी बोली द्वारा मानवीय उद्‌गारों और तरंगों को झिझोड़ा और पुनर्जीवित किया। दिल के दर्द से, दर्द भरी भाषा द्वारा, जनता के साथ दर्द बांटा और ऊंचे आदर्शों के लिए दर्द पैदा किया। मुर्दा दिल को अपने दर्दे दिल से ही पुनः जीवित किया। बाकी गुणों के साथ साथ गुरु जी में एक यह भी बड़ा गुण था कि कविता में वह ऐसी वेदना भर सकते थे कि मुर्दा रूहें कबरों में से उठ खड़ी हों। उन्होंने कई जगह जंगों-युद्धों के ऐसे नकशे खींचे हैं कि पढ़ कर रौंगटे खड़े हो जाते हैं और पढ़ने वालों के दिल में जोश उबल पड़ता है और कुछ कर गुज़रने की भावना जाग पड़ती है। गुरु जी की कविता पढ़ने पर सूखी नाड़ियों में फिर लहू उछलने लगता

लगता है। गुरु जी के अमृत-भरपूर और काव्यमयी शब्दों का ही प्रभाव था कि सिक्ख मृत्यु को मजाक करने लग गए और मरना एक मामूली बात समझने लग गये।

सिक्ख गुरु जी की वाणी पढ़ कर नया जीवन प्राप्त करने लगे और गुरु जी के लिये अपना आप न्योछावर करने में गौरव तथा सम्मान महसूस करने लगे। गुरु जी की वाणी सिक्खों के लिए जादू-सा असर रखती थी। उस में मंत्र कला थी। वह अमृत और रसायन सिद्ध हुई। गुरु जी के पास कोई बड़ी करामात थी तो वह थी अद्भुत वाक शक्ति जिस द्वारा उन्होंने मुर्दा कौम में जीवन-ज्योति जगाई, जिस ने ऐसे चमत्कार कर दिखाये जो अनिर्वचनीय हैं। मर चुकी हिन्दू-जाति की रगों में सदियों का जमा खून पिघल पड़ा और बहादुरी और वीरता उनमें से स्वतः ज्वाला रूप हो कर लावे की तरह फूट निकली।